भगवद् रूप मीमांसा और गुरु जांभोजी

सम्पादक

डॉ. बनवारी लाल सहू

वरिष्ठ शोध अध्येयता,

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. रोहतास कुमार

विभागाध्यक्ष (दर्शनशास्त्र)

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

जीन्द (हरियाणा)

डॉ. छाया रानी बिश्नोई

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)

दयानन्द आर्य कन्या स्नातकोत्तर

महाविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.)

प्रकाशक

जाम्भाणी साहित्य अकादमी

प्रकाशक : जांभाणी साहित्य अकादमी
सैक्टर-1, ई-134, जयनारायण व्यास कॉलोनी
बीकानेर, (राजस्थान)
Email - jsakademi@gmail.com

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : 295/-

ISBN : *978-93-83415-25-0*

© : जांभाणी साहित्य अकादमी

मुद्रक : नवभारत प्रैस, उदयपुर

ब्रह्मलीन स्वामी चन्द्र प्रकाश जी महाराज

दिनांक 21 व 22 मार्च 2015 को जाम्भाणी साहित्य अकादमी बीकानेर तथा श्री गुरु जम्भेश्वर महाराज ट्रस्ट, कांठ द्वारा श्री बिश्नोई मदिर कांठ में 'भगवद् रूप मीमांसा और गुरु जाम्भोजी' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय सगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए हुए विद्वानों, शोधार्थियों तथा स्वंतत्र अध्येताओ ने भाग लिया। सभी का स्वागत करते हुए स्वामी कृष्णानन्द जी आचार्य, अध्यक्ष जाम्भाणी साहित्य अकादमी बीकानेर ने संगोष्ठी के महत्व पर प्रकाश डाला। स्वामी राजेन्द्रानन्द जी महाराज, ट्रस्ट अध्यक्ष ने मुरादाबाद-नगीना रोड स्थित संगोष्ठी स्थल, यहां बने हुये भव्य मंदिर व इस वृहत क्षेत्र की रमणीयता व महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इस प्रांगण व पूजा स्थल भूड. मंदिर की स्थापना संत शिरोमणी स्वामी श्री चन्द्र प्रकाश/चन्दू प्रकाश जी महाराज की देन है, जिनकी भूमिगत कुटिया आज भी इस मंदिर के बांई तरफ उनकी याद में मौजूद है। यह पूरा क्षेत्र स्वामी चन्दूप्रकाश जी की कर्मस्थली रहा है। अत: उनकी महानता व कार्य को देखते हुए यह संगोष्ठी उन्हीं को समर्पित की गई है।

इसके उपरान्त श्री आत्माराम पूनियां ने स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डालते हुये बताया की स्वामी श्री चन्द्रप्रकाश जी का बचपन का नाम हरीश्चन्द्र था तथा उनका जन्म विक्रमी संवत् 1970 में हिसार जिला के गांव भोडिया बिश्नोईयान में श्री जीवन राम पूनियां जी के घर हुआ, उनकी माता जी का नाम कश्बु (खिचड.) था। उनके चार भाई बहन रामजस, रामसुखी, आसाबाई, फुसाराम थे। वे सबसे छोटे थे। बचपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। वे किसान परिवार से सम्बन्ध रखते थे। बचपन से ही उनकी प्रवृत्ति संत के समान थी तथा संसारिक सुखो में उनका मन नही लगा। लगभग 25-26 वर्ष की आयु में उन्होंने घर त्याग कर ऋषिकेश चले गये तथा वहां संत श्री जसराम दास जी के सानिध्य में दीक्षा लेकर साधु बन गये तथा स्वामी श्री चन्द्रप्रकाश जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हो गये। ऋषिकेश के ऊपरी पहाडी क्षेत्रों के वनों में जाकर उन्होंने घोर तपस्या की तथा भगवत् प्राप्ति हेतु एकांत में वर्षो तक जप, आसन व योग को ही अपना ध्येय बनाया। वैराग्य प्राप्ति उपरान्त अपने गुरुजी के आश्रम में आकर उनकी अनुमति से बिश्नोई

धर्म संस्थापक एंव विष्णु अवतार श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान जी के द्वारा दिये गये उपदेशों, सबदों व उनकी शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार हेतु भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया तथा लोगों को जागरण, सत्संग, हवन, भगवत् चर्चा व ज्ञान ध्यान के माध्यम से बुराई त्यागकर धर्म के रास्ते पर चलने के लिये प्रेरित किया तथा लाखों लोगों का जीवन सुधारा। हवन व सुगरा प्रकिया के तहत लोगों से सत्मार्ग पर चलने का संकल्प करवाया और धर्म का प्रचार किया। वे जहां-जहां गये वहां पर उन्होंने पूजा स्थल, मंदिर, आश्रम की स्थापना करके धर्म व शिक्षा केन्द्रों की शुरुआत की, जिससे लोगों ने प्रभावित होकर नशा खोरी व बुरी आदतों को त्यागकर सही रास्ते पर चलने की आदत को जीवन मे उतारा। इस अभियान से बिश्नोई क्षेत्रों में काफी बदलाव आया व धर्म से विमुख होने जा रहे लोगों ने धर्म व अध्यात्म के रास्ते को पुनः अपना लिया, जिससे जीवन शैली व समाजिक दशा में भी काफी सुधार हुआ। सरलता, सादगी, सहनशीलता, नम्रता, परोपकार, दयालुता, सेवाभावना, दूसरों का आदर करना और सभी को समान दृष्टि से देखना उनकी प्रवृत्ति थी। किसी भी धार्मिक अनुष्ठान व जागरण आदि के अवसरों पर उपस्थित श्रृद्धालुओं के लिये वे स्वयं प्रसाद/भोजन बनाते व सभी को आवश्यक रूप से वितरित करने के बाद ही वे अपना भोजन स्वयं बनाकर खाते थे। उनके प्रसाद में बहुत बरकत होती थी। यही कारण है कि सभी साधुगण, व अन्य लोग उनके शिष्य उनका बड़ा आदर करते थे। यहां तक कि उनकी आज्ञा से लोगों ने चाय के नशे को भी त्याग कर दिया था। वे नियम व समय के प्रति बहुत सख्त थे। वृद्धावस्था से पूर्व वे एक स्थान पर ज्यादा देर कभी नहीं रुके तथा अगले स्थान पर धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु निकल जाते थे ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगों का उद्धार किया जा सके। इतना ही नहीं लोगों को धर्म से निरन्तर जोड़े रखने के लिये उन्होंने अपने द्वारा स्थापित धर्म केन्द्रो का बार-बार भ्रमण करके इन केन्द्रो का निरीक्षण भी जारी रखा। त्याग उनके जीवन का अहम हिस्सा था क्योंकि अपने द्वारा स्थापित पूजा स्थल, आश्रम का उन्होंने कोई मोह नहीं रखा तथा अगले अभियान के लिये निकल पड़ते थे। यहां तक कि उन्होंने तन के वस्त्रों, भवनों व संसारिक संसाधनों को कभी महत्व नहीं दिया तथा जिस गांव-शहर में वे धार्मिक जागरण आदि करते थे वहां रात को रुकने की बजाय धोरों, वनों व पहाड़ो में रात्रि विश्राम करते थे। संभराथल धोरा मंदिर निर्माण से

पूर्व उन्होंने कभी भी किसी से कोई पैसा नहीं लिया। संन्यास लेने के लगभग 12-13 वर्षा बाद उन्होंने अपने गांव का दौरा किया तथा वहां पर भी लोगों को धर्म की शिक्षा दी। पानी के लिये डिग्गियां खुदवाना, पेड लगवाना, नशे की बुराई को कम करना, आपसी मेल-मिलाप रखना आदि समाज हित के उन्होंने कई काम किये। सांसारिक जीवन का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने तप व ईश्वर भक्ति को हमेशा प्राथमिकता दी।

अपने धार्मिक जागरण के प्रवास के दौरान उन्होंने उत्तरप्रदेश के कांठ, भूड., लोदीपुर, मुरादाबाद, नगीना, अगवानपुर, फलावदा, हरिद्वार, ऋषिकेश व मध्यप्रदेश के नेमावर, हरदा, नीमगांव, झाड़पा, सामदा, सोनखेड़ी, खिरकिया, खातेगांव, घोड़ीघाट व नर्मदा के किनारे तथा राजस्थान में रोटू, बाड़मेर, सांचोर, जोधपुर, नागौर, भीलवाड़ा, पुर, संभेलिया, गंगानगर तथा पंजाब के सभी सोलह गांवों तथा हरियाणा के लगभग हर गांव में जाकर उन्होंने धर्म केन्द्रो की स्थापना करके ज्ञान की अलख जगाई व लोगों को जाम्भोजी की शिक्षाओं पर चलने हेतु प्रेरित किया, जिससे समाज में सदाचार व गुरुजी के प्रति आस्था में बढ़ोतरी हुई तथा लोगों ने बुरे कर्मों से छुटकारा पाया। यह भी बताया जाता है कि उन्होंने अपने प्रवास के दौरान संयुक्त भारत में पाकिस्तानी बिश्नोई क्षेत्रों का दौरा भी किया था। अमावस्या व अन्य धार्मिक दिवस के मौकों पर उन दिनों में श्रद्धालुओं की अपार भीड़ लगती थी। उपरोक्त धर्म केन्द्रों में से ज्यादातर में आज भी समाज हित के कार्य जारी है तथा लोग सदाचार व नियम पालन करते हैं।

स्वामी चन्द्र प्रकाश जी महाराज के द्वारा किये गये समाज हित के कार्यो में संभराथल धोरा मंदिर निर्माण सर्वोपरी है, जो उन्होंने आदरणीय स्वामी श्री राम प्रकाश जी महाराज के साथ मिलकर बनवाया था। इस मंदिर का निर्माण संवत् 2028 मिती चेत्र सुदि पंचम को शुरू किया गया तथा लगभग 11 वर्षोपरान्त मिती असाढ़ सोमवती अमावस्या संवत् 2039 को निर्माण पूरा होने के बाद पूजा हेतु खोला गया, जिसको बाद में आखिल भारतीय बिश्नोई महासभा को समर्पित कर दिया गया। ज्ञात रहे कि इसी संभराथल धोरा स्थल पर 1485 में गुरु जम्भेश्वर भगवान जी ने बिश्नोई पंथ की स्थापना की थी। अत: यह मन्दिर हमारे लिये आस्था का एक प्रमुख केन्द्र है। कुछ समय नर्मदा नदी के तट पर कुटिया में रहने के उपरान्त स्वामी जी ने संभराथल स्थित

कुटिया, गुफा को ही अपना निवास बना लिया था तथा यहां आश्रम की स्थापना की। संवत् 2041 में उन्होंने अपने शिष्य श्री छगनप्रकाश को अपना उत्तराधिकारी चुना तथा महन्त की चादर देकर पूरी तरह प्रभु भक्ति में लीन हो गये। उनका यह आश्रम आज भी धार्मिक चहल-पहल का मुख्य केन्द्र है। अंतिम दिनों में उन्होंने एकान्त में केवल प्रभु स्मरण को ही प्राथमिकता दी तथा फाल्गुन बदी तीज संवत् 2052 वार बुधवार दिनांक 7.2.1996 को सभी उपस्थित भक्तजनों को अपने पास बुलाकर हमेशा सत्मार्ग पर चलने की सीख देकर इस नश्वर शरीर का त्याग करके ब्रह्मलीन हो गये। उनकी समाधि संभराथल मन्दिर के पास ही उनके आश्रम में लगाई गई जो आज भी लोगों के लिये आस्था व समान का प्रतीक है। धन्य है ऐसे स्वामी श्री चन्द्र प्रकाश जी जिन्होंने समाज को सही राह दिखाने में जीवन प्रयन्त कार्य किया, उन्हें कोटि-कोटि नमन।

आत्मा राम पूनियां, कुरूक्षेत्र।

सम्पादकीय

गुरु जम्भेश्वर जी अवतारी महा पुरुष थे। सृष्टि के जीवों के कल्याणार्थ ही उनका जन्म हुआ था। गुरु जम्भेश्वर साक्षात् विष्णु के अवतार थे। नृसिंहावतार में भक्त प्रह्लाद को दिये वचन के पालनार्थ बारह करोड़ जीवों का उद्धार करने के लिए मरुभूमि में अवतरित हुए थे। उन्होंने बिश्नोई पंथ की स्थापना की और साथ ही जीवन अच्छे से जियें इसके लिए 29 नियम भी बनाये जिससे व्यक्ति उन नियमों का पालन कर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनायें। शब्दवाणी के 120 शब्द तो अमृत तुल्य हैं जिनके माध्यम से उन्होंने **'जीवा जुगति और मुवा मुक्ति'** का संदेश दिया। ऐसा केवल वही कर सकता है जो व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि समष्टि का कल्याण चाहता है।

शब्दवाणी में अनेक स्थानों पर हमने गुरु जाम्भोजी के भगवद् रूप को जाना है। जब वे कहते हैं–

''नान्हीं मोटी जीया जूणी, एति सांस फूरंतै सारूं''

''म्हे तदपण होता अब पण आछै, बल-बल होयसां कह कद कद का करूँ विचारूं।''

'' नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूँ।''

''पोह का धुर पहुँचायो''

''रतनकाया ले पार पहुँचै तो आवागवण निवारूँ ''

''अलाह, अलेख, अडाल, अयोनि शंभू।''

उपर्युक्त के अलावा और भी बहुत से स्थानों पर हमें गुरु जाम्भोजी के भगवद् रूप के दर्शन होते हैं। उनकी यही भगवद्ता हमें सद्मार्ग की ओर अग्रसर करती है।

गुरु जम्भेश्वर जी के इन्हीं उपदेशों को व्यवहार में कैसे उतारा जाये, इसी उद्देश्य को लेकर जाम्भाणी साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। जिसके द्वारा प्रतिवर्ष किसी एक प्रांत में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जाता है जिसमें स्वजातीय व ख्याति प्राप्त विद्वानों के विचार एवं शोध पत्र प्राप्त होते हैं जिनका संकलन पुस्तक रूप में किया जाता है। कांठ, उत्तर प्रदेश में आयोजित संगोष्ठी में पढ़े गये शोध-पत्रों के प्रकाशन में जाम्भाणी साहित्य अकादमी द्वारा हमें सम्पादन का गुरुत्तर कार्य सौंपकर यह अपेक्षा की गई है कि उपर्युक्त

कार्य स्थानीय होने के नाते हमारी जिम्मेदारी बनती है।

सम्पादन के इस कार्य को करते हुए हमें संकोच हो रहा है क्योंकि एक से बढ़ कर एक विद्वानों के शोध-पत्रों को सम्पादित करना सरल कार्य नहीं था। किन्तु गुरु महाराज की कृपा और अकादमी के अध्यक्ष स्वामी कृष्णानन्द जी आचार्य के आशीर्वाद एवं संरक्षक महामहोपाध्याय श्री वेद प्रकाश शास्त्रीजी के दिशा-निर्देशों ने इस कार्य को करने में हमें सक्षम बनाया। जिसके लिए हम जाम्भाणी साहित्य अकादमी का आभार व्यक्त करते हैं।

कांठ में 'गुरु जाम्भोजी का भगवद्रूप' विषय पर संगोष्ठी का अभूतपूर्व आयोजन हुआ। उक्त संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्रों का संकलन ही यहाँ पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है। अत्यंत ही शोधपूर्ण व सारगर्भित लेख प्रेषित करने के लिए आदरणीय लेखकगण हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। यत्र-तत्र रही त्रुटियों के लिए क्षमाभाव रखते हुये अपने बहुमूल्य सुझाव प्रेषित कर हमें अनुग्रहीत करें।

जांभाणी साहित्य अकादमी श्री गुरु जम्भेश्वर चेरिटेबल ट्रस्ट, कांठ तथा उन सभी महानुभावों का भी हार्दिक आभार प्रकट करती है जिन्होंने इस संगोष्ठी हेतु आर्थिक सहयोग दिया तथा संगोष्ठी की सफलता हेतु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया। हमें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आप लोगों का भविष्य में भी अकादमी को तन-मन-धन से सहयोग मिलता रहेगा।

ब्रह्मलीन स्वामी चन्द्रप्रकाश जी के वे शिष्य जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु जो आर्थिक सहयोग दिया है, उसके लिये जाम्भाणी साहित्य अकादमी उन सबका आभार व्यक्त करती है और अकादमी यह भी आशा करती है कि आप सबका यह सहयोग एवं प्रेम अकादमी को भविष्य में भी निरन्तर मिलता रहेगा।

:: सम्पादक ::

डॉ. बनवारी लाल सहू **डॉ. रोहतास कुमार**

डॉ. छाया रानी बिश्नोई

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
1.	**वैदिक साहित्य में भगवतरूप मीमांसा** –प्रो० आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री	11
2.	**भगवता संपन्न गुरु जम्भेश्वरम्** –आचार्य कृष्णानन्द	18
3.	**उपनिषदोंमें भगवद् विचार** –डॉ. बाबूराम (डी.लिट्.)	22
4.	**गुरु जाम्भोजी का अवतार** –डॉ. ब्रह्मानन्द	27
5.	**जाम्भोजी का अद्वैत वेदान्त सम्मत ब्रह्म-तत्त्व** –ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल	30
6.	**भगवान् श्री जम्भेश्वर : जांभाणी साहित्य के प्रणेता स्रोत** –डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई	40
7.	**गुरु जम्भेश्वर की वाणी में लोक-मंगल** –डॉ. अशोक कुमार सभ्रवाल	52
8.	**भगवत्तत्त्व मीमांसा और गुरु जांभोजी** –डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई	58
9.	**सबदवाणी के प्रसंगों में जाम्भोजी का भगवद् रूप** –डॉ. बनवारीलाल सहू	73
10.	**सबदवाणी में परिलक्षित गुरु जाम्भोजी का भगवद् रूप** –डॉ. श्रीमती छाया रानी	84
11.	**सबदवाणी परिलक्षित गुरु जाम्भोजी की भगवद्ता** – आर.के. बिश्नोई	88
12.	**समन्वय साधना, भगवद्रूप और गुरु जांभोजी** –डॉ. मनमोहन लटियाल	92
13.	**सनातन धर्म में अवतार परंपरा एवं श्री जाम्भोजी का भगवद्रूप** –डॉ. हुसैन खां ''उत्तम''	98
14.	**भगवद्गीता में भगवद्स्वरूप-** डॉ. रमेश चन्द्र यादव 'कृष्ण'	109
15.	**गुरु जाम्भोजी सबदवाणी सार** –मनोहरलाल गोदारा	119
16.	**भगवान श्री गुरु जम्भेश्वर जाम्भाणी साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत** –पृथ्वीसिंह बैनिवाल	124

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
17.	**सबदवाणी:समाजशास्त्रीय आदर्श** –विनोद कुमार भादू	129
18.	**वैदिक वाङ्मय में भगवद्रूप मीमांसा और श्री जाम्भोजी** –श्रीमती योगिता	134
19.	**उपनिषदों में भगवद् स्वरूप** – साक्षी बिश्नोई	141
20.	**गुरु जम्भेश्वर, सबदवाणी और भगवद् रूप** –शर्मीला (शोधार्थी)	146
21.	**जाम्भोजी का भगवत स्वरूप एवं अष्ट सिद्धियां** –उदयराज खिलेरी 'अध्यापक'	151
22.	**पर्यावरण रक्षक व चिन्तक भगवद् रूप गुरु जाम्भोजी** –डॉ. ओमराजसिंह बिश्नोई	157
23.	**सबदवाणी के प्रसंगों में जाम्भोजी का रामरूप** – मांगीलाल सियाग	164
24.	**सबदवाणी में उल्लेखित गुरु की आवश्यकता एवं महत्व** –मास्टर मोतीराम कालीराणा	169
25.	**सबदवाणी में उल्लेखित गुरु मंत्र से दीक्षित (सुगरा) होने का महत्त्व** –बुधाराम जाणी	173
26.	**जांभाणी साहित्य में गुरू जांभोजी का भगवद् रूप** –मास्टर रामनारायण गोदारा	177
27.	**जाम्भाणी साहित्य में भगवद्रूप का वैशिष्ट्य** – छोगाराम सारण	184
28.	**भगवद् रूप मीमांसा और गुरु जांभोजी विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित**	188

वैदिक साहित्य में भगवतरूप मीमांसा

प्रो० आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री

मनुष्य सदा से ही चिंन्तनशील प्राणी रहा है। अत: यह चिन्तन भी मानव के लिए विचारणीय है कि भग अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति के प्रकार क्या हैं? प्रात:काल उठकर मनुष्य उन वेदमत्रों का पाठ करे और मंत्रों के अर्थ को भी जाने जिन मंत्रों में परमपिता परमात्मा से भगवन्त होने की प्रार्थना की गई है। इसका अर्थ है कि मंत्रों के माध्यम से वही प्रर्थाना की जाती है जो सफल हो जाती है। साधक प्रभुभक्त प्रात:काल उठते ही कहता है कि हम समस्त पारिवारिकजन अग्नि देवता को हवि प्रदान करते हुए मित्र वरूण अश्विनी का ध्यान करते हुए प्रात:काल ऐश्वर्य के प्रदाता समग्र ऐश्वर्य युक्त परमात्मा से ऐश्वर्य सम्पन्न होने की प्रार्थना करें। भग अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये देववृति को अपनाना आवश्यक है देवत्व को प्राप्त करने वाले ही कहते हैं कि हे प्रभु हम भगवन्त हो जाऐं । हे प्रभो आपने जैसे देवताओं को भगवत् रूप प्रदान किया है वैसे ही हम भी भगवन्त हो जायें और वह समग्र भगरूप आपके (प्रभु) के द्वारा हमें मिले वह आपके लिए अर्थात् दैवी वृति को अभिवृद्ध करने में लगे। वे वेद के मन्त्र इस प्रकार से है जहां लगभग भग की कामना की जाती है।

प्रातरग्निं हन्वामहे प्रातर्तित्रावरूणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रात: सोममुत रूद्रं हुवेम।।
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयों विधर्ता।
आघ्रश्चिद्यं मन्मयमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।
भगप्रणतेर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुद् वा ददन्न:।
भग प्रणोजतयय गोभिरश्वै र्भग प्र नृभिनृवन्त: स्याम।।
उतेदानीं भवन्त: स्यामुत् प्रपित्वे उत् मध्ये अह्नाम्।
उतोदिया मघवन्त सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम्।।
भग एव भगवनस्तु देवा स्तेन वयं भगवन्त: स्याम।
तत्त्ववा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह।। ऋग.
6/4/1-5

इन मन्त्रों में बार-बार भगवान होने की प्रार्थना में यह स्पष्ट है कि परमात्मा समग्र भगवान है और वह अपने उपासक को भग का अल्प रूप देकर भगवान बना देता है। भग को दो प्रकार से वर्णनीय माना है एक तो समग्र जगत् में जो भौतिक ऐश्वर्य है और जो आन्तरिक अर्थात् आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। परमात्मा की कृपा से जो दोनों प्रकार से भग (ऐश्वर्य) को प्राप्त करता है वह उसका

वास्तविक उपासक होता है।

आचार्य यास्क ने दो प्रकार से कहे जाने वाले भग को छः प्रकार से कहकर भग की व्याख्या की है। यद्यपि एक व्यक्ति के पास सामान्य दृष्टि से देखने पर लगता है कि सारे ऐश्वर्य उसके पास नहीं हैं किन्तु कुछ विलक्षण युग पुरूष ऐसे होते हैं जो आप्त काम होकर सभी प्रकार के भग को प्राप्त करके विश्व में अर्चनीय स्थिति में आ जाते हैं। आचार्य यास्क द्वारा जिन भंगों का वर्णन छः प्रकार से किया वे निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं –

१. **समग्र ऐश्वर्य** – अर्थात् लौकिक ऐश्वर्य का धनी होना क्योंकि लौकि ऐश्वर्य जिसके पास सर्वदा है वह ईश्वर परमपिता परमात्मा है उसके सम्पर्क में आकर जो दान वृति को अपनाता हुआ कार्य करता है वह प्राकृतिक लौकिक धन का स्वामी हो जाता है। इसीलिए वेद मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि ''वयं स्याम् पतयो रयिणाम्'' अर्थात् हम धन एवं ऐश्वर्य के स्वामी बनें।

२. **धर्म में प्रवृत्ति** – धर्माचरण में अपनी आस्था रखना तथा निरन्तर धार्मिक बने रहना यह भग के नाम से कहा गया है। धर्माचरण से जीवन का वृक्ष सरस होकर सभी सामाजिक लोगों को सुख प्रदान करता है जो जितना–जितना धार्मिक होता है उतना नाम प्रतिष्ठित होता है। जिन पुरूषों को संसार ने भगवान के समान पूज्य माना है वे सभी महापुरूष धर्मरूप होकर ही संसार में अमर हुए हैं। आज जिनके नाम को लेकर स्वग्र को धन्य मानते हैं।

३. **यशस्विता** – श्रेष्ट कार्य करके व्यक्ति यश को प्राप्त करता है यह यश ऐसा भग है कि जो व्यक्ति के संसार से चले जाने के बाद भी निरन्तर बढ़ता ही रहता है। जैसै देवनादियों का जल कभी समाप्त नहीं होता तथा निरन्तर गतिमान होकर सांसारिकजनों को सुख देता है। जिस प्रकार सागर का जल न मापने योग्य तथा निरन्तर सत्ता में रहने वाला होता है उसी प्रकार यश नाम का भग कभी क्षीण नहीं होता है। समय की वृद्धि के साथ–साथ यश रूपी भग भी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करता है।

4. **श्री सम्पन्नता** – श्री जो आभा मण्डल के नाम से विख्यात है जितनी पावनता होती है उतनी ही आभा चमकने लगती है। महापुरूषों के चित्र में उनके शिरों भाग को आभा मण्डल से अलंकृत किया जाता है।

5. **ज्ञानतमयता** – ज्ञान की गरिमा अनपहेय है। सामान्य ज्ञान न्यूनता पर व्यक्ति को विद्वन्मण्डल में सम्मान और मान्यता नहीं मिलती है। गुरुजनों को सम्मान इसलिए मिलता है कि वे ज्ञान नामक भग के धनी है। ज्ञान का प्रकाश है प्रकाश सात्विक है अतः ज्ञानी पुरुषों का जीवन सात्विक होता है ऐसा माना जाता है। लौकिक ज्ञान और विज्ञान किसी से प्राप्त होता है। परन्तु कभी–कभी ऐसा देखा

जाता है कि कुछ महापुरूषों ने किसी पाठशाला के अन्दर प्रविष्ठ न होकर भी कुछ अदूभुत ज्ञान प्राप्त कर लिया होता है। ऐसे महापुरूषों को या तो योगी या जीवन मुक्त या आप्त पुरूष या मुक्तात्मा के नाम से जाना जाता है। एक स्थान पर शास्त्रकारों ने कहा है कि ''ऋते ज्ञानान्नमुक्ति'' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति का मिलना सम्भव नहीं है। यह ज्ञान भग के श्रेष्ठतम रूप का नाम है। जो मुक्तात्मा परमेश्वर की व्यवस्था में आते हैं वे संसार में रहकर भी नहीं रहते क्योंकि उनका मुख्य कार्य समाज का उपकार करके परमात्मा भक्ति में लीन रहना ही है।

६. वैराग्य - वैराग्य भग का ऐश्वर्य का छठा रूप है। बिना वैराग्य के व्यक्ति मोह से मुक्त नहीं हो सकता जब मोह के बन्धन में बंधा रहता है तो उसे परमेश्वर की भक्ति का रस नहीं मिलता हैं। जितने भी मुक्त हुए हैं समी के जीवन में वैराग्य का अनुपम योगदान रहा है। क्योंकि वैराग्य के बिना वास्तविक बोध नहीं हो सकता। वैराग्य के अभाव में अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेश क्लेशों को भोगता हुआ जन्म मरण के बन्धों से नहीं छूट पाता है। जब तक वैराग्य नहीं होगा अहंकार का विनाश नहीं को सकता और अहंकार समस्त दु:खों का कारण है। इसलिए वैराग्य नामक भग (ऐश्वर्य) जिसके पास है उसके पास समस्त ऐश्वर्य हैं समग्र ऐश्वर्यशाली को वैदिक दृष्टि से भगवता के कारण भगवान कहा जाता है क्योंकि वह संसार के बंधनों में बंधने के लिए नहीं आया वग मुक्तामा परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए लौकिक शरीर माता-पिता मे माध्यम से धारण करके पूर्ण वैरागी होकर संसार को सत्यज्ञान देता है तथा उनके बंधनों को काटना चाहता है। निरूक्तकार यास्क का श्लोक प्रस्तुत करना आवश्यक होगा, जिसमें छ: प्रकार के भगों का वर्णन करके वास्तविकता क्या है इसका दिग्दर्शन कराया है। ये छ: प्रकार के भग जिसके पास होंगे संसार के लोगों का भगवान कहलयेगा क्योंकि उस साधक ने निस्सीम साधना से परमात्मा की अनुकम्पा से मानव जीवन के प्राप्तव्य सर्वोतम पद को प्राप्त लिया है।

भगविषयक श्लोक निम्न प्रकार से है -

ऐश्वर्यसय समग्रस्य धर्मस्य यशस: श्रिय:।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

शास्त्र में आया है कि विलक्षण व्यक्तित्व अर्थात् संसार में रहते हुए अलौकिक रूप में अपनी सत्ता को सुनिश्चित करने के लिये जो पुरूष में 16 कलायें होती है, उनका विस्तार करना अपेक्षित है। यद्यपि प्रच्छन्न रूप में प्रत्येक संसार में आने वाले पुरूष में 16 कला होती हैं। इन सोलह कलाओं का समन्वित रूप ही पुरूष होता है, इसीलिए उपनिषद् में कहा कि ''षोडष कल: पुमान् भवति'' पुरूष 16 वाला होता है। परमपिता परमात्मा को यजुर्वेद में 16 कला अधिष्ठाता माना है उस परमात्मा का

पूर्ण अधिकार उस कला समूह पर है। कोई भी कला ऐसी नहीं है जो ईश्वर के आश्रित या अधीन न हो। जब चेतन अचेतन जगत का एकमात्र स्वामित्व परमात्मा का है तो स्वत' ही सिद्ध होता है कि कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति अपनी कला का विकास नहीं कर सकता है। यजुर्वेद में एक मन्त्र है जिसमें परमात्मा को षोडश कला का स्वामी कहा गया है –

यस्माज्जातं न पुरा किन्चिनैव, य आ वभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराण, स्त्रीणि ज्योर्तीषि सचते स षोडशी।। यजुर्वेद

जो साधक परमेश्वर या विष्णु का उपासक होकर संसार में रहता है वह सोलह कलाओं को विकसित करके उन्हें अपने वश में कर लेता है। ये कलाऐं उपनिषत् साहित्य में विस्तारपूर्वक नाम में विवेचित हुई है। **छान्दोग्योपनिषद् में प्रथम कला को नाम** अर्थात् संज्ञा के नाम से जाना गया है क्योंकि बिना नाम के कोई पुरूष नहीं जाना जाता है। इसीलिए नामकरण संस्कार का महत्व है। जब गुरू के पास शिष्य जाता है लौकिक व्यवहार में उसको जानना चाहता है ओर यदि अभी उसका नाम नहीं दिया गया है जो गुरु स्वयं उसका नामकरण कर देता है ताकि भविष्य में दुनिया में उसको उस नाम से जाना जाये।

द्वितीय कला वाक् – नाम की प्रथम कला को दर्शाकर अब द्वितीय कला वाणी को कहते हुए नाम की अपेक्षा वाक् कला श्रेष्ठ होती है। क्योंकि नाम को बताने वाली वाणी ही होती है। वाणी कला को विकसित करता हुआ व्यक्ति अपने नाम को चमकाता है। अतः वाणी को परमात्मा का महान उपकार माना है। जितने युग पुरुष हुए उनकी वाणी के चमत्कार ने ही संसार को एक दिशा और दशा दी जिसको अपनाकर करोड़ों लोग अपने उस मार्ग पर वापिस आ गये जो मार्ग उनको उनको गन्तव्य तक पहुंचाता है। यह वाणी की कला परमात्मा उपाासना से उसकी अनुकम्पा से विलक्षणता को प्राप्त होती है।

3. **मन की शक्ति** – मन अद्‌भुत शक्ति का केन्द्र है मन की कला का विस्तार शुद्ध भावना से होता है। साधना के बल से साधक का मन इतना पावन और बलवान हो जाता है कि वो अपने मन की शक्ति से सभी कर्यो का सम्पादन कर सकता है। मन की शक्ति का जितना-जितना विस्तार हो जाता है, उतना-उतना उसका मन की कला का अद्‌भुत चमत्कारिक रूप प्रत्यक्ष होने लगता है। महापुरूषों के जीवन इसके उदाहरण है।

4. **संकल्प की कला** – संकल्प की स्थान मन होता है संकल्प की शक्ति से मन संकलित होकर कार्य करता है। यज्ञ स्वाध्यास समर्पण एकाग्रता विलक्षण कार्यो का सम्पादन संकल्प की शक्ति से ही किया जाता है। इसीलिए ''व्रतानि यम धर्माश्च

सर्वे संकल्पजा: स्मृता:'' में कहते हुए संकल्प कला का महत्त्व दर्शाया गया है।

5. **चित्त की कला** – चित्त अन्त:करण चतुष्टय के अन्तर्गत माना जाता है क्योंकि चिन्तन का आधार चित्त होता है। अतएव कहा गया है कि ''चेतयंश्चितं भवति'' अर्थात् चिति संज्ञान के आधार पर चिन्तन करता हुआ वस्तु का यथार्थ में ज्ञान प्राप्त करता है।

6. **ध्यान कला** – ध्यान कला विशेष कला है संसार के सारे पदार्थो को ध्यान के बल से ध्यान में लाता है। जब व्यक्ति परमपिता परमात्मा में ध्यान लगाता है तो उसके ध्यान की कला इतनी विकसित एवं बलवती हो जाती है कि जब वह चाहता है जो समग्र पृथिवी में ध्यान लगाकर उसको देख लेता है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष को द्यौ लोक को जलों को देव ऋषियों को मनुष्यों को प्रतयक्ष कर लेता है। लेकिन यह ध्यान की विकसित कला की स्थिति उसी पुरुष की होती है जो योग साधना में सदा रत होता हुआ परमात्मा के समीप हो जाता है। सामान्य पुरुषों की ध्यान की स्थिति अति निर्बल तथा क्षणिक होती है। जब ध्यान की विकसित कला वाला व्यक्ति समाधिस्थ होकर संसार में रहकर भी न रहने जैसा हो जाता है तो उसकी–ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी बलवती हो जाती है कि उससे कोई भी तिरोहित नहीं हो सकता। ध्याानावस्था में योगी परमरत्मा सन्निधि प्राप्त करके ब्रह्माण्ड की रचना जानना चाहता है तो वह जान लेता है, उपनिषद् में इस वार्ता को निम्न प्रकार कहा गया है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्चिद्यन्ते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।
ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्, देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढ़ाम्।
य: कारणानि निखिलानि तानि, कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येक।

जो साधारण व्यक्ति अपना ध्यान सांसारिक बन्धनों में लगाते हैं ऐसे व्यक्ति शान्ति से दूर रहकर दुरवार्णव में गोते लगाते रहते हैं। परमात्मा की सन्निधि उन्हें प्राप्त नहीं होती है। जो पुरुष दुराचार से विमुख नहीं होते तथा जो शान्ति के उचित उपायों से दूर रहते हैं जो जितेन्द्रिय नहीं होते हैं तथा अशांतमन रहते हैं ऐसे व्यक्ति ब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। जब कि ऐसे ध्यानी पुरुष ध्यान की कला को विकसित करके सुखी रहते हैं तथा दूसरों को सुख देते हैं। अत: ध्यान की कला का विकास ब्रह्मोपसाना से करना चाहिए।

7. **विज्ञान की कला** – विज्ञान पंच कोषों में परिगणित है। जैसा–जैसा चित में चिन्तन होगा वैसा–वैसा विज्ञान विकसित होता जायेगा। यह विज्ञान भौतिक तथा अभौतिक कहा गया है साधक अपनी विज्ञानवता को इस प्रकार विकसित करता है कि वह चाहे जब सृष्टिगत किसी प्रकार की वस्तु को ज्ञेय मानकर जान लेता है।

8. **बल की कला** – बल स्वयं में अद्‌भुत कला है जिसके पास बल है वही पदर्थो का भोक्ता बनता है परन्तु यह शरीर का बल नहीं अपितु एक ऐसा अद्‌भुत बल है जिसको संसार के कतिपय पुरुषों ने ही प्राप्त किया है। कहा गया है कि ''नासाध्यं बलवतां सर्व बलवतां शुचि'' अर्थात् बलवान के लिये सब कुछ प्राप्य है परन्तु कल्याण की भावना अपेक्षित है।

9. **अन्न की कला** – बल अन्न पर आश्रित है, इसीलिये अन्न को ब्रह्म कहा गया है और कहा गया है कि ''अन्नं मा निन्द्यात्'' अर्थात् कभी अन्न की निन्दा मत करना। सृष्टि के प्रत्येक कण में अन्न विद्यमान होता है साधक व्यक्ति सूक्ष्म साधनों से अन्न को प्राप्त करता हुआ शक्ति पुंज बन जाता है।

10. **जल की कला** – जल अन्न का आश्रय है। अतः जल की कला को किसी प्रकार से निन्दित नहीं करना चाहिए। शास्त्रकारों ने ''जलं वै जीवनम्'' कहकर जल को जीवन का आधारा माना है। सामान्य व्यक्ति स्थूल जल को जल मानता है और ठीक भी है क्योंकि स्थूल जल से ही उसका जीवन चलता है। जो साधना के उच्च शिखर पर पहुंच गये हैं वे सूक्ष्म जल कणों से शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि उनकी जल कला विकसित हो जाती है।

11. **अग्नि कला** – अग्नि की कला ही जीवन में ओत-प्रोत है जो भी रूप सौन्दर्य हमारे पास है उसका आधार अग्नि ही है। अग्नि प्रदीप्त होती है तो जीवन कान्तिमान् रहता है अन्यथा कान्तिहीन होकर व्यक्ति कुछ नहीं कर पाता है। युग पुरुष अपनी साधना में अग्नि रूपी परमात्मा की उपासना से अग्नि की तेजस्विता को प्राप्त करके संसार में मान्य तथा स्मरणीय एवं अनुकरणीय हो जाते हैं।

12. **आकाश कला** – आकाश का नाम शून्य या खाली होता है इस शून्य में सब कुछ रहता है क्योंकि जगत् उत्पति में प्रथम स्थान आकाश का होता है। परमात्मा का उपासक अपनी आकाश कला को इतना विकसित करता है कि अपनी आकाश कला के विकास में वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष का दर्शन कर लेता है।

13. **स्मर कला** – जो स्मृति की कला आकाश में रहती है वही संस्कार के माध्यम से स्मर कला के रूप में प्रकट होती है। जब कहते हैं कि याद करो जो हम अप्रत्यक्ष वस्तु का या घटना का, किसी बात का स्मरण करते हैं। जब व्यक्ति महापुरूष के रूप में संसार में आप्त पुरूष या मुक्मात्मा के रूप में प्रकट होता है तो परमात्मा की सन्निधि में वह बहुत कुछ स्मरण कर सकता है। यह स्मर कला का विकास है, क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ है और जब उपासक उसके समीप हो जाता है तो वो जो जानना चाहे वह स्मरण हो जाता है।

14. **आशा कला** – आशा कला का महत्वपूर्ण स्थान है सामान्य जन भी

आशावान होकर जीवित रहता है निराशा को मृत्यु माना है और आशा को जीवन माना है। परन्तु यहां जिस आशा कला का वर्णन है वह परमात्मा की प्राप्ति आशा को माना है जब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो जाती है, तब तक लोक में संसार में सार्थक नहीं होता है। मुक्तात्मा पुनः संसार में इसीलिए आते हैं कि उन्हें परमात्मा के पुनः आनन्द को प्राप्त करना है तथा सांसरिकजनों को उस आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रेरित करना है।

15. **प्राण कला** – प्राण सर्वोत्कृष्ट कला है। प्राणवत्ता ही मनुष्य को हर क्षण जीवित रहने का संकेत देती है। योगीजन इसी प्राण के बल पर चमत्कार उत्पन्न करते हैं जो उनको सामान्य जन से विशिष्ट करता है। परमात्मा को प्राणाधार कहा गया है जिसने उसकी उपासना की है उसकी कला विकसित होकर पूज्य बना देती है।

16. **आत्मा कला** – आत्मा ही वह कला है जिसके विकसित होने पर सब कुछ विकसित हो जाता है, जिसने अपनी आत्मा को परमात्मा को समर्पित कर दिया उसकी आत्म कला का विकास आनन्द की दृष्टि से मापन से बाहर हो जाता है ऐसी आनन्द से भरपूर आत्मा ही संसार में भगवान के रूप में अर्चित होती है।

इन सोलह कलाओं का वर्णन जो हमें वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उनका आशय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति यदि यत्न करे तो वह सम्पूर्ण कलाओं का विकास कर सकता है। जिसकी एक भी कला विकसित होती है तो वह भी विशेष पुरूषों में परिगणित होने लगता है।

भगवद् रूप के वर्णन से अभिप्राय यह नहीं है कि परमपिता परमात्मा अवतार लेता है इसका अर्थ इस प्रकार ग्राह्य है परमात्मा की व्यवस्था में वह मुक्तात्मा संसार का कल्याण करने के लिये आती है और वह परमात्मा के समीप रहकर उसकी उपासना में लीन होकर परमात्मा के गुणों को अपने में धारण करके संसार के लोगों में सर्वश्रेष्ठ होकर ऐश्वर्य से भरपूर होकर जो वेद में प्रार्थना की है तदनुसार वह भगवान् अर्थात् अनुपम ऐश्वर्यशाली हो जाता है। यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का एकपाद है और उसके तीन पाद प्रकाशमय तथा आनन्दमय है। यह पाद भी जब अच्छे काम करने पर धर्माचरण करने पर सामान्य आनन्द देता है तो जब व्यक्ति उस आनन्द रूप परमात्मा के समीप रहेगा तो उसके आनन्द रस को पीने वाला व्यक्ति युगपुरूष आप्त पुरूष ऋषि देव तथा भगवद् रूप तो हो ही जाता है।

महामहोपाध्याय
पूर्व कुलपति
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भगवता संपन्न गुरु जम्भेश्वरम्

आचार्य कृष्णानन्द

भग – ऐश्वर्य यानि सर्वगुण श्री संपन्न होना तथा त्रयगुणों से बाह्य होना। ''निष्त्रयगुणो भव अर्जुन:' सम्पूर्ण संसार तीनों गुणों से ओतप्रोत है। प्रकृतिवान संसार है, प्रकृति के ही सत्व, रज, तम तीन गुण हैं। इन्हीं तीनों गुणों की साम्यता ही सृजन कर्तृ है, विकृति ही विसर्जन कर्तृ है, जिसको गुरू जम्भेश्वर जी ने कृष्ण माया कहा है। इस त्रयीगुणी प्रकृति नियम का नियामक भी कोई अन्य ही होना चाहिये। वही भगवान तत्व है, वह भगवत तत्व 'सूत्रेमणि गणा इव' सर्वत्र माला में मनके की भांति ओतप्रोत सूत की तरह है। 'एक खिन म्हे तीन भवन फेरवा, जीवा जूण समाई' एक ही क्षण में तीन लोकों का हम पालन पोषण करते हैं। सभी जीव योनियों में समाहित होगर।

प्रकृति तथा प्रकृति जन्य संसार की उत्पत्ति विनाश का एक समय निर्धारित है। इस समय प्रकृति का विस्तार चल रहा है। कभी प्रकृति यानि पांच तत्व आकाश, वायु, तेज, जल और धरणी का अपने कारण में लीन भी होगा। पहले भी कई बार प्रलय हो चुका है तब क्या था एक निरालंभ शिंभू ही स्वयं ही रहता है या के होता धुन्धुकारूं, धुन्धुकार हो जाता है। गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि

म्हे तद पण होता अब पण आछै।

बल बल होयसां कहो कद कद का कहूं विचारूं।। – शब्द 4

अर्थात् हम तो भगवत रूप से प्रलयावस्था में भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। कहो मैं अपनी आयु कब की बताऊं।

आप उस प्रलयावस्था की बात पूछ रहे हैं तो मैं बता रहा हूं और सृष्टि सृजन अवस्था की बात पूछते हैं तो सतयुग प्रथम युग की बात भी बता रहा हूं। मैंने ही नृसिंह रूप धारण करके प्रहलाद को वचन दिया था। उसी वचन को पूर्ण करने हेतु त्रेतायुग में राम रूप धारण करके सात करोड़ का उद्धार किया था। द्वापर युग में कृष्ण रूप धारण करके नौ करोड़ का उद्धार किया था। इस समय कलयुग में गुरू रूप धारण करके मैं आया हूं और बारह करोड़ का उद्धार करूंगा। इस समय कलयुग चल रहा है।

कलयुग बरते चेतो कोई, चेतो चेतण हारूं –

शब्द 84 में कहा है –

दशरथ सो कोई पिता न देख्यो, सीत सरीखी तिरिया न देखी
हनुमत सो कोई पायक न देख्यो, भीम जैसी सबकाई

रावण सो कोई शव नहीं देख्यो, राम लक्ष्मण जैसा भाई नहीं देखा
कृष्ण जैसी बंसी बजाने वाला नहीं देखा,
दुर्योधन जैसा अहंकारी नहीं देखा
गोरव जैसा कोई पति नहीं देखा
ब्रह्माणी जैसा त्यागी नहीं देखा
शिव पार्वती जैसा जोड़ा नहीं देखा इत्यादि।

ये सभी मैंने देखा है, उस समय वहां पर गुरूदेव कहते हैं कि मैं उपस्थित था। अभी भी देख रहा हूं।

चांद सूरज दोय साक्षी थरप्या, पवन पवनेश्वर पवन अधारी - शब्द 94

अर्थात् सूर्य चन्द्र ये दोनों हमारे नेत्र हैं। सूर्य दिन में प्रकाशित करता है यानि सभी का साक्षी होता है। रात्रि में चन्द्रमा साक्षी होता है और जब दोनों ही नहीं रहते तो अमावस्या रहती है। कहा भी है -

सोम अमावस आदितकारी कांय काटी वनरायौ - शब्द 7

उस समय वहां पर उपस्थित जनों से कहा कि मैं भूतकाल की बातें आंखे देखी बता रहा हूं। मैं किसी 'सरहै बैठा सीख न पूछी, निरत सूरत सब जाणी' मैं किसी पाठशाला में बैठकर किसी गुरू के द्वारा ज्ञान नहीं लिया है और न ही पुस्तकें पढ़कर बता रहा हूं। मैं तो सूर्य चन्द्र, पवन, अमावस्या को साक्षी बनाकर उनके द्वारा देख रहा हूं। मैंने देखा है, आप कब की बातें पूछ रहे हैं। मैं छत्तीस युगों की बात जानता हूं, देखा है वही बता रहा हूं। हो सकता है तुम्हारे आधुनिक कवियों से मेल नहीं खाती है तो भी चिंता मत लेना -

मैं कहता आंखन की देखी, तूं कहता पुस्तक की देखी।

गुरु जाम्भोजी कहते हैं -

गुरू के शब्द असंख्य प्रबोधी, खार समंद परीलो
खार समंद परे परे रै, चौखण्ड खारूं पहला अनंत न पारूं - सबद 29

वर्तमान में भी मैं यहां समराथल पर बैठा हूं किन्तु मेरे शब्द खार समंद तक तथा उनसे भी परे तक पहुंच रहे हैं। किन्तु 'लैसी कोई हिरदै लेयण, अन्धा रहया इवांणी'। जिसके हृदय रूपी नेत्र हैं वही शब्द ब्रह्म को ग्रहण करेगा। किन्तु जो हृदय से अन्धा है वह खाली ही रहेगा। जाम्भोजी कहते हैं कि वर्तमान काल में शब्द ब्रह्म का विस्तार किया जा रहा है। अन्य काल में तो शस्त्र द्वारा विनाश किया गया था। समय देश अनुसार ही 'जो ज्यूं आवे सो त्यूं थरप्या, साचां सू सत आयो' उन्तीस नियमों की आधार संहिता भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों के लिये निर्धारित की गयी है।

जाम्भोजी कहते हैं कि ये नियम काल जयी हैं, जितना वर्तमान में उपयोगी हैं उससे ही कहीं अधिक भविष्य काल के लिये भी उपयोगी सिद्ध होंगे। इस समय अकाल की मार झेल रहे प्राणी आगे भी दुष्काल पर्यावरण दूषित होने का दंश झेलते र हेंगे। इसलिये समय रहते उपाय कर लेना चाहिये। वन-वन्य जीवों की रक्षा करना परमावश्यक है। प्रकृति का संतुलन बिगड़ जायेगा तो एक-दूसरे के जीवन सहायक के स्थान पर जीवन लुप्त करने का कारण बन जायेंगे। यही इस समय हो रहा है। चारों ओर पर्यावरण दूषित हो चुका है। श्वास जैसी जीवनी बूटी भी प्राप्त होना दुर्लभ हो चुकी है। यह जाम्भोजी का भविष्य हेतू कथन था जो सत्य सिद्ध हो रहा है।

मोरा उपाख्यान वेदू कण नत वेदूं
शास्त्रे पुस्तके लिखा न जाई
मेरा शब्द खोजो ज्यूं शब्दे शब्द समाई - सबद 14

गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि आप मेरे प्रत्यक्ष रूप को तो नहीं देख सकते किन्तु मैं शब्द ब्रह्म रूप से सर्वत्र आकाश तत्व में रहता हूं। आप जब चाहें शब्द का उच्चारण करके मेरे से सीधा संपर्क स्थापित कर सकते हैं। शब्दों द्वारा शब्दों में समाहित होकर सीधी वार्तालाप हो जाती है। इसलिये लय सहित शब्दोच्चारण कीजिये। शब्द ब्रह्म में लीन हो जाओगे, मेरा शब्द बोलो

ज्यूं झीणी वाणी, जिंहिका दूरा हुंता दूर सुणीजै,
सो शब्द गुणा सारूं गुणा सारूं बलै अपारूं। शब्द 21

यदि आप आंखों से दर्शन करना चाहते हैं तो ज्योति में दर्शन सुलभ है। परमात्मा भगवत रूप ज्योति स्वरूप है। हम सामान्य लोग जीरो वॉट के बल्ब हैं किन्तु ज्योति स्वरूप परमात्मा हजारों वॉट की लाइट ऊर्जा समाहित किये हुए है। यही जीव ईश्वर में अन्तर है। इस समय हमारे पास दो ही साध्धन हैं जिनके द्वारा ज्योति शब्द स्वरूप ईश्वर का साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हम परमसत्ता से जुड़ सकते हैं और शक्ति सम्पन्न हो सकते हैं, इसलिए तो कहा है -

'चंदे सूरे शीश निवंतो, विष्णु सूरा पोह पूछ लहंतो। - शब्द 30

गुरू जी ने फरमाया है कि

जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठा आसण धारी - 84

मैं तो युगों-युगों का योगी आया हूं। यहां समराथल पर आसन लगाकर बैठा हुआ हूं। यहां के लोग ज्ञान-ध्यान-नियम के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं। ये लोग पास में तो आते हैं, सामान्य सांसारिक समस्याओं के बारे में ही पूछते हैं, मैं उनका यथायोग्य समाधान देता हूं। मुझे सभी कुछ दिखलाई देता है क्योंकि मैं 'रहिया रूद्र समाणी' शब्द 1, मैं सर्वत्र कण-कण में समाहित हूं।

मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु आदि कोई नहीं है। सभी मेरे हैं और सभी पराये भी हैं। मैं किसी में भेदभाव की दृष्टि नहीं रखता। ये माता-पिता तो केवल कथन मात्र ही हैं इसी हिसाब से शरीर के माता-पिता तो हो सकते हैं किन्तु जीव आत्मा के कोई माता-पिता नहीं है। वह तो अकेला है, कैवल्य रूप है। कैवल्य ज्ञानी बाद ज्ञानी रूप है। अजर अमर अविनाशी अमरण धनी है। उसका जन्म मरण कैसा ?

शब्दवाणी में ही गुरू जाम्भोजी ने केवल कहा है ऐसा नहीं है उन्होंने जीवन जीया है। कुछ अनहोनी उनके जीवन में देखने को मिली है जिसे 'कृष्ण चरित्र' क हा है। सम्पर्क में आने वाले सज्जनों ने कुछ अलौकिक कार्य भी होते देखे हैं जिनका वर्णन संतों ने कविता रूप में इतिहास लिखा है तथा शब्दवाणी में गुरू जाम्भोजी ने कृष्ण चरित्र का उल्लेख सर्वत्र किया है और उद्दण्ड जिज्ञासु वीदो राठौड़ जैसे को नीम के नारियल, जल का दूध और आकों के आम लगाकर दिखलाया था। अनेक स्थानों में हवन करते हुए एक साथ दर्शन भी दिये थे। यह शुक्ल हंस शब्द 67 के प्रसंग से पता चलता है, प्रथम शब्द में भी 'कृष्ण चरित तबिन काचै करवै रहयो न रहसी पाणी' का उल्लेख एक तांत्रिक पुरोहित के प्रति किया है।

जाम्भोजी भगवत तत्व से ओतप्रोत थे। इसका प्रमाण तो पांच सौ पचास वर्ष से चले आ रहे बिश्नोई पंथ से मिलता है। उनके बताये हुए नियमों का पालन करते हुए स्वस्थचित बलिष्ठ तथा आत्म तत्व के ज्ञाता होकर जीवन में युक्ति मुक्ति मार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। जीव रक्षा, वृक्षों की रक्षा और पीड़ित व्यक्ति पर दयाभाव रखना भी प्रमाण देता है कि भगवान के मुख से उच्चरित शब्द आज भी उच्चारणकर्ता और श्रोता को भाव विभोर करता है। उनके द्वारा बताये हुए यज्ञ की प्राथमिकता से यह बिश्नोई सामज करता हा रहा है और पर्यावरण शुद्धि का पाठ पढ़ा रहा है। भगवत जन श्रद्धा से विभोर होकर आज भी नतमस्तक होकर अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। यह अमावस्या मेलों पर देखा जा सकता है। घर पर हवन करना एक ईश्वर की उपासना यज्ञ द्वारा करना यह देन जाम्भोजी की ही है। इस बिश्नोई पंथ पर चलते हुए युक्ति मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। जीवन को सफल कर रहे हैं। अनंत कलाओं से विभुषित गुरू रूप से ईश्वर ही प्रकट जाति से विराजित है। अस्तु

श्री बिश्नोई मन्दिर, ऋषिकेश (उ.खं.)
अध्यक्ष जाम्भाणी साहित्य अकादमी
मो. 9897390866

उपनिषदों में भगवद् विचार

डॉ० बाबूराम (डी.लिट्.)

उपनिषद् वेद का ज्ञानकाण्ड है। अतः उपनिषद् वेद ही है। उपनिषद् को वेदान्त या ब्रह्मविद्या भी कहा जाता है। धातु के पहले 'उप' और 'नि' ये दो उपसर्ग और अन्त में 'किप्' प्रत्यय लगाने से उपनिषद् शब्द बनता है। उपनिसद्यते-प्राप्येते ब्रहात्मपावोऽपया इति उपनिषद्। इसका अर्थ है-जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सके वह उपनिषद् है।[1] उपनिषद्, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान रहस्य या गूढ़ ज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कार, आत्मसाक्षात्कार और ब्रह्मविद्या में सब पर्यायवाची शब्द हैं। ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ब्रह्मव्यापक है।

ईशावास्यपिद्म् सर्वम् यत्किष्ठच जगत्याप्तजतगत्[2] अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप जगत् समस्त ईश्वर से व्याप्त है। भक्त-साधक भगवान् से प्रार्थना करता है। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्। तत्त्वम् पूसन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टयेश[3] अर्थात् हे सबका भरण-पोषण करने वाले परमेश्वर सत्यस्वरूप आप परमेश्वर को श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डल स्वरूप पात्र से ढका हुआ है। आपकी भक्ति सत्य धर्म का अनुष्ठान करने वाले पुत्रों को अपने दर्शन कराने के लिये उस आवरण को आप हटा लीजिये। केनोपनिषद् इस तथ्य का साक्षी है। मन, चक्षु, श्रोत्र और प्राण आदि सबका संचालन ब्रह्म द्वारा ही होता है। यत्प्राणेन न प्रणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्म त्वप्त विद्धि नेदम् यदिदमुपासते।[4]

जिज्ञासु शिष्य गुरुदेव से ब्रह्मविद्या उपनिषद् के लिये प्रार्थना करता है और गुरुदेव संकेत से समझाते हैं। उपनिषद् भो ब्रह्मत्युक्ता तउपनिषद् ब्राह्मी वावत उपनिषदभब्रूमेति।[5] अर्थात् हे गुरुदेव ब्रह्मसम्बन्धी रहस्यमयी विद्या का उपदेश कीजिये। इस प्रकार शिष्य के प्रार्थना करने पर गुरुदेव कहते हैं कि तुझको हमने उपनिषद् रहस्यमयी ब्रह्मविद्या बता दी। हमें निश्चय ही ब्रह्मविषयक रहस्यमयी विद्या बतला चुके है। इस प्रकार तुम्हें समझना चाहिए।

कठोपनिषद् में धर्मराज यमराज और नचिकेता को ब्रह्मविद्या विषयक गंभीर संवाद है। यमराज उपदेश करते हैं।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यम् चरन्ति तत्रे पदम् अर्थत् संग्रहेण ब्रवीभ्योम्येितत्।[6]

सम्पूर्ण वेद जिस परमपद का बार-बार प्रतिवादन करते हैं और सम्पूर्ण तप जिस पद का लक्ष्य कराते हैं अर्थात् वे जिसके साधन है। जिसको चाहने वाले साधकगण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वह पद तुम्हें मैं संक्षेप से बतलाता हूँ वह

है ओम् ऐसा यह एक अक्षर है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और विराट् से भी विराट् है। वह हृदय रूपी गुफा में विद्यमान है।

यमराज ने नेचिकेता को ब्रह्मविद्या का सच्चा अधिकारी समझकर कहा–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारणम् नैमा विछुतो यान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् तस्य भासा सर्वपितम् विभति।

अर्थात् वहां न तो सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा तथा तारक–मण्डल ही प्रकाशित होता है और न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित होती है फिर यह अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकता है? क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही उसी के प्रकाश से ऊपर बताये गये सब प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

प्रश्नोपनिषद् में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि उस परब्रह्म को प्राप्त करने में कौन अधिकारी है और कौन नहीं है?

तेशा मसो विरजो ब्रह्मलोको न येणुजिह्नमनृतम् न माया चेति।[7]

अर्थात् जिन में न तो कुटिलता और झूठ हैं तथा न माया छल–कपट ही है, उन्हीं को यह विष्णु विकाररहित ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो इनके विपरीत लक्षणों वाले हैं, उनको नहीं मिलता है। मुण्डकोपनिषद् में रूपक के माध्यम से ब्रह्मानुभूति का दिक्दर्शन है।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमतेन वेश्व्यम् शरवत्तन्यमो भवेत्।[8]

अर्थात् यहां ओंकार ही धनुष है। आत्मा ही बाण है और परब्रह्म ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित मनुष्य (साधक) बींधा जाना योग्य है। अतः उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए अर्थात् स्वयं प्रकाश जीवात्मा को सर्वप्रकाश ब्रह्म से एकाकार हो जाना चाहिए। उस सर्वव्यापक परमात्मा को ही प्राप्त करना मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है । उस परब्रह्म का स्वरूप कैसा है।

यस्मिनओः पृथिवी यान्तरिक्ष कोतम् मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकम् जानयः आत्मानं मन्य वाचोविमुन्चथामृतस्पैस सेतुः।।[9]

अर्थात् जिन परब्रह्म में स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष, समस्त प्राणः और इन्द्रियों के सहित मन–बुद्धि रूप अन्तःकरण सबके सब ओतप्रोत हैं उन्हीं एक सर्वात्मा परमेश्वर को तुम उपाय के द्वारा जानो। दूसरी सब बातों को–सर्वथा त्याग दो। यही अमृत का सेतु है अर्थात् संसार समुद्र से पार होकर अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिये पुल के समान है ।

वह परब्रह्म सर्वव्यापक है, इस मंत्र में उसका वर्णन इस प्रकार है। ब्रह्मैवेदममृतम् पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।

अधश्वोर्ध्वम् च प्रसूतम् ब्रह्मवेदम् विश्वपिदम् वरिष्ठम्।[10]

अर्थात् यह अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने है ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला हुआ है, यह जो सम्पूर्ण जगत है, वह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है। माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म की सर्वव्यापकता का चित्रण इस प्रकार है।

एश सर्वेश्वर एश सर्वज्ञ एसोऽन्तर्याम्येस योनिः।
सर्वस्य प्रभावाप्ययौ हि भूतानाम्।

अर्थात् यह सबका ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है। यह सबका अन्तर्यामी है, यह सम्पूर्ण जगत् का कारण है, क्योंकि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का स्थान यही है। ऐतरेयोपनिषद् में उल्लेख है कि यह सृष्टि उसके संकल्प से ही उत्पन्न हुई है।

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।
नान्यत्किंचन मिशत्। स ईक्षत लोकान्तु सृजा इति।11।[11]

अर्थात् ॐ यह जगत् प्रकट होने से पहले एक मात्र परमात्मा ही था उसके सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करने वाला नहीं था, उस परम पुरुष परमात्मा ने मैं निश्चय ही लोकों की रचना करूँ। इस प्रकार विचार किया तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को आकाश के समान निराकार बतलाया गया है।

आकाश शरीरम् ब्रह्म। सत्याल्य प्राणाराम् मन आनन्दम्।
शान्तिसमृद्धम मृतम्। इति प्राचीन योग्योपास्व।[12]

अर्थात् यह ब्रह्म आकाश के सदृश निराकार सर्वव्यापक अतिशय सूक्ष्म शरीर के हैं। एक मात्र सन्ता रूप है। समस्त इन्द्रियों को विश्राम देने वाले और मन के लिये परम् आनन्ददायक हैं। अखण्ड शान्ति के भंडार है और अमृत स्वरूप अविनाशी है। परम विश्राम के आक्षय मानकर साधक को उनकी प्राप्ति के लिये उनके चिन्तन और ध्यान में तत्परता के साथ लग जाना चाहिए। अंत में ऋषि अपने शिष्य से कहते हैं। हे सुयोग्य अधिकारी तू उन ब्रह्म का स्वरूप इस प्रकार का मानकर उनकी उपासना कर। अष्टम अनुवाक में ओमिति ब्रह्म[13], ओमितीद्ड्सर्वम् अर्थात् ओम यह ब्रह्म है। ओम् ही यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला समस्त जगत् है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वही में कहा गया है । ब्रह्मविदानोति परम्। ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इस ऋचा में ब्रह्म का स्वरूप बताया गया है। सत्यम्

ज्ञानम् अनंतम् ब्रह्म यो वेद निहितम् गुहायाम् पदमे व्योपम्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।[14]

अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनंत है जो मनुष्य परम विष्णु आकाशों में रहते हुए प्राणियों की हृदय गुफा में छिपे हुए उस ब्रह्म को जानता है। वह उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों को अनुभव करता है। जो ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह अभयम् अमृतम् ब्रह्म की अनुभूति करता है। इस मंच में यही बताया गया है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह आनन्दम् ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति तश्चनेति।[15] अर्थात् मन के सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियों जहां से उसे न पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्मानन्द को जानने वाला विद्वान् किसी से भी भय नहीं करता। वह अभय हो जाता है। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् अर्थात् आनन्द ही ब्रह्म है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है वह ब्रह्म हृदय रूपी गुफा में छिपा है, जैसे तैल तिल में।

तिलेषु तैलम् दयनीय सर्पिशपः स्त्रोतः स्वरणोशु चाग्निः।
एवमात्माऽन्मनि तप्तह्येऽसौ सत्येनैनम् तपसा योऽनुपश्ति।।[16]

अर्थात् तिलों में तेल, दही में घी, सोतों में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते हैं, उसी प्रकार यह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक ज्ञानी, भक्त इसको सत्य के द्वारा संयमरूप तप से देखता रहता है। चिन्तन-मनन करता है उसके द्वारा वह ग्रहण किया जाता है। ऋषि भगवान् का साक्षात्कार करके उन्हें नमस्कार करता है जो इस मंत्र में इस प्रकार है।
यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वस्य भुवनमाविवेशः यह ओषधीषु यो वनस्पति सु तस्मै देवायनयोनम्[17] अर्थात् जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक परम देव परमात्मा अग्नि में है जो जल में है। जो समस्त लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है जो औषधियों में है तथा जो वनस्पतियों में है। उस भगवान् के लिये नमस्कार है, नमस्कार है। इस उपनिषद् में भगवान् का अनेक प्रमाणों उपमाओ, रूपकों और उदाहरणों से वर्णन किया गया है।

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्यपात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यति ठद्दशा)गुलम्।।[18]

अर्थात् यह परम पुरुष, हजारों सिर वाला, हजारों आंख वाला और हजारों पैर वाला है यह समस्त जगत को सब ओर से घेरकर नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय में स्थित है । इसी उपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप के बारे में बताया गया है ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म कालेलक्ष्य मध्ये विश्वस्य प्तस्यरमनेक रूपम्।
विश्वस्यैकम् परिवैष्टितारम् ज्ञात्वा शिवम् शान्तिमत्यन्तमेति।।

उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता आदि को वेदान्त दर्शन मे प्रस्थानमयी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता तो साक्षात् भगवान का गीत है। गीता के प्रत्येक

अध्याय के अन्त में गीता का योगशास्य और उपनिषद् और ब्रह्मविद्या भी कहा गया है। उपनिषदों में चार महावाक्य है। प्रज्ञान ब्रह्म, अयमात्मा, ब्रह्म, तत्त्वमसि और अहम् ब्रह्मास्मि। उपनिषद् केवल भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में ब्रह्मविद्या के विश्वकोष हैं। उपनिषदों में निर्गुण निराकार ब्रह्मा का ही अधिक उल्लेख है। किन्तु साकार स्वरूप में मूर्त सगुण साकार भी अवतार रूप में है। उपनिषद् विश्व में सर्वोच्च दार्शनिक चिन्तन है। ऐसा केवल भारत के विद्वान् ही नहीं अपितु पश्चिम के मनीषी भी इस तथ्य के सत्य को स्वीकार करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. कल्याण उपनिषद् अंक, पृ॰ 132
2. ईशावास्योपनिषद् 1
3. ईशावास्योपनिषद् 15
4. केनोपनिषद्, प्रथम खण्ड, मंत्र 8
5. केनोपनिषद्, चतुर्थ खण्ड, मन्त्र 7
6. कठोपनिषद्, प्रथम अध्याय, द्वितीय वल्ली, मंत्र 15
7. वही, द्वितीय अध्याय, क्तिाप वल्ली, मंत्र 15 प्रश्नोपनिषद्, प्रथम प्रश्न, मन्त्र 16
8. मुण्डकोपनिषद्, द्वितीय मुण्डक, द्वितीयो खण्ड, मंत्र 4
9. वही, मंत्र 5
10. वही, मंत्र 11
11. ऐतरयोपनिषद्, मन्त्र 1
12. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा वल्ली, सप्तम अनुवाक, उपनिषद् अंक, पृ॰ 324
13. वही, पृ॰ 326
14. तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली, प्रथम अनुवादक उपनिषद् अंक, पृ॰ 333
15. वही, पृ॰ 348
16. श्वेताश्वतवरोपनिषद् प्रथम अध्याय, मन्त्र 15
17. वही, द्वितीय अध्याय, मन्त्र 17
18. वही, चतुर्थ अध्याय, मन्त्र 14

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

हिन्दी-विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मो॰ 093158-44906

ई-मेल :-drbabuji1958@gmail.com

गुरु जाम्भोजी का अवतार

डॉ० ब्रह्मानन्द

अवतार का अर्थ है 'प्रपंचे अवतरणम्' जब संसार में अधर्म छा जाता है, जनता त्राहि माम् आर्त होकर पुकारने लगती है। तब भगवान् अपनी योगमाया शक्ति के सहारे इस मृत्युलोक में अवतार धारण करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में अवतार लेने के प्रयोजन की ओर संकेत किया है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृज्याम्यम्।(4.7)

हे भारत! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है। तब तब ही मैं अपने को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृतम्।
धर्म संस्थापनायें सम्भवामि युगे-युगे।।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पाप कर्म करने वालों का नाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये, मैं युग युग में प्रकट हुआ करता हूँ। इससे पूर्व वेद भगवान् में अवतारवाद का वर्णन इस प्रकार मिलता है ।

इन्द्र मित्रम् वरुणामग्रिमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णा गरुतत्मान ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ध्यग्रिंभ यमं मातरिश्वानमाहुः ।

1.164/46

इस ब्रह्माण्ड के पीछे एक ही सद् वस्तु (ब्रह्म) विद्यमान है। मनस्वीजन उस एक तत्त्व को ही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नामों से पुकारते है। सुन्दर पंख वाले तीव्रगामी गरुड़ भी वे ही हैं। उसी तत्त्व को यम तथा मातरिश्वा नाम से भी कहते हैं। क्या वे अनेक हैं? नहीं, अनेक नहीं है, अपितु उस एक के ही वे अनेक नाम और रूपमात्र हैं। एक ही ब्रह्म अनेक कैसे बन जाता है? इसका उत्तर भी वेद में ही दिया हुआ है। अतः

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुष्प ईयते युक्ता हास्य दृश्यः शता दश।

(क्, 6.147-18)

वह परमेश्वर अपनी मायाशक्ति से अर्थात् अनन्त सामर्थ्यों से अनेक देहों के रूप वाला हो जाता है। वह इस अपने रूप को सब पर विख्यात करने

के लिये जैसे जैसे रूप की इच्छा करता है वैसे-वैसे रूप वाला हो जाता है । अत: वह परमेश्वर अनन्त रूप वाला है । वह साकार और निराकार दोनों रूपों वाला है।

द्वे बाव ब्रह्मणे रूपे मूर्तं चौवाभूतं च ।

बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.301

उसके हजारों सिर हैं, हजारों पैर हैं, हजारों आंखें हैं, हजारों हाथ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान के अवतार का प्रयोजन इस प्रकार श्रीरामचरित मानस में वर्णन किया है ।

जब जब होई धमर मैं हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी करहिं अनीति जाइ नहिं करनी। सीदहिं विप्र धेनु सुहधखी। तब तब प्रभु धरि विविध सरिता। हरिहं पानिधि सज्जन पीरा।

इस प्रकार विश्व के अन्य धर्मों, सम्प्रदायों, देशों और कालों में अवतारों का वर्णन मिलता है । भगवत् गीता में कहा है कुछ इस विश्व में दिव्य-विभूतियों है, वे सब मेरे ही रूप हैं।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में भी अवतारों (Incamaalcons) का विस्तृत वर्णन मिलता है। भगवान् विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी और भगवान् शिव के अनेक अवतार माने जाते हैं। भगवान् जाम्भेश्वर जी भी अवतार हैं। उन्होंने इस कलिकाल में अनेक भवसागर में डूबते हुए प्राणियों का उद्धार किया है । जम्भसागर शब्दवाणी उनकी उच्चरित प्रामाणिक वाणी हैं। उन्होंने अपने को अवतार घोषित किया है ।

नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूं।

ये नवों अवतार मेरे ही स्वरूप हैं, देश, काल शरीर से भिन्न भी तत्त्व रूप से तो मैं और नवों अवतार एक ही हैं।

ओम् श्री गढ़ आल मोटपुर पाटण भुय नागोरी, म्हे ऊंडे नीरे अवतार लीयो।

विश्व के सारे गढ़ों में भगवान् विष्णु का धाम बैकुण्ठ लोक श्रेष्ठ गढ़ है। मैं उसी श्री गढ़ से हाल चल करके इस मृत्युलोक में आया हूँ और इस मृत्युलोक में भी नागोर की भूमि में स्थित पीपासर धाम में जो भूमि ग्रामपति श्रीलोहट जी पंवार के अधिकार में है तथा यह भूमि अति उत्तम है जहां पर अत्यधिक गहराई से पानी प्राप्त होता है। उस उत्तम जल वाले प्रदेश में मैंने अवतार लिया है। मेरे अवतार का प्रयोजन इस प्रकार है।

अठगी ठंगण अदगी दागण, अगजा गंजण, उंनथ नाथन, अनू नवावन।

जो लोग पाखंड करके दूसरों को ठगते हैं किन्तु स्वयं किसी अन्य से नहीं ठगे जा सकते ऐसे धूर्त लोगों को ठगने के लिये अर्थात् उनकी ठग-विद्या का धर्म का दाग, चिन्ह विशेष धारण नहीं किया है, उन्हें धर्म के चिन्ह से चिन्हित करके सद्मार्ग में लाने के लिये, जो दूसरों के सच्चे धर्म का भी अपनी कूट बुद्धि की चालाकी से खण्डन कर देते हैं और अपने असत् पाखण्डपूर्ण धर्म मार्ग को भी अपने स्वार्थवश सत्य घोषित करते हैं। ऐसे लोगों के विश्वास पर विनाश करने के लिये उदण्डता से स्वेच्छाचार में विचरण करने वाले लोगों के मर्यादा रूप नाथ डालने के और अहंकार से जकड़े हुए लोग जो किसी के सामने सिर झुकाना नहीं जानते, नम्रता, सुशीलता नहीं जानते, उन्हें विनम्र बनाने झुकाने के लिये मैं यहाँ इस मरुस्थल में आया हूँ।

सोहलवीं शती में इस स्वर्णिम युग में भगवान् श्रीकृष्ण ने ही श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान के रूप में अवतार लिया। उन्होंने स्वयं सतयुग में नृसिंहावतार के समय अपने प्रिय भक्त प्रह्लाद की रक्षा का वचन दिया था कि मैं स्वयं अवतार धारण करके 12 करोड़ जीवों का उद्धार करुंगा तथा कृष्णावतार के समय नन्द बाबा और यशोदा माता की विनती पर वचन दिया था कि मैंने इस प्रकार की बाल लीला से द्वापर में सबको आनन्द प्रदान किया था, किन्तु अब इस कलिकाल में जन्म लीला का प्रदर्शन करूँगा।

श्री साहबराम जी राहड़ ने अपने जम्भसार में वर्णन किया है।

लोहट हैं नन्दराय, जसोदा हाँसा भई।
मारुस्थल ब्रज औभ, पीपासर ब्रज है सई।
पीपासर ब्रज है सई नै, वचन के प्रतिपाल।
कृष्ण कवल के कारणै, गुरु जम्भ लियो अवतार।

गुरु जाम्भोजी ने अपने अवतार काल में ऐसे अनेक चमत्कार प्रदर्शित किये जिनको देखकर जन साधारण तो क्या बड़े-बड़े नवाब राजा महाराजा आश्चर्यचकित रह गए। ऐसे चमत्कारों का प्रदर्शन केवल अवतार ही कर सकते हैं।

पूर्व अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय (हरियाणा)

जाम्भोजी का अद्वैत वेदान्त सम्मत ब्रह्म-तत्त्व

ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

नयमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैण वृणुते तेन लभ्य, क्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुस्वाम्।। कठोपनिषद् 1/2/23

यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह परमात्मा उसके लिये अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है।

परब्रह्म परमात्मा अनुभैवगम्य है। परमात्मा दशों-दिशाओं और तीनों कालों से अनाच्छादित है। वह शांत व चिन्मात्र है। अनुभूति का विषय है। शांत और प्रकाश का रूप है।

दिक्कालाधनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये।
स्वानुभूत्यैकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।-भर्तृहरि कृत वैराग्यशतक श्लोक 1

वह परब्रह्म परमात्मा स्वानुभूति का विषय है, जो अनुभवी को भी स्वयं के समान ब्रह्म बना देता है। संत भक्त, परमात्मा का अनुभव अपने स्वयं में ही करते हैं। अतः वे अनुभवी कहलाते हैं। ब्रह्म रूप कहलाते हैं। इस सम्बन्ध में वेद का हिण्डिमघोष है -

स यो ह वै तत्परम् ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति - मुण्डकोपनिषद् 3/2/9

निश्चय ही जो ब्रह्म को अपरोक्षतः जान लेता है, वह महात्मा ब्रह्म ही हो जाता है, इसमें लेशमात्र का भी संशय नहीं है। जानना द्विविध कहा गया है। प्रथमतः परोक्ष तथा द्वितीयतः अपरोक्ष। किसी भी तत्त्व के बारे में शास्त्र के द्वारा, गुरु के द्वारा, संतों के द्वारा, सत्संग के माध्यम से, सुनने से, पढ़ने से जो जानने में आता है, वह परोक्ष ज्ञान है, अप्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके विपरीत, आत्मतत्त्व को सतत् श्रवण, सतत् मनन अर्थात् चिन्तन अर्थात् स्मरण व सतत् निदिध्यासन अर्थात् ध्यान के द्वारा जानना, अनुभव करना ही प्रत्यक्ष किम्वा अपरोक्ष अथवा साक्षात् ज्ञान है। प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान को निम्न उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है -

न गच्छति बिना पानं व्याधिरौषध शब्दतः।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्नमुच्यते।।
अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वा खिल भूप्रियम्।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवतिमर्हति।। - विवेक चूड़ामणि, श्लोकांक 64ए 69

औषध के बिना पिये, केवल औषध शब्द के उच्चारण मात्र से रोक निश्शेष नहीं होता। इसी प्रकार बिना अपरोक्ष अनुभव के केवल 'मैं ब्रह्म हूं' कहने से कोई ब्रह्म नहीं हो जाता।।64।। बिना शत्रुओं का वध किये और बिना संपूर्ण भूमण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किये 'मैं राजा हूं' ऐसा कहने मात्र से कोई राजा नहीं हो जाता।।69।।

वस्तुतः संत अपरोक्षानुभूमि काम्पन्न तो होते ही हैं, परोक्ष ज्ञान काम्पन्न भी होते हैं। भागवत्कार ऐसे संत व गुरु के लक्षण बताते हुए कहते हैं –

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुश्रेय उत्तमम्।
शब्दे परे च निष्णातं ब्रह्माण्युपशम्बश्रयम्।। – श्रीमद्भागवत् 11/3/21

उत्तम श्रेय के आकांक्षी आत्माजिज्ञासु को ऐसे गुरु का आश्रय लेना चाहिये जो शाब्दे अर्थात् अधीत वेद व परे परमविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या में निष्पात् अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारी हो।

भगवत्कार ने यह भी कहा है कि गुरु अथवा उपदेशक अथवा संत का ब्रह्मसाक्षात्कारी होना अत्यावश्यक है। यदि वह श्रोत्रिय वेदों का विद्वान न हो तो भी कोई बाधा की बात नहीं है। आचार्य शंकर ने भी ऐसा ही कहा है –

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तम।।34।।
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानल।
अहैतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्।।35।।
तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्वप्रश्रयसेवनैः।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्जातव्यमात्मनः।।36।।

जो क्षत्रिय हों, निष्पाप हों, कामनाओं से शून्य हों, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हों, ब्रह्मनिष्ठ हों, ईंधन रहित अग्नि के समान शान्त हों, अकारण दयासिंधु हों और प्रणत (शरणापन्न) सज्जनों के बन्धु (हितैषी) हों, उन गुरुदेव की विनीत और विनम्र सेवा से भक्तिपूर्वक आराधना, उनके प्रसन्न होने पर निकट जाकर अपना ज्ञातव्य पूछें।

ऊपर के विवेचन से इतना स्पष्ट हो चुका है कि गुरु, संत, उपदेशक को ब्रह्मनिष्ठ अवश्य होना चाहिये, साथ ही यह भी स्पष्ट हो चुका है कि जो ब्रह्मनिष्ठ होते हैं उनमें और ब्रह्म में लेशमात्र का भी अंतर नहीं होता। अंतर मात्र देहकृत उपाधि के कारण दृष्टिगोचर मात्र होता है अन्यथा आत्मदृष्ट्या तो दोनों में कोई भेद नहीं होता। इस अभेद को श्रीमद्भगवद्गीता में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिर बुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्माणि स्थितः।। – श्रीमद्भगवद्गीता 4/20

प्रिय को प्राप्त करके हर्षित न हों, अप्रिय के प्राप्त होने पर उद्वेग को प्राप्त न हो, ऐसा स्थिरबुद्धि, संशयात्मक ज्ञान से रहित ब्रह्मवेत्ता सच्चिदानंदन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है। रामचरितमानस में भी यही बात कही गई है –

सोई जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होई जाइ।। 2/127/3

वाल्मीकि श्रीराम से कहते हैं – 'हे राम! अपने आपको आप जिसको जनवा देते हो, वही आपको तत्त्वत: जान पाता है और एक बार जान लेने पर फिर वह और आप अलग-अलग न रहकर एक हो जाते हैं। दोनों में तत्त्वत: कोई अंतर नहीं रहता। महर्षि नारद ने भी भक्त और भगवान में अभेद का ही कथन किया है –

तस्मिनतज्जने भेदाअभवत्।।41।।

परब्रह्म परमात्मा और उनके भक्तों में भेद का सर्वथा अभाव है।

जाम्भोजी महाराज ने भी अपने लिये अनेकश: ब्रह्म, स्वयम्भू, ॐ जैसे शब्दों का व्यवहार किया है। ऐसा स्वकथन वही कर सकता है जो ब्रह्म साक्षात्कारी हो। एक दो उदाहरण देखें –

''ॐ रूप अरूप रमूं पिण्डे ब्रह्मण्डे घट घट अघट रहायो।''

जम्भसागर - टीकाकार आचार्य श्री कृष्णानन्द जी, सबद 19/1-2

मैं ओंकार रूप हूं। ॐ शब्द ब्रह्म है। शब्द रूपातीत होता है। अत: मैं भी ॐकार रूप होने से अरूप हूं फिर भी पिण्ड व ब्रह्मण्ड में रम रहा हूं। मैं घटा-घट, शरीर-शरीर में रमा हुआ हूं, फिर भी मैं देहधारी नहीं हूं।

उक्त प्रकार के निश्चयात्मक स्वात्मकथन मात्र और मात्र ब्रह्मनिष्ठ ही कर सकता है। जाम्भोजी भी पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मरूप ही थे। अत: उन्हें अपने को ब्रह्म कहने में कभी भी संकोच नहीं किया।

जाम्भोजी महाराज उत्तर भारतीय संत श्रृंखला में परगणित हैं और कम से कम ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा में अन्य संतों के विचारों से इनका साम्य है। अत: हम उत्तर भारतीय संतों के उपास्य निर्गुण-निराकार परमात्मा का ही सर्वप्रथम विवेचन करेंगे।

उत्तर भारतीय संत वैचारिक धरातल पर शंकर निर्दिशेष अद्वैत सिद्धान्त से एकमत रखते हैं। अत: हमारा लक्ष्य इसी दर्शनानुसार विवेचन करना अभीष्ट है। उक्तवर्णित ब्रह्म का वेदान्तशास्त्र दो प्रकार के लक्षणों से वर्णित करता है (1) स्वरूप लक्षण तथा (2) तटस्थ लक्षण।

जिस लक्षण से किसी वस्तु का स्वरूप जाना जाये, वह स्वरूप लक्षण जबकि जिससे स्वरूप न जाना जाकर कार्य आदि जाने जाते हैं, वह तटस्थ लक्षण कहलाता है।

स्वरूप लक्षण द्विविध होता है (1) विधेयमुख (2) निषेधमुख। विधेयमुख लक्षण है सत्-चित्-आनन्द। ब्रह्म तीनों कालों में एकरस एक जैसा विद्यमान रहता है। अतः वह सत् स्वरूप है। ब्रह्म जड़ न होकर चैतन्य है, अलुप्त प्रकाश रूप है। तीनों कालों में उसकी चेतन्ता अवबाधित बनी रहती है और उसकी चेतन्ता को ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड चेतनवत् प्रतीत होता है। अतः ब्रह्म पलुप्त प्रकाशमान है। ब्रह्म अखंड आनंद स्वरूप है। उसका आनंद कभी भी कम ज्यादा या तिरोहित नहीं होकर सदैव एक जैसा बना रहता है। यह ब्रह्म का विधेयमुख वर्णन है। यथा -

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मः'

निषेधमुख लक्षण हैं - निरंजन (जंजन माया रहित), निराकार (आकर हीन), निर्विकार (विकारहीन अर्थात् षड्भाव विकार हीन) निष्क्रिय (निष्पंद, क्रियाहीन), निष्कलुष (कालुष्य से रहित), अलक (अविषय अर्थात् न दृष्टि में और न मुष्ठि में उठा सकने योग्य), अमूरति (आकारहीन), अजोनि (अजन्माआदि हीन), अविनाशी (अंतहीन), निस्सीम (सीमा रहित) आदि आदि।

तटस्थ लक्षणों द्वारा वस्तु के कार्य, व्यापार आदि का बोध होता है। जैसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं, 'जन्माद्यस्य यतः' जिससे इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है, वह ब्रह्म है। पुनः जैसे -

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन
जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति
तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म। - तैत्तिरीयोपनिषद्

अर्थात् जिस तत्त्व के इस समस्त चराचर की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा इसकी स्थिति है और अंत में जिस तत्त्व में इसका लय होता है, वही ब्रह्म है।

यहां तक ब्रह्म के लक्षण बता दिये गये हैं। अब उस ब्रह्म की व्याप्ति कहां है, यह बताया जा रहा है।

परब्रह्म-परमात्मा, जो सर्वव्यापक कहा गया है, अन्तःकरण प्रतिबिम्ब रूप में जीव में व्याप्त है। वह जीव में अन्य भूतों की तरह व्याप्त होने पर भी अन्य भूतों से जैसे उसका स्वरूप भिन्न है, वैसे जीव से उसका स्वरूप भिन्न नहीं है क्योंकि अन्य भूत तो अचेतन है जबकि जीव चेतन है। अतः उसमें वह स्वरूप से ही व्याप्त है। जैसे तिल पुष्प आदि में तेल व गंध आदि।

अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है कि ब्रह्मातिरिक्त अन्य सभी पदार्थ परमार्थतः मिथ्या है। वे ब्रह्म में अध्यस्त हैं। ब्रह्म ही अध्यस्त समस्त प्रपञ्च का अधिष्ठान हैं। प्रश्न हो सकता है, जैसे ब्रह्म समस्त प्रपञ्च का अधिष्ठान है, वैसे ब्रह्म का भी कोई अधिष्ठान होगा? इस पर ब्रह्म सूत्रों से उत्तर मिलता है - 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठतः'

अर्थात् वह अपनी महिमा में, अपने आप में ही प्रतिष्ठित है।

अपने आप में ही प्रतिष्ठित होने का तात्पर्य है कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद शून्य है। विजातीय भेद तब होता है, जब ब्रह्म का कोई अन्य आधार अथवा अधिष्ठान हो। ब्रह्म से महत्तर ऐसा कोई दूसरा तत्त्व नहीं है कि वह ब्रह्म का अधिष्ठान बन सके। अत: ब्रह्म विजातीय भेद शून्य है। सजातीय भेद वहां होता है, जहां ब्रह्म जैसा ही कोई दूसरा तत्त्व और हो। किन्तु ब्रह्म जैसा ब्रह्म ही है। अत: उसका कोई सजातीय न होने से वह सजातीय भेद शून्य है। स्वगत भेद तब होता है जब ब्रह्म अवयव वाला शरीरी हो; ब्रह्म निराकार है। अत: वह निश्चय ही है।

निष्कर्षत: सिद्धान्त निष्पन्न होता है कि ब्रह्म जैसा और कोई नहीं होने से, वही सर्वोच्च सत्ता होने से व निराकार होने से वह एक अद्वैत रूप है।

परमब्रह्म–परमात्मा ही समस्त ब्रह्माण्ड का अभिननिमित्तोपादान कारण है। जब हम ब्रह्म को ही निमित्त कारण तथा ब्रह्म को ही अपादान कारण मानते हैं, तब स्थूलत: मन में विचार आता है कि यदि ब्रह्म ही सृष्टि का निर्माता है तो उसको अकर्त्ता तथा निष्क्रिय कैसे कहा जा सकता है।

इस पर अद्वैत वेदान्त कहता है कि वह ब्रह्म सर्वधर्म रहित होता हुआ भी माया रूप उपाधि के द्वारा सर्वधर्मोपपन्न बन जाता है। इसी माया शक्ति के द्वारा स्वर्गादि जगत सृजन कार्य आदि में प्रवृत्त होता है। यह बात वेदान्त सूत्र में 'सर्वधर्मोपपन्तेश्रच' सूत्र से कही गई है, जिसका तात्पर्य है कि वह निर्धर्मक ब्रह्म माया के द्वारा सर्वधर्मोपपंन सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान है। माया की सहायता बिना कर्तृत्वादि धर्मरहित ब्रह्म में कर्तृत्व बन नहीं सकता। माया विशिष्ट ईश्वर में ही कर्त्तव्य बनता है, शुद्ध चैतन्य रूप ब्रह्म में यहां एक बात ध्यान रखने की है कि जिस प्रकार जीव अविद्या के वशीभूत रहता है, वैसे ईश्वर माया के वशीभूत नहीं होता अपितु माया उसके अधीन रहती है।

यद्यपि ईश्वर में कर्तृत्वादि धर्म का वर्णन ऊपर आया है किन्तु वह कर्त्ता न होकर मात्र साक्षी है क्योंकि वह निरीह, निष्काम है। सर्वभूतों के हृदेश में विराजित होकर अपनी माया रूपी शक्ति के द्वारा सबका संचालन कर रहा है। वही ईश्वर सब भूतों के अन्त में स्थित होकर नियामक होने से अंतर्यामी तथा शुभाशुभ कर्मों का दृष्टा होने से साक्षी कहलाता है।

पुन: यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि जब यही ईश्वर सारे संसार का नियामक है, तब उसमें कर्तृत्व धर्म आ जाता है। साथ ही तो करने वाला है, वही भोगने वाला होता है, यही नियम है। इस दार्शनिक नियम के अनुसार भोतृत्व भी

इस साक्षी का ही धर्म हो जाता है। ऐसा होने पर जीव की तरह साक्षी ईश्वर को भी सुख-दु:ख होने चाहिये। प्रत्युत जीव में सुख-दु:ख का भोग न होकर ईश्वर में ही होना चाहिये। जैसाकि वृहदारण्यकश्रुति में कहा गया है - 'स एष साधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते स एवासाधु कर्म कारयति यमधो विनीषते'' वही ईश्वर उस पुरुष में अच्छे कर्म करने की प्रेरणा करता है जिसका कि वह उद्धार करना चाहता है और वही उस पुरुष से जिसको कि पतित करना चाहता है, बुरे कर्म करवाता है, इत्यादि श्रुतियां जीव में स्वतंत्रतया शुभाशुभ कर्मकर्तृत्व का निराकरण कर अन्तर्यामी ईश्वर में ही बतला रही है।

इस प्रश्न का उत्तर यही है कि यह ईश्वर भी स्वेच्छा से स्वतंत्रतया कुछ भी नहीं करता है, न उसमें कर्तृत्व की भावना ही है किन्तु वह चैतन्य स्वतंत्रता मात्र से अन्त:करणादि व अंत:करण विशिष्ट जीवादि का प्रवर्तक है। जीव अपने कर्मों के अनुसार ही फल पाया करता है। ईश्वर जज की तरह केवल कर्मफल प्रदाता है। योग वशिष्ठ में कहा गया है -

निरिच्छेसंस्थिते रत्ने यथा लौहः प्रवर्तते।
सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः।।
अत आत्मानि कर्तृत्वमकर्तृत्व च संस्थितम्।
निरिच्छत्वादकर्त्ताऽसौ कर्ता सन्निधिमात्रत।।

जैसे चुम्बक की सत्तामात्र से लौह का आकर्षण हो जाता है, चुम्बक में अचेतन होने से वास्तविक आकर्षण नहीं है। उसी प्रकार चैतन्य की सत्तामात्र से भूतों में प्रेरणा बन जाती है, उसी को लेकर वस्तुत: ईश्वर में कर्तृत्व न होते हुए भी वह कर्त्ता कहलाता है।

वस्तुत: ब्रह्म का वर्णन मायिक बुद्धि से होना असम्भव है, क्योंकि ब्रह्म अमायिक है। इसीलिये उपनिषद् में कहा गया है -

यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति।। - तैत्तिरीयोपनिषद् 2/9/1

मन के सहित वाणी आदि समस्त इंद्रियां जहां से उसे न पाकर लौट आती हैं; उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला महापुरुष, किसी से भी भय नहीं करता।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र क थं तटुपलभ्यते - कठोपनिषद् 2/3/12

ब्रह्म न वाणी से, न मन से, न नेत्रों से ही प्राप्त किया जा सकता है। फिर वह अवश्य है, इस प्रकार कहने वाले के अतिरिक्त दूसरों को कैसे दिख सकता है।

जाम्भोजी के सबदों के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप लक्षण का विवेचन।

सर्वप्रथम सत् का विवेचन, जो तीनों कालों में एक रस रहे, वह सत् कहलाता है। सबद तीन में जाम्भोजी कहते हैं –

म्हे तदि पणि हुंता, अब पणि अछां, वळि वळि हुयस्यां।
कहि कदि कदि का कहूं विचारूं।।सबद 3/27-29।।

हम सृष्टि की आदि से पूर्व में भी थे, अब भी हैं और पुनःपुनः भविष्य में भी होंगे। कहो, मैं कब-कब की बात कहूं। संत वील्होजी ने भी ऐसा ही कहा है –

तदि पणि होता अब अछै, बलि बलि होयसी सोय।
तास निरंजन देव नै, बिरलौ चीन्है कोय।।5।। – ग्यानचरी

चित्त का तात्पर्य अलुप्त प्रकाश है। जो प्रकाश कभी भी लुप्त नहीं होता। सर्वत्र सर्वदा एकरस रहता है, वही चित्त तत्त्व है। सबद पांच में कहते हैं –

भवणि भवणि म्हारै एका जोती। 5/1

प्रत्येक भवन में मुझ एक ही ज्योति प्रकाशित हो रही है। सर्वत्र मैं ही मैं हूं। इस सबद की इस पंक्ति से ही अद्वैत वेदांत का एक आत्मा का सिद्धान्त भी सिद्ध होता है।

आनन्द का तात्पर्य अखण्डानन्द है। जो आनन्द कभी मिले, कभी न मिले (काल कृत परिच्छेद); जो आनन्द कहीं मिल व कहीं न मिले (देशकृत परिच्छेद) व जो आनन्द किसी वस्तु से मिले किसी से न मिले (वस्तु कृत परिच्छेद) वह अखंड आनन्द नहीं है। अखंडानंद इन तीनों से परिच्छिन्न नहीं होता। वह एकरस होता है।

सबद-2 में जाम्भोजी महाराज कहते हैं – कोपूं न कलापूं दुख न सरापूं – 2/4

न मैं क्रोध करता हूं और न दुःखी होता हूं। न मैं किसी अन्य को दुखी करता हूं और न किसी को श्राप देता हूं।

यद्यपि इस सबद में विधेयात्मक वर्णन न होकर विशेधात्मक वर्णन है तथापि अर्थ इसका भी यही है कि जाम्भोजी द्वारा मान्य काल में दुःख का लेश भी नहीं है। अर्थात् वह सुख रूप है। तबही वे न स्वयं दुखी होते हैं और न अन्यों को दुखी करते हैं। इतना ही नहीं, किसी अन्य को दुखी होने के लिए श्राप भी नहीं देते। इस पंक्ति से जाम्भोजी का सर्वभूतों के प्रति समताभाव भी प्रकट होता है।

ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। जाम्भोजी के सबदों में सच्चिदानन्द शब्द का प्रयोग न भी हो तब भी उन्होंने ब्रह्म का वर्णन करते हुए अनेक स्थानों पर सत्, चित् और आनन्द की व्याख्या की है। सबद 104 में कहते हैं –

सुरगां हुंतो सिंभू आयो कहो कुंणा कै काजै।
नर निरहारी आप रिंजण परगट जोति बिराजै।।

यहां स्वर्ग का तात्पर्य इन्द्रलोक न होकर ब्रह्मलोक माना जा सकता है। निरंजन कहने से ब्रह्म का किसी भी लोक से आना-जाना करना संभव नहीं है। स्वर्ग से आना अवतारवाद का भी समर्थक है।

वैसे 'निरंजण' शब्द से ब्रह्म के विषेधात्मक स्वरूप लक्षण का बोध होता है। 'परगट जोति' से विधेयात्मक स्वरूप लक्ष्पण 'चेतन' का बोध होता है।

'सिंभू' शब्द शंकर का वाचक न होकर 'स्वयंभू' का बोधक है जिसका तात्पर्य है जिसको बनाने वाला और कोई न होकर स्वयं ही है। इस लक्षण से ब्रह्म का विजातीय भेद शून्य होना भी सूचित है।

पूर्व में हमने ब्रह्म का तटस्थ लक्षण बताते हुए कहा है कि ब्रह्म के कार्यों, व्यापारों के द्वारा भी उसका बोध होता है। यद्यपि ब्रह्म निष्क्रिय एवं निर्विकार है तथापि वह अपनी शक्ति के द्वारा सृष्टि का सृजन अभिन्न निमित्तेपादन कारण के रूप में करता है। जाम्भोजी महाराज ने सबद 96 में इसी सिद्धान्त का निरूपण किया है -

सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता।
मेरी ओपति आदि लुहारूं। 96/1-2

वे कहते हैं, हे गुणवान! हे बुद्धिमान!! मेरी उत्पत्ति के बारे में सुन। मैं आदि लोहार हूं। अर्थात् सबसे पहला सृष्टिकर्त्ता हूं।

इस सबद से ब्रह्म का निमित्तकारण होना तो व्यञ्जित है किन्तु उपादान कारण नहीं। फिर भी चूंकि जाम्भोजी महाराज निर्गुण और निराकार ब्रह्म को मानने वाले विचारक हैं। अत: केवलाद्वैत सिद्धान्तानुसार ब्रह्म को निमित्त के साथ-साथ उपादान कारण भी मानना आवश्यक है। जैसे मकड़ी जाला पूरती है तब मकड़ी के चैतन्य होने से वह निमित्त कारण कहलाती है तथा उसकी लार जिससे जाला बनता है, उपादान कारण कहलाती है।

सबद 95 की पंक्ति 1 से 3 तथा 39 से 42 तक पर विचार करने पर भी अप्रत्यक्ष रूप से यही संज्ञान में आता है कि ब्रह्म ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है -

आपै अलख अपनौ सिंभू	**1**
निरह निरंजन कै धंधूकारू।	**2**
आपै आप हुवा अपरम्पर	**3**
आपै अलख उपंनौ सिंभू	**39**
निरह निरंजण कै हुंता धंधूकारूं	**40**
म्है आपै आप हुता अपरम्पर	**41**
हो राजिन्दर लेह विचारूं	**42 - सबद 95**

पंक्ति 3 और 41 में आये शब्द 'अपरम्पर' पर गंभीर विचार करने पर संज्ञान में आता है कि वह परब्रह्म परमात्मा जो अकेला था, ही अपार हो गया। अपार होना वही कहना संभव है जब वही निमित्त कारण तथा वही उपादान कारण हो। क्योंकि जाम्भोजी सर्वत्र ही ब्रह्म को निरंजन कहते हैं। अंजन रहित ही निरंजन होता है। अंजन का ही नाम माया है। केवलाद्वतसिद्धान्त से अलक अन्य दर्शनों में शक्ति (माया) ही उपादान कारण मानी गई है।

उक्त सबद में जाम्भोजी अपने ब्रह्म को निरह निरंजन कहते हैं। निरह-निरंजन, निराकार निरंजन का बोधक है।

सबद 93 की कुछ पंक्तियां स्पष्टत: स्वयंभू ब्रह्म को निमित्त के साथ-साथ उपादान कारण भी सिद्ध करती है -

सहंस नांव सांईं भव सिंभू उपना आदि मुरारी
तदि म्हे रह्या निरालंभ होय करि उतपति धंधूकारो।
ना मेरे बस न बाप न माई अपणी काया आप संवारी - 93/1-3

'अपणी काया आप संवारी' से स्पष्ट होता है कि ब्रह्म ही निमित्त तथा ब्रह्म ही उपादान कारण है। हमने पूर्व में लिखा है कि ब्रह्म रूप चैतन्य सर्वव्यापक होने से शरीर में तथा भूतों के अणु-अणु में व्याप्त है। इन्हीं भूतों में वह विवेक द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिये केनोपनिषद् के

भूतेषु भूतेषुविचित्य धीरा:
प्रत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति - केनोपनिषद् 2/5

इस वचन के द्वारा सर्वव्यापक परमेश्वर (ब्रह्म) अंत:करण प्रतिबिम्ब रूप में भी व्याप्त है। वह जीव में अन्य भूतों की तरह व्याप्त होने पर भी अन्य भूतों से जैसे उसका स्वरूप भिन्न है। उस तरह जीव से उसका स्वरूप भिन्न नहीं है। क्योंकि अन्य भूत तो अचेतन है जबकि जीव चेतन है। अत: उसमें वह स्वस्वरूप से ही व्याप्त है। जैसे तिल पुष्प आदि में तैल व गंध आदि।

पोहप मध्ये परमला जोती, ज्यौं सुरग मध्ये लीलूं - 64/9

फूल में परिमल की भांति तथा स्वर्ग में आनंद की भांति सर्वत्र भगवज्ज्योति विकीर्णित है।

अंत में सबद संख्या 29 को उद्धृत करके इस लेख को विराम देना उचित होगा -

मछी मछ फिरै जब भीतरि	**1**
तिंह का माघ न जोयबा	**2**
परमतंत है अैसा	**3**

आचै उरवार न तार्थ पारूं	**4**
ओवड़ छेवड़ कोइय न थीयो	**5**
तिंह का अंत लहीबा कैसा	**6**
अैसा लो भल अैसा लो	**7**
कहो न कहा गहीरूं	**8**
परमतंत कै रूप न रेसा	**9**
लीक न लेहूं खोज न खेहूं	**10**
वरण विवरजत	**11**
थे खोजो बावन दीरूं	**12**
मीन का पंथ मीन ही जाणंत	**13**
नीर स रंग में रहियो	**14**
सिध का पंथ को को साधु जणंत	**15**
बीजा बरतण वहियौ।।29।।	**16**

जल में मछली और मच्छ फिरते हैं किन्तु उनका मार्ग नहीं जाना जा सकता (1-2)। परमतत्व इसी प्रकार अगम्य है (3)। उसका आर-पार नहीं है (4)। उसका कोई ओर-छोर भी नहीं है (5)। उसको पूर्णरूपेण कैसे जाना जा सकता है (6) हे लोगों! ऐसे परमात्मा को ही पहचानो (7)। उसकी सीमा के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता (8); वह निस्सीम है। परमतत्त्व का न कोई रूप है और न शरीर (रेख) है (9)। न लीक है और न चिन्ह; न खोज है और न खेह है (10)। वह किसी भी प्रकार के रूप से रहित है (11) हे लोगों! तुम बावन वीरों की खोज क्यों करते हैं (12)। वस्तुत परमतम्व इससे परे है। जिस प्रकार मछली का मार्ग मछली ही जान सकती है क्योंकि वही पानी में रमती है (13-14) उसी प्रकार सिद्धि का मार्ग तो बिरले साधु पुरुष ही जानते हैं; शेष लोग तो सांसारिक कार्यकलापों में ही लगे रहते हैं (15-16)।

सम्पादक : रामस्नेही-सन्देश (त्रैमासिक)
60/60 रजतपथ, मानसरोवर, जयपुर 20 (राजस्थान)
मो. 9351503555, 9311155375
e-mail : bks@meetal.com
bksinghal57@gmail.com

भगवान् श्री जम्भेश्वर : जांभाणी साहित्य के प्रणेता स्रोत

-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई

भगवान् परमेश्वर का एक गुणवाचक नाम है। भगवान्, परमेश्वर, ईश्वर, नारायण, राम, कृष्ण ये सभी भगवान् के पर्यायवाची माने जाते हैं जो विष्णु की कोटि के हैं। 'भग' छः विशेषताओं से युक्त होने के कारण परमेश्वर को भगवान् करते हैं। वे हैं-जगत के समस्त ऐश्वर्य (सामर्थ्य) समस्त धर्म, समस्त यश, समस्त शोभा, समस्त ज्ञान और समस्त वैराग्य (निर्गुण-निर्लेप स्थिति)।

श्री कृष्ण भगवान ने गीता में भगवान का रूप बताते हुए कहा- 'सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।'

गुरु जाम्भोजी ने स्वयं को शब्दवाणी में अनेक स्थानों पर विष्णु कहा है। मैं स्वयं सृजनकर्त्ता, निरंजन, बालब्रह्मचारी हूँ। मेरे आदि और अंत का कोई भेद नहीं जानता है। मैं सूक्ष्म रूप में घट-घट में विद्यमान हूँ। मैंने अपनी काया का स्वयं ही निर्माण किया है। यदि मैं चाहूं तो एक शरीर से कोटि शरीरों की रचना कर सकता हूँ। मैं एक क्षण में समस्त जीवों को सम्भाल लेता हूँ। मुझ पर माया का प्रभाव नहीं पड़ता है। मैं रूप और अरूप में शरीर और ब्रह्माण्ड में रमन करता हूँ। मैं प्रत्येक भुवन में प्रकाशित हूँ। मैं जीते जी किसी की रोजी नहीं मारता हूँ किन्तु मरने पर आत्मा को सम्भाल लेता हूँ। मैं निराहारी हूँ, केवल वायु भक्षण करता हूँ और अपने ही आधार पर स्थित हूँ। मैं सर्व शक्तिमान हूँ। सतयुग में सृष्टि का सृजन मैंने ही किया था। मैं विष्णु अपरम्पर हूँ। मैं किसी जाये जीव का जप नहीं करता, मैं निरालम्ब, स्वयंभू, स्वात्म रूप का ही जप करता हूँ। कवि कोल्हजी ने भगवान् जम्भेश्वर के रूप का वर्णन एक कवित में इस प्रकार किया है, देखिये-

जम्भ गुरु जगदीश, ईस नारायण स्वामी।
निरपेष क निरळेप, सकल घट अंतरजामी।
पेट पूठ नंह ताहि, सकळ कूं सनमुख दरसै।
पाप ताप तन जरै, जाहि पद पंकज परसै।
आवै अडोळ अनादि अज, अवगत अलख अभेव।
स्वयं सरूपी आप है, जंभ गुरु जग देव।।

गुरु जाम्भोजी ने परमसत्ता के लिये अपनी शब्दवाणी में अनेक नामों का प्रयोग किया था। विष्णु, स्वयंभू, ओम्, गुरु, सतगुरु, राम, कृष्ण, हरि, श्याम,

पारब्रह्म, लक्ष्मण, मोहन, गोपाल, परमेश्वर, नारायण, परशुराम, बिसमिल्ला, करीम, खुदा, खुदायबन्द, अल्लाह आदि अनेक नाम उनकी वाणी में आये हैं। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने परमसत्ता के लिये स्वयंभू, अपरम्पर, निरीह, निरालम्ब, अलील, अलख, अलाह, अलेख, अडाल, अयोनी आदि शब्द कहे हैं।

वे विष्णु को सर्व शक्तिमान मानते हैं और विष्णु के दसावतारों का उल्लेख किया है। विष्णु का नाम जप उतना ही शक्तिशाली है जितना स्वयं विष्णु या स्वयंभू। वह सृष्टि का कर्त्ता है। वह निरंजन स्वयंभू अनादि है। वे कहते हैं-'**जद पवण न हुंता पाणी न हुंता, न हुंता धर गैणारूं। चंद न हुंता सूर न हुंता, न हुंता गिगन दर तारूं।**' वे पुनः कहते हैं- **अजिया सजिया जीवा जूणि न हुंती, न हुंती कुड़ी भरतारूं। अरथ गरथ ग्रब न हुंता, न तेजी तुरंग तुखारूं। हाट पटण बाजार न हुंता, न हुंता राज दवारूं।** वे बताते हैं, तब क्या होता था-

तदि हुंता एक निरंजन सिंभू, कै हुंता धंधूकारूं।
म्है तदि पणि हुंता, अब पणि आछां, वळि वळि हुयस्यां।
कहि कदि कदि का कहूँ विचारूं।

परमसत्ता विष्णु शुभ कर्म करने वालों के निस्तार और धर्म-रक्षार्थ अवतार धारण करते हैं। वे कहते हैं-

जां जां सैतान करै उफारौ, तां तां महत ज फळियौ।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।७।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।८।। अध्याय-४।।

गुरु जाम्भोजी ने अपनी वाणी में कहा है-

म्हे वाच लीवी पहराजा सूंई सो वाचा प्रवाणौ।
कोड़ि तेतीसूं वाड़ै दीन्ही जांह की जाति पिछाणौ।।

उन्होंने बताया है कि सतयुग में भक्त प्रहलाद के उद्धार के लिये परमेश्वर ने नृसिंह रूप धारण किया था। उस समय तेतीस कोटि जीव प्रहलाद के अनुयायी थे। इनमें से हिरण्यकश्यपु ने पांच कोटि अनुयायियों की हत्या की थी। हिरण्यकश्यपु के मरणोपरान्त प्रहलाद ने उन तेतीस कोटि अनुयायियों के उद्धार का वचन भगवान से मांगा था। उन्होंने चारों युगों में ऐसा करने का वचन दिया था। इस तरह पांच कोटि जीव सतयुग में प्रहलाद के साथ, सात कोटि जीव त्रेतायुग में, राजा हरिश्चन्द्र के साथ तथा नौ कोटि जीव द्वापर युग में युधिष्ठिर के साथ तरे। इस प्रकार तीनों

युगों में इक्कीस कोटि जीव तरे। शेष बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ कलियुग में भगवान जम्भेश्वरजी आये हैं। उनकी वाणी का मूल सबद देखिये-

पांच करोड़ी ले पहराजा तरियो, खरतर करी कमाई।
सात करोड़ी ले राजा हरिचन्द तरियो,
तारादे रोहतास हरचन्द हाट विकाई।
नव करोड़ी ले राव युधिष्ठिर तरियो, धन्य कुंता दे माई।
बारा कोड़ि समाहण आयौ, पहराजा सूं कौळ ज थाई।

भगवान जम्भेश्वरजी के यहां आने सम्बन्धी यह मान्यता नवीन ही है और अधिकांश बिश्नोई कवियों ने यथावसर इसका उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। जाम्भाणी साहित्य के अध्ययन से यह मालूम होता है कि भगवान जम्भेश्वरजी ने अपना यह कार्य ज्ञानोपदेश द्वारा किया था। द्वापरयुग में जैसे भगवान कृष्ण ने गीता के उपदेश से अर्जुन का माया से मोह तोड़ा था वैसे ही कलयुग में भगवान जम्भेश्वर ने अपने शब्दोपदेश से जन-जन का यह सांसारिक मोह दूर किया था। उन्होंने बताया-'जीते जी मरो-जीवन मुक्ति प्राप्त करो, जो जीने की सही विधि जानता है, वही ऐसा कर सकता है।' वे आगे जीने की विधि बताते हुए कहते हैं-बिरले पुरुष ही भली मूल का सिंचन और परमतत्व को जानने का प्रयास करते हैं ऐसे लोगों ने ही जीवन की विधि को जाना है। जिन्होंने जीवन-विधि जान ली, उनको इस लोक में तो लाभ होगा ही, मृत्योपरान्त भी वे किसी योनी में नहीं आयेंगे और इस सांसारिक आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेंगे।

शब्द समूह जाम्भाणी-साहित्य का कोई शास्त्रीय अर्थ शब्दकोशों में नहीं मिलता है और न ही आम आदमी इसका अर्थ जानता है। मूल रूप से यह शब्द है जम्भ-वाणी है। जो साहित्य जाम्भोजी की वाणी को लेकर रचा गया उसे ही जाम्भाणी साहित्य कहते हैं। कालान्तर में इसमें बिश्नोई समाज के लोग, उनकी परम्पराएं एवं मान्यताएं और उनके धार्मिक नियम भी शामिल हो गये। बिश्नोई पंथ के संचालक गुरु जाम्भोजी हैं। उनके समय में जो भी व्यक्ति उनके पास आया उन्होंने उसे कल्याण की बातें बताते, उन्हें जीवन मुक्ति का संदेश देते, उन्हें ज्ञानोपदेश देते। यह उपदेश वे शब्द रूप में देते। इस तरह उन्होंने अनन्त शब्द कहे। इन शब्दों के समूह को 'सबदवाणी' कहते हैं। जिसमें ज्ञान की, विज्ञान की, इतिहास की अनेक बातें भरी पड़ी है। उनकी वाणी में अनेक ऐसे स्थानों, घटनाओं, वस्तुओं और पुरुषों आदि के नाम आये हैं जो इतिहास सम्मत है, तथ्य परक है, प्रामाणिक है उनके समकालीन है परन्तु यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि इतिहास के ऐसे किसी भी महत्वपूर्ण ग्रंथ में गुरु जाम्भोजी का नामोल्लेख नहीं हुआ है। न ही

हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य के इतिहास में जाम्भाणी साहित्य के कवियों एवं उनकी रचनाओं का उल्लेख हुआ है। सम्भवत: ऐसे ग्रंथाकारों ने, इतिहास वेताओं ने, शोधकर्त्ताओं ने, साहित्यकारों ने जांभाणी साहित्य के इन अमूल्य ग्रंथों को अपने शोध से पूर्व नहीं देखा होगा। परन्तु अब यह खुशी की बात है कि बिश्नोई समाज के शोधार्थियों ने इस ओर कदम बढ़ाया है और नई-नई शोध करने की ओर अग्रसित हुए हैं। आज इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिये जाम्भाणी साहित्य अकादमी की भी स्थापना की गई है जो इस अनछुए विषय को और भी आगे ले जायेगी।

जाम्भाणी साहित्य से सम्बन्धित चार सौ से अधिक प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियां मिली हैं, जिनमें जाम्भाणी साहित्यकारों की अनेक रचनाएं हैं। इनमें सबसे अधिक अड़तालीस पाण्डुलिपियां भगवान जम्भेश्वर की शब्दवाणी की हैं। इसके अतिरिक्त दो सौ से अधिक साखियां, दो सौ से अधिक हरजस, दो सौ से अधिक भजन, सौ से अधिक कथाएं, हजारों की संख्या में कवित्त, छंद, दोहे, सोरठे, स्तुति, आरतियां, चौपई आदि मिले हैं। इन ग्रंथों से ही दो सौ से अधिक जाम्भाणी कवियों का भी पता चलता है, जिन्होंने इस साहित्य की रचना की, अन्य की रचनाओं की प्रतिलिपियां बनाई और इन्हें सुरक्षित रखा था। इस कार्य में सबसे महत्त्वपूर्ण भाग परमानन्दजी बणियाल का रहा है, जिन्होंने पांच प्राचीन पोथियों के सहयोग से अपने 'पोथो ग्रंथ ज्ञान' का निर्माण किया था। इस पोथो में वि.सं. 1845 तक रचित हुई सभी रचनाओं को संकलित कर लिया गया था परन्तु खेद का विषय है कि आज यह ग्रंथ अप्राप्त हो चुका है। मुझे अपना शोध कार्य करते समय दो महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ परमानन्दजी बणियाल का वि.सं. 1810-1818 का 'पोथा ग्रंथ ग्यान' एवं वि.सं. 1831 का अमरा का पोथा मिले। ये दोनों महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उस पाण्डुलिपि संकलन में नहीं मिले थे। मैनें भी अपना शोध कार्य करते समय दो सौ से अधिक जाम्भाणी हस्तलिखित ग्रंथ (अन्य) खोज निकाले। मेरे इस कार्य में ब्रह्मलीन स्वामी विवेकानन्द जी का महत्वपूर्ण हाथ रहा था। इसके पश्चात् सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है साहबराम जी राहड़ विरचित जम्भसार जो वि.सं. 1978 में प्रकाशित किया गया था। यह ग्रंथ आज भी मूलरूप में साहबरामजी के वंशजों के पास सुरक्षित उपलब्ध है। इसमें साहबरामजी ने उन प्राचीन सभी रचनाओं को आधार मानकर अपने ढ़ंग से उन रचनाओं को पुन: रचित किया है। इस ग्रंथ की भाषा एवं परमानन्दजी बणियाल के पोथे की भाषा में बहुत अन्तर आ गया है। परन्तु इन ग्रन्थों के स्वरूप के केन्द्र में भगवान जम्भेश्वर का स्वरूप ही है। कवि साहबराम जी ने गुरु जाम्भोजी को ज्योति स्वरूप माना है, उनका यह कवित देखिये-

सबद रूप सोई जोत, जोत निह तत भणीजै।

अमी तत सोई जोत, जोत सब हंस गिणीजै।
तेज शीला सोई जोत, जोत निरंजण जाणीजै।
हिरण्यागर्भ सोई जोत, जोत विराट तणीजै।
महातत्व ब्रह्मा विष्ण शिव, सब ही जोत अपार।
दस चौबीसूं जोत है, साहब सो उर धार।

जाम्भाणी साहित्य के प्रेरणा स्रोत:- जम्भेश्वर जी का अध्ययन करने से पूर्व हम जाम्भाणी पाण्डुलिपियों के अध्ययन के आधार पर जाम्भाणी साहित्य का काल निर्धारण करना उचित समझते हैं। जाम्भाणी साहित्य के निर्माण काल को पाँच भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम काल वि.सं. 1508 से 1593 तक का है। इस समय के प्रमुख कवि हैं-तेजोजी चारण, समसदीन, डेल्हजी, आंछरे, पदम भक्त, कील्हजी चारण, सुरजनजी, सिवदास, एकजी, अमीयादीन, जोधो रायक, केसोजी देहडू, लालचन्द नाई, कान्होजी बारहठ, आसनोजी भाट, ऊदोजी नैण, अल्लूजी कविया, रायचन्द सुथार, काजी महमद, कुलचन्दराय अग्रवाल, रेड़ोजी, लखमणजी गोदारा, आलमजी, रैदास धतरवाल, भींवराज, दीन सुदरदी, मेहोजी गोदारा, रहमतजी, गुणदासजी, लाखोजी एवं अनेक अन्य अज्ञात कविजन हुए हैं। लाखोजी को अगम का कवि माना गया है। उनकी अगम की एक साखी के कुछ छंद देखिये-

जोड़ो काळिंग साथि, विसन रचावैलो।
उतपति धुंधुंकार, पुवन चलावैलो।
सीसे किरणे सूर, फेर तपावैलो।
सरण रहिस्यै साध, असरां दझावैलो।
आप आपणी जोट, आणि, भिड़ावैलो।
तीर काळंग को तोड़ि, धरणि ढुलावैलो।
साधा आणंद होय, कोड रचावैलो।
मिलै तेतीसूं कोड़ि, पहलाद वधावैलो।

भगवान जम्भेश्वरजी की वाणी का इस समय व्याख्यान होता था और यह वाणी उस समय अनेक लोगों को मौखिक याद थी। जाम्भाणी साहित्य के प्रथम कवि भगवान जम्भेश्वर जी थे और साहित्य का प्रथम ग्रंथ सबदवाणी ही था जिसे लोग पाँचवाँ वेद कहते थे।

कवि आलम जी ने कहा है-

वेद जोग वैराग खोज, दीठा नर निगंम।
सन्यासी दरवेस सेख, सोफी नर जंगम।
विथा व्यापी मोहि आज, आसा धरि आयो।

पाणी अन्न आहार पेटि, सुख परचो पायो।
पांचवों वेद सांभळि सबद, च्यारि वेद हूंता चलू।
केवळी झंभ सावळ कवळ, आज साच पायो अलू।।

इस समय के सभी कवियों को हजूरी कवि कहा जाता है। ये वे कवि थे जो भगवान जम्भेश्वर के सम्पर्क में आये थे अथवा उन्होंने उन्हें देखा था। ये उनके हजूर में थे। इसलिये इनकी रचनाओं में सत्य अधिक है। गुरु जाम्भोजी ने स्वयं को विष्णु कहा है और अन्य लोगों को विष्णु के स्मरण का संदेश दिया था। तेजोजी चारण (1480-1575) ऐसे पहले कवि थे जिन्होंने कहा कि भगवान जम्भेश्वर ही विष्णु हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम 'ग्रंथ विसन विलास' की रचना की। इसके अतिरिक्त जम्मे की साखियों की रचना इसी समय हुई थी। कवि डैल्हजी (1490-1550) ने कथा अहंमनी की रचना की थी। पदम भगत (1500-1500) ने क्रिसणजी रो ब्याहलौ की रचना की। ऊदोजी नैण (1505-1593) ने बिश्नोई धर्म के उनतीस नियमों सम्बन्धित कवित्त लिखे। कवि अल्लूजी (1540-1640) ने जाम्भोजी सम्बन्धित कवित्त लिखे। आलमजी गायणा (1530-1610) ने साखियां और हरजस लिखे। मेहोजी गोदारा (1540-1601) ने राजस्थानी की प्रथम रामायण (वि.सं. 1575) की रचना की, जो गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस से पूर्व लिखी गई थी।

जाम्भाणी साहित्य का द्वितीय काल वि.सं. 1594-1845 तक का है। इस समय वील्होजी (1589-1673), केसोदासजी गोदारा (1630-1736) सुरजनदासजी पूनियाँ (1640-1748), परमानन्दजी बणियाल (1750-1845) आदि मुख्य कवि हुए जिनका विपुल साहित्य है। वील्होजी की साखियाँ, केसोजी का प्रहलाद चरित एवं अन्य कथाएं। केसोजी को कथा-काव्य का विशेष कवि माना गया है-''केसो कथा अरथ नै करमूं, तप सूजो आलमूं तांति।'' सुरजनजी पूनियाँ के कवित्त, गीत, रामरासौ एवं भोगल पुराण प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इन्हें कवित का विशेष कवि माना जाता है। उनका एक कवित देखिये जिनमें अच्छे कार्य करने को कहा गया है-

करो साध सूं गोठि, करो सुमारग साकरि।
करो नेम ध्रम कथ, करो हरि जाप उद्यौ करि।
करो कथ केवळी, करो सत सील सुकरणी।
करो जीभ जीकार, करो उदिया घट करणी।
करो काम जको गुरु दखवो, गुर वरजी सोइ न करि।
कळि राखि लाज कुळ उजळौ, कर जोड़ि वास वैकुंठ करि।

परमानन्दजी बणियाल का पोथा ग्रंथ ग्यान, प्रसंग के दोहे, स्रबंग साखी एवं

छमछरी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त दसुंधीदास, नानकदास, लालोजी, गोपाल, दुरगदास, किशोर, मिठुजी, माखनजी, रामूखोड़, रूपो बणियाल, दामोजी, देवोजी, हरिनन्द, गोकलजी, रासानन्द, मुकनजी, सेवादास, सुदामा, हीरानन्द, हरजी बणियाल आदि हैं। इनके अतिरिक्त अज्ञात कवियों की भी रचनाएं मिली है।

जाम्भाणी साहित्य का तीसरा काल वि.सं. 1846-1948 का है। इस समय में रामलला (1775-1850), ऊदोजी अडिंग (1818-1933), गोविन्दराम गोदारा (1860-1950), साहबराम राहड़ (1871-1948) हुए हैं। रामलला का रुक्मिणी मंगल, ऊदोजी अडिंग का प्रह्लाद चरित एवं साहबरामजी राहड़ का जम्भसार प्रसिद्ध है। जम्भसार तो बिश्नोई पंथ का महाकाव्य है। इनके अतिरिक्त गोविन्दरामजी बागड़िया, हरचन्द ढूकिया, गंगाराम, सूरतराम, मयारामदास, खैरातीराम मेरठी, विष्णुदास, हरिकिसन दास, पोहकरदास, मोतीराम, लीलकंठ, खेमदास, साधु मुरलीदास, पीताम्बरदास, परसराम, केसोदासजी आदि हैं। इनके अतिरिक्त कई अज्ञात कवियों के भजन, छप्पय, कुंडलियां आदि भी प्रसिद्ध हैं।

जाम्भाणी साहित्य का चतुर्थ काल वि.सं. 1949-2010 का है। इसमें बिहारीदास, शीतल, ईश्वरानन्द गिरि (1891-1955) स्वामी ब्रह्मानन्द (1910-1983) हिम्मतराय, किसोरीलाल गुप्त, माधवानन्द, बद्रीदास, जगमालदास, श्रीरामदास गोदारा (1920-2010) कुम्भाराम पूनियां, साधु जगदीसानन्द आदि हैं। कुछ अज्ञात कवियों की रचनाएं भी मिली है। ईश्वरानन्द गिरी ने जम्भसागर (1949) एवं जम्भसंहिता (1955) प्रकाशित की। स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी श्री जम्भदेव चरित भानु, साखी संग्रह प्रकाश, मृतक संस्कार निर्णय आदि ग्रंथ प्रकाशित किये। स्वामी श्री रामदासजी ने बीस से अधिक जाम्भाणी ग्रंथ प्रकाशित किये थे। इनमें वि.सं.1978 में प्रकाशित साहबरामजी राहड़ का जम्भसार बहुत प्रसिद्ध है। इस समय में सच्चिदानन्द गिरी ने जम्भगीता (1985) भाषा टीका भी प्रकाशित की थी।

जाम्भाणी साहित्य का पांचवाँ काल वि.सं. 2011 से प्रारम्भ होता है। इस समय रामानन्द गिरि ने जम्भसागर (2011) प्रकाशित किया था। इस समय लांधड़ी के दल्लूराम टांडी जो कौसरी उपनाम से उर्दू में लिखते थे, उनकी कुछ गजलें मिली हैं। उन्होंने भी अवश्य ही कुछ जांभाणी साहित्य लिखा होगा इसकी खोज जारी है। इनके अतिरिक्त राजूराम गायणा, कन्हीराम गायणा, सूरजाराम गायणा, हरभजराम गायणा, भंवरलाल गायणा, रामकरण पूनियाँ भजनोपदेशक, सुखदेव अर्हत, नन्दराम गायणा, रामलाल वर्मा, नत्थूराम बिश्नोई, रामऋद्ध कथावाचक, जगन्नाथ गेदर आदि प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं। इनका साहित्य अभी प्रकाश में

कम ही आ पाया है। वर्तमान काल में जाम्भाणी साहित्य के आलोचनात्मक लेखक अधिक हुए। रचनात्मक कार्य कम हो रहा है। जो कुछ हुआ है वह अभी प्रकाश में नहीं आया है। फिर भी इस क्षेत्र में आचार्य कृष्णानन्द ने जाम्भा पुराण प्रकाशित किया है। राजकुमार 'सेवक' ने जम्भ रामायण (अप्रकाशित) लिखी है। डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई ने खेजड़ली रो खड़ाणौ (अप्रकाशित) प्रबन्धकाव्य लिखा है।

जाम्भाणी साहित्य की गणना वर्तमान में स्वीकृत सगुण-निर्गुण अथवा योग काव्य धाराओं के अन्तर्गत पृथक रूप से नहीं की जा सकती है। पंथ में मान्य विचारधारा ही इस साहित्य की पीठिका है। पंथ में दसावतार तो मान्य है परन्तु मूर्ति पूजा मान्य नहीं है। विष्णु के निर्गुण रूप की उपासना की जाती है साकार चतुर्भुज रूप मान्य नहीं है। नाम स्मरण श्रेष्ठ उपाय है। प्रतिदिन घी से हवन आवश्यक है। भक्ति मूल स्वर है परन्तु नाथों की तरह हठयोग नहीं है। नैतिक स्वर मुखर है परन्तु नाथों की तरह वर्ण व्यवस्था एवं गृहस्थों के प्रति उपेक्षा या अनादर नहीं। आचार-विचार शुद्ध रखते हुए कर्ममय जीवन पर बल दिया गया है। गृहस्थ जीवन शुद्धाचरण रखते हुए, कर्म करते हुए, ज्ञानार्जन करना और मोक्ष प्राप्त करना इसका चरम लक्ष्य है।

जाम्भोजी विषयक रचनाएं उनके जीवन से सम्बन्धित और उनकी महिमा वर्णन से सम्बन्धित है। उनके जीवन चरित से सम्बन्धित एक तो वे रचनाएं हैं, जिनमें उनके मुख्य कार्यों, घटनाओं का आंशिक वर्णन है जैसे कथा परिसिध, कथा औतार की आदि। दूसरी वे रचनाएं है, जिनमें इनका विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है जैसे जम्भसार। इसमें एक तो जम्भ-महिमा की वे रचनाएं हैं जिनमें उनकी महिमा, गुण, आने का कारण, कार्य, प्रभाव, विशेषता, देन आदि का वर्णन है और दूसरी वे जिनमें उनके प्रति आत्म-निवेदन, भावोद्‌गार अथवा स्तुति-आरती की गई है।

पंथ सम्बन्धित एक तो वे रचनाएं हैं जिनमें विशिष्ट स्थान, बलिदान, कार्य घटना, कथा आदि का उल्लेख है तथा दूसरी जिनमें तेतीस कोटि जीवों के उद्धार तथा चारों युगों में विष्णु अवतार और आगमन, पंथ की मान्यताओं आदि का वर्णन है। जम्मै की एक साखी में तेतीस कोटि जीवों के उद्धार की बात कही गई है, देखिये-

कोड़े पांचे गुर पहलाद, मुखी कहाइयो।।५।।
कोड़े साते हरिचन्द राव, आछौ करण कमाइयो।।६।।
कोड़े नवे दहुळळ राव, सुरग सिधाइयो।।७।।
इबकै बार गुरु जम्भेसर, देव कळु मां आइयो।।८।।
आयो गुर लिया छ पिछाण्य, भलौ हुव मेरो भाइयो।।९।।

वील्होजी कृत कथा धड़ाबन्ध चौहजुगी एवं केसोजी गोदारा कृत कथा

विगतावली इसी श्रेणी की रचनाएं हैं।

जाम्भाणी साहित्य में पौराणिक आख्यानों को लेकर अनेक जाम्भाणी कवियों ने अपनी रचनाएं रची है। उनमें प्रसिद्ध है- प्रहलाद चरित जिसकी रचना-केसोजी गोदारा, ऊदोजी अडिंग, हरचन्द ढूकिया, साहबरामजी राहड़ आदि के काव्य एवं मुक्तक रचनाएं हैं। दसावतार सम्बन्धित अनेक साखियां, हरजस, कवित्त आदि हैं। राम चरित सम्बन्धित मेहोजी की रामायण, सुरजनजी कृत रामरासौ तथा अन्य मुक्तक रचनाएं हैं। कृष्ण चरित सम्बन्धित पदमकृत कृष्णजी रो ब्याहलो, रामलला कृत रुक्मिणी मंगल तथा अन्य मुक्तक रचनाएं हैं। हरिश्चन्द्र सम्बन्धित ध्यानदास कृत हरचन्द सतग्रंथ भाषा, पाण्डवों विषयक-केसोजी कृत कथा बहसोवनी, विसन दास कृत कथा सुरगोरोहिणी, ध्यानदास कृत धर्म संवाद आदि अन्य मुक्तक रचनाएं हैं। सृष्टिक्रम की रचना सुरजनदासजी कृत भोगल पुराण एवं मयाराम विरचित अमावस्या व्रत कथा भी पौराणिक आख्यानों की श्रेणी की रचनाएं हैं।

धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोत्थान विषयक रचनाओं में वील्होजी कृत कथा ग्यानचरी, सुरजन जी कृत कथा चेतन, कथा चितावणी, कथा धरमचरी, ग्यान महातम, ग्यान तिलक, ऊदोजी कृत ग्रभ चिंतावणी तथा अनेक मुक्तक रचनाएं इस श्रेणी की हैं। इनमें धर्म, ज्ञान, नीति, करणीय-अकरणीय कार्य, उचित-अनुचित व्यवहार उद्बोधन, प्रतिबोध और चेतावनी आदि मिलता है। ऐसा ही एक नीति परक कवित्त केसोजी गोदारा का देखें-

परहरियै सो संग (जित) , साध की संगति नांही।
परहरियै सो मीत (जित) , गुझि राखै मन मांही।
परहरियै गुरु सोय (जित) , दया हीण अग्यानी।
परहरियै सो सैण (जित) , धरम हट की मनमानी।
परहरि पाखंड पाप तजि, अकलि पुरिष मुंही चरी।
छोड़ि कपट केसौ कहै, हरि सिंवरै साविधि करी।।

अध्यात्म परक रचनाओं में ब्रह्मा, विष्णु, हरि, हरि महिमा और गुणगान, जीव, शरीर, मन, इन्द्रियां, माया, सृष्टि, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, स्वर्ग-नरक, मुक्ति-ज्ञान, भोग, भक्ति, प्रेम, सद्गुरु, साधु-सत्संग आत्मानुशासन, उसके मुख्य नियम, आचार-विचार, पाखण्ड-आत्म निवेदन, आत्मानुभूति, सिद्धि साधना और स्वानुभव, हरिजस भावोद्गार मोक्षोन्मुखी प्रेरणा आदि हैं।

ऐतिहासिक एवं अर्द्धऐतिहासिक रचनाओं में परमानन्दजी बणियाल का लिखित साका, सबदवाणी के प्रसंग, चेलोजी की कथा एवं राजाओं द्वारा दिये गये पट्टे परवाने, साधुओं द्वारा लिखित पत्री, वंशावली आदि गद्य में लिखित हैं, जबकि

केसोजी कृत कथा मेड़ते की, कथा चितौड़ की, कथा सिकन्दर की, सुरजनजी कृत कथा परिसिध की, वील्होजी कृत कथा द्रौणपुर की, कथा जैसलमेर की तथा अज्ञात कृत संवादों (बीकानेर के राव लूणकरण एवं नागौर के मुहम्मदखां का संवाद) आदि पद्यात्मक रचनाएं हैं। इसी तरह वीर रसात्मक काव्य में खड़ाणे की साखियां प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्रमुख हैं–वील्होजी की कर्मा और गौरां की साखी, तिलवासणी की साखी, केसोजी की 'बूचो ऐचरा की साखी', जाम्भोलाव की साखी (संवत् 1710), कापरहेड़ा की साखी (संवत् 1700), गोकलजी कृत साखी खेजड़ली की (वि.सं. 1787) आदि प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त जाम्भोजी एवं वील्होजी के निर्वाण पर भावात्मक मरसिये भी प्रसिद्ध है। कालू कृत गोपीचन्द, चतरदास कृत भरथरी सम्बन्धित रचनाएं भी बहुत प्रसिद्ध है जो अर्द्ध ऐतिहासिक श्रेणी में आती हैं। कवि भगवानदास विरचित 'जाम्भै जी विसन रो सिरलोकों भी इसी श्रेणी की रचना है।

लोक कथा एवं लोक जीवन विषयक रचनाओं में कथा म्रघलेखा, स्त्री, सूम, वृद्धावस्था, सामान्यजन की सुख सुविधा एवं विरह वर्णन सम्बन्धित साहित्य का भी निर्माण हुआ है। बिश्नोई समाज में अभी भी लोक कहावतें, मुहावरे, भजन, हरजस, साखियां, आरतियां, दोहे एवं लोकगीत आदि बहुत प्रचलित हैं जो जन सामान्य का कण्ठाहार हैं। इनके संकलन एवं सम्पादन की अभी महति आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त समाज में कबीर, मीरां, तुलसीदास, नरसी मेहता आदि के लोक भजन भी प्रचलित हैं जिनका सम्पादन–संकलन करके उनका जाम्भाणी साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

लोकभाषा में बोलते समय लोग अक्सर अशुद्ध बोलते हैं इसके सुधार के लिये भी जाम्भाणी साहित्य के कवियों ने ऐसी रचनाएं की है जिससे बोलचाल की उनकी राजस्थानी भाषा में सुधार हो सके। कवि वील्होजी ने सचअखरी विगतावली, केसोजी ने कथा विगतावली, कवि साहबरामजी राहड़ ने आखर विगतावली की रचना की थी।

जब हम भगवान जम्भेश्वरजी के जीवन चरित के सन्दर्भ में विचार करते हैं तब हम पाते हैं कि उनके जीवन और चरित में अन्तर है। जीवन का आधार भोग है एवं चरित का अधिष्ठान त्यागमई लीला है। जीवन अपने लिए जीते हैं, लीला दूसरों के लिये करते हैं। सामान्य जीवन में संग्रह का भाव रहता है जबकि लीला में अपरिग्रह का। जीवन में स्वार्थ है, लीला में परमार्थ। गुरु जाम्भोजी का सम्पूर्ण जीवनवृत्त एक रहस्यमयी लीला है, विश्व मानव के लिये खेला गया एक कल्याणमय खेल है–चरित है। गुरु जाम्भोजी एक जीवन मुक्त महापुरुष के अलावा और भी बहुत

कुछ हैं। वे साक्षात् परम ब्रह्म इस आदि अनादि सृष्टि के रचनाकार हैं।

जाम्भोजी से सम्बन्धित प्रबन्ध एवं मुक्तक के रूप में प्रचुर साहित्य का निर्माण किया गया है। मुक्तक रचनाओं में तो अनेक प्रकार से उनके प्रति भावोद्‌गार प्रकट किए गए हैं। ऐसी रचनाओं का महत्त्व किसी भी संत एवं भक्त कवि के अपने आराध्य के प्रति लिखे गये गेय पदों से कम नहीं है। भेद केवल आराध्यों के भिन्न होने से ही है और यदि उस पंथ का स्वरूप ध्यान में रखें तो यह भेद मालूम नहीं होता है। जहां विभिन्न मानवीय भावनाओं, सामूहिक मनोवृत्ति, विशेष मानसिक अवस्था, स्थिति, घात-प्रतिघात या सहज जीवन की रागात्मक मनोवृत्तियों का चित्रण हुआ है, वहां काव्य रस भी वर्तमान है।

अंत में हम कह सकते हैं कि जाम्भाणी साहित्य के साहित्यकारों के साहित्य निर्माण में मूल प्रेरणा स्रोत रहे हैं- भगवान जम्भेश्वर जी। इसके अतिरिक्त उनकी धर्म, आत्माभिव्यक्ति, लोकोत्थान तथा अन्याय और असंगति के प्रति आक्रोश भावना। इन साहित्यकारों का उद्देश्य कल्पना लोक में ले जाना न होकर व्यावहारिक जीवन को सुखी बनाना और उसके माध्यम से तत्त्व प्राप्ति का प्रयास करना था। इस साहित्य में कहीं भी एकांगिता नहीं है। जाम्भाणी साहित्य का उद्देश्य किसी अन्य धर्म-मतानुयायी पर आक्रमण या उसकी भर्त्सना करना नहीं है। यह सबका सम्मान करते हुए धर्म के नाम पर व्याप्त विकृतियों और पाखण्डों का मात्र संकेत भर करता है और इस प्रकार उसे भी ऊंचा उठाना चाहता है। गुण ग्राहकता, सहिष्णुता और सबके प्रति सम्मान-भावना इन कवियों की विशेषता रही है। अंत में मैं यही कह सकता हूँ कि 'दीपै वारां देस, ज्यांरा साहित्य जगमगै।'

सन्दर्भ ग्रंथ-

1. हिन्दू धर्म कोश-डॉ. राजबली पाण्डेय, प्रकाशक-उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोतमदास टंडन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग लखनऊ, प्र.सं. 1978
2. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता-गीताप्रेस गोरखपुर, 15 वां संस्करण, वि.सं. 2024, अं. 10, श्लोक-20
3. जाम्भोजी की आदि सबदवाणी-परमानन्द जी का पोथा, वि.सं. 1818 (व्यक्तिगत संग्रह), लि.का. सन् 1988
4. गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, संभराथल प्रकाशन, अबूबशहर, सिरसा (हरियाणा) सन् 2000
5. जम्भसार-साहबराम राहड़, सम्पा. स्वामी श्रीरामदास, प्रयाग, वि.सं. 1978
6. वील्होजी की वाणी-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, संभराथल प्रकाशन, अबूबशहर, सिरसा (हरियाणा) सन् 1993

7. तेजोजी चारण (भारतीय साहित्य रा निरमाता)-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, केन्द्रिय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सन् 2008
8. गुरु जाम्भोजी की सबदवाणी एवं सनातन धर्म ग्रंथ-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राज.) 2012
9. जाम्भाणी साहित्य विविध आयाम-सम्पा. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, डॉ. बनवारीलाल सहू, डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई, श्री गुरु जम्भेश्वर महाराज चेरिटेबल ट्रस्ट, बीकानेर (राज.) 2012
10. गुरु जाम्भोजी का जीवन दर्शन-सम्पा. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राज.) सन् 2014
11. परमानन्द जी का पोथा (ह.लि.प्र.) वि.सं. 1818 (व्यक्तिगत संग्रह)
12. बिश्नोई संतों के हरजस-डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, संभराथल प्रकाशन, अबूबशहर, सिरसा (हरियाणा) सन् 1994

बी-111, समतानगर,
बीकानेर (राज.)
मो. 9460002309

गुरु जम्भेश्वर की वाणी में लोक-मंगल

- डॉ. अशोक कुमार सभ्रवाल

लोक का अर्थ है संसार और मंगल का अर्थ है-कल्याणकारी अर्थात् जो संसार के लिए मंगलमय है। जिस साहित्य में स्वांत सुखाय की अपेक्षा जनहित की भावना उद्‌भूत हो, उसकी प्रासंगिकता कल, आज और कल बनी रहती है। जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग-शोक, दारिद्रय, अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय निधि है।[1] साहित्य का उद्देश्य मात्र लोकरंजन नहीं वरन् लोक-मंगल भी है। विश्व को अज्ञान, पापाचार एवं कुसंस्कारों की जड़निद्रा से जागृत करना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है।

लोक की उपेक्षा करके लिखा गया साहित्य अमरनिधि नहीं कहला सकता। कुछ लोग काव्य को साधन और साध्य दोनों मानते हैं और अन्य काव्य का साध्य लोकमंगल। समाज में सभी प्रकार के विद्या के क्षेत्र हैं उनका लक्ष्य लोक है। इसी लोक-मंगल की धारा में गुरु जम्भेश्वर जी की 'सबदवाणी' को भी संकलित किया जा सकता है। गुरु जाम्भोजी मरुभूमि के मसीहा माने जाते हैं। इस बात से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता कि मरुभाषा के संतों में दैन्यभाव का वर्चस्व नहीं है। जहाँ तक प्रश्न जाम्भोजी की वाणी का है, उसमें देव से अधिक महत्त्व मनुष्य को प्राप्त है। भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी परिस्थितियों का आंकलन एवं राजा से लेकर बहेलिया तक उनकी वाणी का केन्द्र-बिन्दु है। किद्‌वंती है कि गुरु जी ने कभी अक्षरज्ञान ग्रहण नहीं किया परन्तु यह आश्चर्यचकित करने वाला विषय है कि उनकी वाणी में वेद और पुराणों का स्वरूप झलकता है। सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर जीव के आवागमन तक का उन्होंने सूक्ष्म वर्णन किया है। उन्होंने नाथों की भाँति संसार से निवृत्ति के बजाय प्रवृत्ति पर अधिक बल दिया। लोक-कल्याण के लिए उन्होंने न सिर्फ धर्म पर बल दिया जो मूलत: मानवता पर आधारित है वरन् मनुष्य की बाह्य एवं आंतरिक शुद्धि को भी अनिवार्य माना। अंत:करण की शुद्धि के लिए सत्य एवं शील को प्रधानता प्रदान की-

जां जां पाक्या न सीलूं, तां तां क्रंम कुचीलूं।[2]

राजस्थान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की परिस्थितियाँ उस समय जटिल थीं, लोगों में धर्म के नाम पर मात्र बाह्याडम्बर विद्यमान थे, पाखण्डी जादू-टोने और भूत-प्रेतों का भय दिखाकर भोली-भाली जनता को मूर्ख बना रहे थे। गुरु जी ने वाणी के माध्यम से जनत का पथ-प्रदर्शन किया-

भूत परेती जपीजै, अैह पाखंड परवाणौ।[3]

पाखण्ड मात्र हिन्दू-धर्म में ही नहीं बल्कि मुस्लिम धर्म में भी विद्यमान था। इन सभी मिथ्याचारों का गुरु जी ने खण्डन किया, लोग गर्दन हिला-हिला कर पत्थर की पूजा करते हैं, यह तो खुदा की आज्ञा नहीं है-

धवणां धूजै पाहंण पूजै, वेफुरमांण खुदाई।[4]

हे! जोगी तुम योग की युक्ति को पहचानो, हे काजी! तुम कुरान के ज्ञान को जानो! गाय की हत्या किसलिए करते हो? यदि गऊ हत्या करना उचित है तो राम उसे दान में क्यों देते-

जोगी रे तूं जुगाति पिछांणी, काजी रे तूं कलंम कुरांणी।
गऊ विणासौ काहै के तांई, राम राय सूं दीन्हीं दांनी।[5]

इन्होंने धर्म का मूल दया को माना। करुणा का भाव मनुष्य को प्राणी से मनुष्य बनाता है, जीव-हत्या करने वाले नीच एवं दुष्कर्मी व्यक्ति नरक में जाते हैं। उत्पन्न हुए जीव के ऊपर जुल्म करना भला कहाँ का न्याय है-

जीवां ऊपरि जोर करीजै, अंत काळ हुयसी भारी।[6]

धर्म के बाह्य तत्त्व की अपेक्षा इन्होंने उसके आंतरिक तत्त्व को अधिक महत्ता दी। मूल सींचने का तात्पर्य यही है कि अपनी आत्मा का विकास करो। 'स्व' की परिधि के घेरे से निकल कर उसे 'पर' से संश्लिष्ट करो-

भल मूळ सींचो रे प्राणी, ज्यूं का भल बुधि पावौ।[7]

जब आत्मा अपने संकीर्ण बंधनों को तोड़कर वैश्विक धरातल पर प्रतिफलित होगी है तो व्यक्ति उस असीम से भी जुड़ जाता है। मनुष्य व्यष्टि से समष्टि की भूमि पर मात्र सत्कार्यों एवं परोपकार के सामर्थ्य से पहुँचता है। इसके लिए उसे न सिर्फ षड्विकारों का क्षमण करना चाहिए वरन् प्रकृति के साथ उसका साहचर्य भी अत्यंत अनिवार्य है। प्रकृति उसे जीना सिखाती है, परोपकार करते हुए-संतोष के साथ जीवन व्यतीत करने की कला। प्रकृति दान करना सिखाती है और यह दान ही व्यक्ति को स्वार्थी होने से बचाता है। दान का माहत्मय शास्त्रों में भी ध्यातव्य है और गुरु जाम्भोजी ने इसे एक अलग रूप में प्रस्तुत किया है। व्यक्ति के पास जो कुछ भी है उसे देना अवश्य चाहिए। कुपात्र को दिया गया दान उसी प्रकार है जिस प्रकार रात चोर अंधेरे में घर का सामान ले गया हो-

थौड़े मांहि भोड़ेरौ दीजै, होते नांहि न कीजै।
जो जो नांव विसन कै दीजै, अनंत गुणां लिख लीजै।[8]
कुपातां नै दान ज दीयौ, जांणे रैण अंधारी चोरै लीयौ।[9]

व्यक्ति को सत्यभाषी होना चाहिए, यह उसके दृढ़ चरित्र की पहचान है। निंदा-रस उसी भाँति है जो आरंभ में तो मीठा लगता है परंतु बाद में जाकर वह अनेक कष्टों का मार्ग दिखाता है। व्यक्ति का जीवन खेत की भाँति है और वह स्वयं उसका कृषक है। वह जिस प्रकार का बीज बोता है अर्थात् कर्म करता है वैसी ही फसल अर्थात् फलप्राप्ति होती है। उसे भली मूल अर्थात् सत्कार्यों का सिंचन करना चाहिए। कार्य-करण भाव की इस व्यंजना को 'सबदवाणी' में प्रत्येक स्थल पर देखा जा सकात है।

वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन करना बुरा नहीं है किन्तु उनका चिंतन-मनन किए बिना मात्र उनका अंधानुकरण करना, अपनी विवेकशक्ति को सुषुप्तावस्था में रखना निस्सार है। जिस प्रकार भूसी में दाना नहीं होता, उसी प्रकार मात्र कथन करना थोथा है। कथनी-करनी की सामंजस्यता चरित्र, जीवन और समाज को सुदृढ़ता प्रदान करती है, मात्र बकवाद करना आधारहीन है-

कंण विणि कूकस, रस विणि वाकस, विणि किरिया पखार जिसौ।[10]

जाम्भोजी के समय की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ विषम थीं, उस समय राष्ट्र में मुस्लिम शासन का आधिपत्य था। मिथ्यावाचन और धर्म के मिथ्याभिमान की होड़ चल रही थी। इसी ओर संकेत करते हुए जाम्भाजी कहते हैं कि जिस प्रकार गेहूँ के दाने में लगा घुन उसे भीतर से थोथा कर देता है उसी प्रकार धर्म, सम्प्रदाय और पंथ इत्यादि का अहं भी व्यक्ति को जीर्ण-शीर्ण कर देता है अर्थात् व्यक्ति एक संकुचित घेरे में फँस कर रह जाता है और उसकी आत्मा का नैसर्गिक विकास दम तोड़ने लगता है, वह मात्र अपने मिथ्या अहंकार में भ्रमित रहता है-

दीन गुमांन करैलो खाली, ज्यौं कंण घातै घुंण हांणी।[11]

साम्प्रदायिकता का समूल निष्पादन करने के लिए इनके उपदेशों में तर्क है, तर्क सदैव ज्ञान की आधारशिला पर स्थित रहते हैं। ज्ञानाभाव में भक्ति नेत्रहीन है, यह अंधकार न सिर्फ उस समय वरन् आज भी व्याप्त है। ज्ञान का हाथ छूटते ही व्यक्ति मिथ्याचार एवं पाखण्ड के भँवर में फँस जाता है। इस भीषण बवंडर से समाज के रक्षार्थ जाम्भोजी ने अथक प्रयास किए। लोगों को बारम्बार चेताया कि हे लोगो! यह कैसा अन्याय है कि गुरु शिष्य के चरण स्पर्श कर रहा है-

गुरु चेलै के पाए लागै, देखौ लोग अन्याई।[12]

यह कैसा समय आ गया है कि पाषाणों को ईश्वर की मान्यता देकर पूजा जा रहा है और चेतनशील प्राणियों को काटा जा रहा है। जब वह ब्रह्मज्योति सभी प्राणियों में सारतत्त्व रूप में विद्यमान है तो यह अन्याय क्यों? बाह्याचारों के सामर्थ्य पर परमात्मा की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए

जाम्भोजी कहते हैं कि सुन रे काजी! सुन रे मुल्ला! सुन रे बकर कसाई! तुम किस की सृजित बकरी और भेड़ की हत्या कर रहे हो-

सुंणि रे काजी सुंणि रे मुल्ला, सुंणि रे बकर कसाई।
किण री थरपी छाळी रोसो, किण री गाड़र गाई?[13]

जब तक मनुष्य की संवेदना प्रत्येक जीवमात्र से, प्रकृति से संश्लिष्ट नहीं होगी, व्यक्ति न कहीं शांति प्राप्त कर सकता है, न ही वह उस परमतत्त्व को जान सकता है जो अज्ञेय है। परमतत्त्व का सगुण रूप पाषाण-मूर्ति नहीं वरन् चेतन प्रकृति है। यदि व्यक्ति आत्मा का ऐक्य इस सगुण से ही स्थापित न कर पाया तो निर्गुण ब्रह्म तो असीम, निराकार और अगोचर है। परमतत्त्व की उपलब्धि हेतु सर्वप्रथम मनुष्य को मूल का सिंचन करना होगा। मूल है आत्मा जो शरीर से पृथक है किंतु संलग्न भी है। शरीर के माध्यम से ही आत्मा का प्रकाट्य होता है एवं इस मांसल पिण्ड की महत्ता को जाम्भोजी ने उपेक्षित नहीं किया है। शारीरिक स्वच्छता एवं संयम, भोजन की अल्पमात्रा ग्रहण करना आदि इसके महत्त्व को भली-भाँति प्रकट करते हैं-

सुच सिनांन करौ क्यूं नांही, जीवड़ा काजै न्हाइयै।[14]

यज्ञ (हवन) की अन्य संतों ने उपेक्षा की है, वहीं जाम्भोजी इसका समर्थन करते है। यज्ञ के पीछे जनकल्याणार्थ एक वैज्ञानिक पहलू है, यह मात्र कर्मकाण्ड नहीं है। पर्यावरण की स्वच्छता के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यज्ञ अर्थात् जीवन इसमें सत्कार्यों की आहुति देकर अपनी आत्मा को ब्रह्म में एकाकार करना ही वास्तविक यज्ञ है। व्यक्ति जब अपनी आत्मा को सिंचता है, तो बाह्य तत्त्व भी अहम भूमिका निभाते हैं जैसे-आचरण, वैचारिक प्रवाह तथा परोपकार, दया इत्यादि। विषाक्त वातावरण में व्यक्ति का चित्त स्थिर नहीं रह सकता। इस भल मूल को सिंचने का उपदेश देने वाली आत्मा है और इसके लिए चित्त स्थैर्य आवश्यक है। जीवात्मा ही गुरु है जो सद्मार्ग पर चलने का उपदेश देती है किंतु व्यक्ति जब मिथ्याभाषण, कपट, निद्रा, कुमार्गगामी और सांसारिक प्रलोभनों में घिरता चला जाता है, तब यह जीवात्मा कहीं नेपथ्य में चली जाती है और वह निगुरा रह जाता है। इसी गुरु को पहचानने का उपदेश जाम्भोजी बारम्बार देते हैं-

गुर चीन्हू गुर चीन्ह पिरोहित।[15]

जब मनुष्य इस पंक्ति को जीवन में चरितार्थ कर लेता है तो न केवल उसका वरन् समस्त समाज एवं देश का कल्याण होता है। आत्मिक एवं बाह्य परिष्कार लोक-मंगल के आधार-स्तम्भ हैं। व्यक्ति को अपने श्रमबिन्दु द्वारा उपार्जित आय का ही भोग करना चाहिए, दूसरे का धन छीनकर न तो वह शांति प्राप्त कर सकता है और न समाज व लोक को कुछ दे सकता है, उल्टा हानि की

पहुँचाएगा। उसे जैसा भी खारा, कड़वा भोजन मिले, उसे उत्तम समझकर खीर की भाँति ग्रहण करना चाहिए–

खारा कड़वा भोजन भिखिले, भिछिया देखो खीरूं।[16]

अन्यों का धन हरण करने की मनोवृत्ति उसे राक्षसी प्रवृत्तियों की ओर धकेलती है। इसका सरल उपाय यही है कि व्यक्ति संतोषवृत्ति से जीवन व्यतीत करे और अपने उपार्जित धन में से भी कुछ का त्याग करे, यही परोपकार है। यह विचार की मनुष्य की चेतना को समाज की चेतना से संश्लिष्ट करता है। मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्तियों का क्षमण व शोधन आवश्यक है, इसके लिए चाहिए कि वह अपना जीवन सादगी, संतोष एवं प्रेम से व्यतीत करे। उसके हृदय की कोमलता ही उसे प्राणी से मनुष्य बनाती है। दया ही एक ऐसा भाव है जो अन्य जीवों एवं प्रकृति को धारण करना सिखाती है। जिन लोगों के अंतस्तल में दया एवं प्रेमभाव विद्यमान नहीं है उनके सभी कर्म दूषित हैं–

जां जां दया न मया, तां ता विक्रम कया।[17]

यह कहना असंगत होगा कि जाम्भोजी ने मात्र उपदेश ही दिए वरन् उन्होंने समाज के समक्ष एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया–स्वयं का। उन्होंने सभी कथनों को स्वयं अनुभव की भावभूमि पर उतारा तथा तत्पश्चात् समाज को दिशा देने का कार्य किया। समाज में फैले पाखण्ड को समाप्त करने हेतु ही उन्होंने अवतार की भी पूजा को वर्जित माना, क्या यह कोई ठोस कदम नहीं?

मनुष्य को संसार में कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिए? अपनी आत्मा को सिंचित करते हुए समाज का कल्याण तथा अंत में उस परमतत्त्व को प्राप्त करना–यह विचारधारा यही दर्शाती है कि सर्वप्रथम मनुष्य को मनुष्य बनाना होगा। नर बने बिना नारायण की उपलब्धि नहीं हो सकती। उसे अंधविश्वासों की कंदाराओं से बाहर निकलना होगा, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिए अहितकर कार्यों का त्याग करना होगा। अवद्या के आवरण को चीर कर माया के आह्लाद से रंजित आत्मा का उसे मंथन करना होगा, तभी वह स्वयं को सृष्टि और सृष्टि को स्वयं में लीला करता पाएगा। षड्विकारों की गर्द दूर करके ही वह स्वयं के साथ समष्टिगत कल्याण के पथ पर भी अग्रसर होता है।

गुरु जाम्भोजी ने अपने वचनों द्वारा लोक में जागरूकता उत्पन्न की। जन में व्याप्त अविद्या के तम को हटाने के लिए तर्कों के माध्यम से उसकी चेतना को झिंझोड़ा। इतना ही नहीं उनके सामने स्वयं के जीवन को उच्चभूमि पर प्रतिस्थापित कर आदर्श भी रखा। कथनी से पूर्व करनी का भाव ही उनके जीवन और सबदों का अमृतलभ्य सरोवर है। दूसरों को प्रवचन देने से पूर्व स्वयं के अंतस्तल में मौजूद गुरु

की खोज करनी चाहिए और वह है आत्मा। दूसरों की अपेक्षा स्वयं को आत्मा के न्यायालय में खड़ा करना चाहिए एवं देखना चाहिए कि कौन से बुरे कृत्य किए हैं-उनका अवलोकन करना एवं भविष्य में ऐसी भूल न हो यह प्रायश्चित ही सात्त्विक जीवन का रहस्य है। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने से लोक का कल्याण अवश्य होगा और सर्वत्र एक आशा प्रस्फुटित होगी एवं आनंद की इस वेला में सच्चिदानंद परमतत्त्व की अनुभूति अवश्य होगी।

अत: लोकमंगल की दृष्टि से सबदवाणी पूर्णत: एक आदर्श-व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का पूँजीभूत स्रोत है। समस्त लोक का कल्याण इन सबदों का चिंतन-मनन करने से संभव है।

संदर्भ सूची-

1. द्विवेदी, डॉ० मुकुन्द (संपा०): हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-10, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, दूसरा संस्करण 1998, पृ. 25
2. माहेश्वरी, डॉ० हीरालाल: श्री जम्भवाणी : टीका, अबोहर (पंजाब): श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (रजि०), द्वितीय संस्करण मई, 2011, पृ. 61
3. वही, पृ० 193
4. वही, पृ० 207
5. वही, पृ० 202
6. वही, पृ० 34
7. वही, पृ० 103
8. वही, पृ० 153
9. वही, पृ० 152
10. वही, पृ० 190
11. वही, पृ० 211
12. वही, पृ० 207
13. वही, पृ० 32
14. वही, पृ० 96
15. वही, पृ० 1
16. वही, पृ० 217
17. वही, पृ० 61

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चंडीगढ़-160014

भगवत्तत्त्व मीमांसा और गुरु जाम्भो जी

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई

लौकिक रूप में 'भगवत्तत्त्व' शब्द भगवान् की सत्ता और स्वरूप का बोधक है। भगवान् की सत्ता और स्वरूप अनादि काल से ही मनुष्य की जिज्ञासा और चर्चा का विषय रहा है। सामान्यतः अलौकिक ऐश्वर्य सम्पन्न होते हुए भी वे अनन्त ऐश्वर्यों से युक्त है, जिनके चमत्कार मात्र से प्रभावित होकर आस्तिकजन भगवान् की महत्ता के समक्ष नतमस्तक होकर उनके स्वरूप के जिज्ञासु होते हैं, वह भी ऐसे स्वरूप के प्रति जिसका साक्षात्कार नेत्रन्द्रिय से असंभव है। बाह्य जगत में रूप का साक्षात्कार नयन गोचर भले ही हो फिर भी अनादिकाल से 'भगवत्तत्त्व' को जानने की प्रक्रिया किसी न किसी रूप में अद्यावधि चली आ रही है।

यदि हम 'भगवत्तत्त्व' शब्द के यौगिक अर्थ पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि यह दो शब्दों का मेल है- 1. भगवत् 2. तत्त्व। पहले यहाँ इन शब्दों पर पृथक्-पृथक् विचार आवश्यक है। प्रकृत सन्दर्भ में 'भग' शब्द छः प्रकार के महनीय गुणों का बोधक है, जिसमें अगणित ऐश्वर्य, पराक्रम, यश, समृद्धि, ज्ञान और वैराग्य समाकलित है-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥[1]

व्याकरण के अनुसार भी इन छः महनीय गुणों का नित्ययोग जिसमें हो वह 'भगवान्' है- भग+मतुप- भगवत्।[2] किन्तु पुराणों में 'व' शब्द निवासार्थक माना गया है जिसके अनुसार परमात्मा में सब प्राणियों की उपस्थिति परिकल्पित की गई है। जगद्रूप में वे ही प्राणियों के आधार है-

वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥[3]

इसका अभिप्रायः यह हुआ कि अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवत्पदवाच्य है, वे ही जगत के सृष्टा, पालक और हर्त्ता भी हैं-

उत्पतिं प्रलयं चैव भूतानामागति गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥[4]

'तत्त्व' शब्द का यौगिक अर्थ अनेकात्मक होते हुए भी मुख्यतः स्वरूपावस्था का परिचायक अधिक है। तत्त्व- तत्+त्व, जिसका अर्थ है- यथार्थतता, वास्तविक

स्थिति या स्वरूप, सार वस्तु, चेतन वस्तु आदि।[5]

किसी के स्वरूप या अवस्था को ठीक-ठीक जानना एक बड़ा कठिन कार्य है, उसमें यदि विषय भगवत्स्वरूप का हो तो कार्य अत्यन्त दुस्तर हो जाता है। कोई विरले ही उसके स्वरूप को जानने में सफल हुए हैं। जो सफल हुए हैं वे भी उसके स्वरूप का निर्वचन नहीं कर सके हैं, केवल अनुपयुक्त का निषेध करते हुए- 'अभाव' से 'भाव' की ओर संकेत करने में ही वे साधक कृतकृत्य हो गये-

स एष नेति नेति आत्मा, नह्येतस्मात् अन्यत् परमस्ति।[6]

यही कारण है कि ऋषियों ने 'भगवत्तत्त्व' को भावनागम्य बताकर भवबन्धन से छुटकारा पाने को कहा है-

भजस्व भावेन विभुं भगवन्तं ब्रजेश्वरम्।
ततो भागवतो भूत्वा भवबन्धात् प्रमोक्ष्यासि॥[7]

दुर्बोध होने पर भी भारतीय चिन्तन परम्परा में 'भगवत्तत्त्व' पर पर्याप्त मनन हुआ है। भगवत् चिन्तन एक परम्परा के रूप में प्राप्त होता है। जिसका क्रमशः विवेचन करने पर ही हम किसी निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं-

वेदों में भगवत्तत्त्व

वेद भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। उन्हें सम्पूर्ण धर्म का मूल माना गया है- 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'। वेदों में 'भगवत्तत्त्व' को परमात्मा, ब्रह्म आदि नामों से व्यक्त किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जब आकाश, धरती, पानी, स्वर्ग-नरकादि कुछ भी नहीं था, तब भी उस परमात्मा की उपस्थिति थी-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योम परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्, अम्भः किमासीद् गहनं गम्भीरम्॥[8]

जब मृत्यु-अमरता, दिवस-रात, जड़-चेतन कुछ नहीं था उस समय भी ब्रह्म अपनी माया के साथ विराजमान थे-

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत प्रकेतः।
आनीदवार्त स्वधया तदेकं, तस्माद्वान्यन्न परः किं चनास॥[9]

इस सृष्टि का विकास भी उसी परमात्मा से हुआ है और वही इसे धारण करता है-

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमनत्सो, अंग वेद यदि वा न वेद॥[10]

अथर्ववेद के अनुसार श्री भगवान् स्वयंभू, सदातृप्त, सर्वत्र व्याप्त, अकाम, अजर और अमर हैं। उन्हें जान लेने से मृत्यु का भय नहीं रहता है–

अकामो धारो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान न विभाय मृत्योऽत्मानं जरमजरं युवानम्॥[11]

यजुर्वेद में कहा गया है कि वही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा है। शुक्र, प्रकाशमान वेद, प्रतिपाद्य ब्रह्म– इन सब रूपों में व्याप्त है। जल और प्रजापति भी ब्रह्म ही है–

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तद् चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजपतिः॥[12]

यह प्रसिद्ध है कि यह ब्रह्म भगवान् सारी दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। यह सबसे पहले उत्पन्न है। गर्भ में भी इसकी ही स्थिति है। उत्पन्न होकर भी यह भविष्यत्काल में भी उत्पन्न होने वाला है। सब ओर मुखादि अवयववाला अचिन्त्य शक्ति वह ब्रह्म प्रत्येक वस्तु में पूर्ण है–

एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास् तिष्ठति सर्वतो मुखः॥[13]

यजुर्वेद आगे कहता है कि यह सम्पूर्ण दृश्यवान जगत उसी की महिमा है। पर वह इससे बहुत बड़ा है। यह सब उसका चतुर्थांश है–

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥[14]

जो सर्वात्मा प्रजापति सबके हृदय में स्थित होकर अन्तः प्रविष्ट है, जो अजन्मा होकर भी कार्य कारण रूप से विविध रूपों से माया से प्रपञ्चरूप से उत्पन्न होता है। सारे मूल समुदाय जिस भगवत्तत्त्व में ही स्थित है, यह सब तत्स्वरूप ही है–

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनि परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानि विश्वा॥[15]

वेदों में भगवत्तत्त्व के प्रतिपादक वचन सहस्रशः है। यहाँ दिये गए उदाहरण तो निदर्शनमात्र है। वेदों का मुख्य विषय और प्रतिपाद्य लक्ष्य एकमात्र 'भगवत्तत्त्व' ही है। वेदों के 'वाकोवाक्य' में 'भगवत्तत्त्व' का सुन्दर प्रतिपादन स्फुटतया लक्षित होता है।

उपनिषदों में भगवत्तत्त्व

वेदों के शीर्ष स्थानीय वेदान्त ग्रन्थ ज्ञान के आकर हैं। इनमें मुख्य रूप से जीव,

जगत, ईश्वर आदि का तात्विक विवेचन प्राप्त होता है। यहाँ हम केवल उपनिषदों में व्यक्त भगवत्तत्त्व पर ही विचार करेंगे। श्वेताश्वतरो- पनिषद् में भगवत्स्तुति में कहा गया है कि वह ईश्वरों का महेश्वर और देवताओं के आराध्य देव हैं-

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥[16]

वह भगवत्तत्त्व शरीर और इन्द्रियों से परे और अनादिसिद्ध शक्तियुक्त है-

न तस्य कार्यं करणं न विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च॥[17]

जिस प्रकार मकड़ी अपने ही शरीर में से निकले हुए तन्तुओं से अपने आपको वेष्टित कर लेती है इसी प्रकार इन अद्वितीय परमात्मा ने अपनी ही प्रकृति से इस सृष्टि को उत्पन्न कर उसके द्वारा अपने आपको आवृत्त कर लिया-

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः।
देव एकः स्वमावृणोत् स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥[18]

'मुण्डकोपनिषद्' में कहा गया है कि परमात्मा को न चर्म-चक्षुओं से देखा जा सकता है, न उसे वाणी द्वारा या अन्य इन्द्रियों से अथवा तप या विभिन्न कर्मों से ही ग्रहण किया जा सकता, प्रत्युत ज्ञानाप्रसाद से विशुद्ध हुए अन्तःकरण से ध्यानानिष्ठ साधक उसे अनुभव कर सकता है-

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रासादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तुतं पश्यते निष्कलंध्यायमानः॥[19]

जैसे तिल में तैल, दधि में घृत, भूमिगत अन्तः स्रोतों में जल, अरणि में अग्नि (अदृश्य रूप से) विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार भगवत्तत्त्व अदृश्य-अव्यक्त रूप से जगत में सर्वत्र व्याप्त है-

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरावः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येननैनं तपसा योऽनुपश्यति॥[20]

कंठोपनिषद् में कहा गया है कि 'वे सर्वभूतों के अन्तरात्मा सम्पूर्ण विश्व में एक हैं, एक रूप को अनेक रूपों में प्रकट करते हैं। वे एक होते हुए भी अनेक बनते हैं, जो उन्हें अपने भीतर देखता है उसे शाश्वत सुख मिलता है-

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मास्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥[21]

उस परम तत्त्व में सूर्य, चन्द्रमा, तारागण या विद्युत अग्नि की आवश्यकता

आदि का प्रकाश निहित नहीं है, अपितु श्री भगवान् के प्रकाश से ही ये सूर्य चन्द्रादि तेजस्वी पदार्थ प्रकाशमान् हैं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्यभासा सर्वमिदं विभाति॥[22]

माया की उपाधि से ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है तथा सर्वज्ञ, शासक आदि लक्षण होने से निमित्तकारण भी है–

मायोपाधिर्जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः।
पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः॥[23]

वेद, यज्ञ, क्रतु, व्रत, भूत, भविष्य, वर्तमान तथा इसके अतिरिक्त जो कुछ वेद कहते हैं, वह सब मायावी ईश्वर इस अक्षर ब्रह्म से ही उत्पन्न करता है और विश्व प्रपञ्चों की माया से अन्य–सा होकर बन्धन में पड़ा गया है–

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यञ्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चन्यो मायया संनिरुद्धः॥[24]

इस प्रकार उपनिषदों में निर्गुण–निराकार, सगुण–निराकार और सगुण–साकार 'भगवत्तत्त्व' का सारगर्भित विवेचन मिलता है। अपनी योग्यतानुसार मनुष्य किसी भी रूप के परायण हो कल्याण स्वरूप परम श्रेय प्राप्त कर सकता है।

पुराणों में भगवत्तत्त्व

वेदों–उपनिषदों में 'भगवत्तत्त्व' की विचारधारा आगे चलकर पुराणों में मान्य व पुष्पित हुई। श्री विष्णु पुराण में इसकी विस्तृत व्याख्या हुई। श्रीमद्भागवत् में 'भगवत्तत्त्व' की एवं देवीभागवत् में भगवती के स्वरूप का सुन्दर निदर्शन मिलता है।

विष्णु पुराण में कहा गया है कि 'ब्रह्म' शब्द का विषय नहीं है तथापि उपासना के लिए उसका 'उपचार' से अर्थात् चर्या व्यवहार की सुविधा के लिए 'भगवत्' शब्द के द्वारा कथन किया जाता है।[25] अज, अव्यक्त, अव्यय, अचिन्त्य, अनिर्देश्य, अरूप, अपाणि, अपाद, विभु, सर्वगत, नित्य, भूतों का आदिकारण, स्वयं अकारण, जिससे समस्त व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे प्रबुद्धजन ज्ञान नेत्रों से देखते हैं, वह ब्रह्म है। वही मुमुक्षुओं का परम धाम है और वही वेदवचनों से प्रतिपादित विष्णु का सूक्ष्म परम पद है। परमात्मा का यह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्द का वाच्य है और भगवत् शब्द इस आद्य, अक्षय स्वरूप का वाचक है।[26]

देवीपुराण के पैंतालीसवें अध्याय में भगवती का स्वरूप वर्णन इस प्रकार किया गया है–

सेवते या सुरैः सर्वैताश्चैव भजते यतः।
धातुर्भजेति सेवायां भगवत्येव सा स्मृतिः॥[27]

इस व्युत्पत्ति के अनुसार भगवत् शब्द पूज्यत्व की सूचना देता है। इस सामान्य अर्थ में जब प्रतीकात्मकता जुड़ गयी तब भगवत् शब्द में ब्रह्मत्व की, समस्त विशेषताओं की समाहिति देखी गई। सिद्धि आदिक ऐश्वर्य सम्पन्नता भगवत् शब्द का वाच्य हो गयी। ब्रह्म-वैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड में कहा गया है-

सिद्धयैश्वर्यादिकं सर्वे यस्यामस्ति युगे-युगे।
सिद्धयादिके भगो ज्ञेयस्तेन भगवती स्मृता॥[28]

श्री विष्णु पुराण में 'भगवत्' शब्द का अर्थ एकाक्षरी कोष के अनुसार अर्थात् अक्षरों की प्रतीकार्थमयता के आधार पर किया गया है। 'भगवत्' शब्द में 'भ' के दो अर्थ हैं- पोषक और सर्वाधार। 'ग' के तीन अर्थ हैं- नेता, गमयिता और सृष्टा। नेता का अर्थ है- 'कर्मफल प्राप्त कराने वाला', गमयिता का अर्थ है- 'तय कराने वाला' और सृष्टा 'रचयिता' है। 'भ' और 'ग' की संयुति से 'भग' बना है जिसके अर्थ की चर्चा विष्णु पुराण के अनुसार लेख के प्रारम्भ में कर चुके हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् निर्गुण और निरपेक्ष है फिर भी वे सत्य, ऋत्, तेज, श्री, कीर्ति, दम आदि सब गुणों के अधिष्ठान है।[29] षड्गुण, साम्य, असंग आदि सारे गुण उन्हीं में प्रतिष्ठित है, क्योंकि वे सबके हितैषि, सृहृद, प्रियतम और आत्मा है। वस्तुतः उन गुणों को गुण कहना भी सही नहीं है; क्योंकि वे नित्य हैं, सत्त्वादि गुणों के परिणाम नहीं है। प्राकृत गुण आच्छादक और बन्धक होते हैं किन्तु भगवद् गुण मोक्ष कारक है।[30]

इस प्रकार पुराणों में भगवत्तत्त्व की विस्तृत चर्चा मिलती है जिसकी संक्षिप्त विवेचना ही यहाँ संभव है।

गीता में भगवत्तत्त्व

गीता को सभी शास्त्रों का सार या निचोड़ माना जाता है। इसमें अनेक दार्शनिक विषयों की गंभीर विवेचना हुई है। इन्हीं विषयों के अन्तर्गत 'भगवत्तत्त्व' भी आता है। गीता में 'भगवत्तत्त्व' को अक्षर, अव्यक्त, परमगति, परमधाम, परमात्मा इत्यादि नामों से व्यक्त किया गया है-

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥[31]

गीता में कहा गया है कि भगवान स्वयं अज, अव्ययात्मा और समस्त भूत

प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी इसी योगमाया द्वारा अपने को प्रकट करते हैं–

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।[32]

भगवान के जन्म और कर्म दूसरों की तरह प्राकृत नहीं होते अपितु दिव्य, चिन्मय होते हैं–

जन्म कर्म च मे दिव्यम्।[33]

सर्वभूतों के अन्तर में जो ईश्वर सत्ता है, वह क्षर है–

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थेऽक्षर उच्यते।[34]

'भगवत्तत्त्व' की गूढ़ता की ओर संकेत करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'मेरी उत्पत्ति को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन।' कारण यह है कि मैं ही सबका जन्मदाता हूँ–

न ये विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥[35]

परमात्मा का निर्गुण तत्त्व मन–वाणी का अविषय है। वह सत्–असत् से विलक्षण है–

ज्ञेयं यत तत्प्रवक्षयामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥[36]

गीता के अनुसार सच्चिदानन्दघन निर्गुण परब्रह्म परमात्मा के किसी एक अंश में प्रकृति है। उस प्रकृति के प्रभाव से ही वह सृष्टि की रचना करता है और इसी कारण सगुण चेतन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कहलाता है। वही आदि पुरुषोत्तम, माया विशिष्ट आदि नामों से अलंकृत किया जाता है। प्रकृति को लेकर ही उसमें समस्त जीवों की स्थिति है। श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे से ही सारा जगत चेष्टा करता है–

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वे प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः॥[37]

गीता में भगवान के सगुण सविशेष तथा निर्गुण निर्विशेष का परिचय देते हुए दोनों को अभिन्न तत्त्व माना गया है, 'वह परमात्मा सभी चक्षुरादि इन्द्रियों के रूपादि वृत्तियों के आकार से भासित होता है अथवा सभी इन्द्रियों और तद्विषयों को आभासित करता है तथा सभी इन्द्रियों से रहित है। वह सत्त्वादि गुणों से रहित और सत्त्वादि गुण तथा उसके परिणामों का भोक्ता है–

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥[38]

जिस प्रकार सुवर्ण कटक, कुण्डल आदि आभूषणों के और जल जलतरंगों के बाहर-भीतर रहता है, उसी प्रकार परमेश्वर चर-अचर जगत् के बाहर-भीतर विद्यमान है-

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥[39]

सब प्राणियों में वह परमेश्वर विभागरहित एक है, न कि प्रति शरीर भिन्न, क्योंकि वह आकाश की तरह व्यापक है-

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥[40]

इस प्रकार गीता में 'भगवत्तत्त्व' की बहुत ही विशद् व गहन विवेचना हुई है। भगवत् स्वरूप, उसकी महिमा, शक्तियों, कार्यों की जितनी स्पष्ट विवेचना गीता में प्रस्फुटित हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'भगवत्तत्त्व' की विवेचना संहिताओं, स्मृतियों व रामायण, महाभारत और संत साहित्य में भी प्रसंगानुसार हुई है जो वेद, उपनिषद्, पुराण और गीता में व्यक्त भगवत्तत्त्व का प्रतिबिम्ब मात्र है, इसलिए इनकी यहाँ पृथक् चर्चा अनावश्यक होगी।

जम्भवाणी में भगवत्तत्त्व

गुरु जाम्भो जी के सबदों का सामूहिक नाम जम्भवाणी है। इस वाणी में गुरु जाम्भो जी द्वारा प्रसंगानुसार समय-समय पर उच्चरित 120 सबदों का संग्रह है। ये 'सबद' गुरु जाम्भो जी ने जिज्ञासुओं की शंका समाधान या उनकी किसी जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए उच्चरित किए थे। 'जम्भवाणी' में जीवन व जगत् से जुड़े अनेक विषयों की विशद् व गहन विवेचना हुई है। गुरु जाम्भोजी ने इस वाणी में 'भगवत्तत्त्व' की प्रसंगानुसार चर्चा की है जो 'भगवत्तत्त्व' को समझने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

जम्भवाणी में 'भगवत्तत्त्व' को 'विष्णु' नाम से अभिहित किया गया है तथा उसे निर्गुण माना गया है। गुरु जाम्भो जी ने कहा है कि विष्णु के सहस्रों नाम हैं- 'सहस्र नाम सांई भल शिम्भू।'[41] इन सहस्रनामों से कतिपय नामों का प्रयोग जम्भवाणी में मिलता भी है जैसे- स्वयंभू[42], सुरपति[43], साम्य[44], परमतंत[45], सारंगधर[46], मुरारी[47], रहमान, रहीम, करीम[48], खुदा[49], अल्ला[50], राम[51], कृष्ण[52], नारायण[53], अलख[54],

अपरम्पर[55], अजोनी[56] आदि।

गुरु जाम्भो जी ने भगवत्तत्त्व को अनादि बताते हुए कहा है कि जब पवन, पानी, धरती, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, माता-पिता, चौरासी लाख योनियाँ, अट्ठारह भार वनस्पति आदि कुछ भी नहीं था तब केवल धंधूकार ही था, तब भी मैं (भगवत्तत्त्व) था-

जद पवण न होता पाणी न होता, न होता धर गैणारूं।
चन्द न होता सूर न होता, न होता गिंगदर तारूं॥

****

म्हे तदपण होता अब पण आछै, बल-बल होयसा।
कह कद कद का करूं विचारूं॥[57]

जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है तब भी आदि ब्रह्म शब्द रूप में मौजूद रहता है और फिर उसी से सृष्टि का विकास होता है-

आद शब्द अनाहद वाणी, चवदै भवन रह्या छल पाणी।
जिहिं पाणी से इण्ड उपना, उपना ब्रह्म इन्द्र मुरारी॥[58]

गुरु जाम्भो जी अपनी वाणी में कहते हैं कि जब केवल धंधूकार था तब निरंजन परमात्मा अपने आप ही उत्पन्न हुए थे। तब चन्द्रमा, सूर्य, तीनों लोक, तारामण्डल, नक्षत्र, तिथि, वार, पूर्णिमा, अमावस्या, समुद्र, पर्वत, स्त्री, पुरुष कुछ भी नहीं था-

आप अलेख उपन्ना शिभूं, निरह निरंजन धंधूकारूं।
आपै आप हुआ अपरम्पर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं।
नै तद चंदा नै तद सुरूं, पवण न पाणी धरती आकाश न थीयों।
न तद मास न वर्ष न घड़ी न पहरूं, धूप न छाया ताव न सीयों॥

****

आपै आप उपन्ना शिभूं, निरह निरंजन धन्धूकारूं।
आपों आप हुआ अपरम्पर, हे राजेन्द्र लेह विचारूं॥[59]

उस परमात्मा का धाम सूर्य, चन्द्रमा, तारों आदि से भी उपर है, जहाँ केवल धंधूकार (शून्य) है-

उरधक चन्दा निरधक सूरूं, नवलख तारा नेड़ा न दूरूं।
नवलख चन्दा नवलख सूरूं, नवलख धंधू कारूं।
तांह पररै तेपण होता, तिंह का करूं विचारूं॥[60]

नौखण्ड और पृथ्वी उसी परमात्मा से प्रकट हुए हैं और उसके आदि मूल का भेद कोई विरला ही जानता है–

नवखण्ड पृथिवी प्रगटियों,
कोई विरला जाणत म्हारी आद मूल का भेवों।[61]

वह परमात्मा शून्य मण्डल का राजा (स्वामी) है–

जुग अनन्त अनन्त वरत्या, म्हे सुनि मण्डल का राजूं॥[62]

सातों पतालों, तीनों लोकों, चौदह भवनों, आकाश सभी प्राणियों के बाहर भीतर वही परमात्मा विराजमान है–

सप्त पताले तिहूं त्रिलोके, चवदा भवने गगन गहीरे।
बाहर भीतर सर्व निरन्तर, जहाँ चीन्हों तहां सोई॥[63]

पवन, पाणी, धरती, आकाश, पर्वत, वनस्पति, सूर्यादि सभी उसी परम तत्त्व के अधीन है–

पवणा पाणी जमी मेहूँ, भार अठारह परबत रेहूँ।
सूरज जोति परै परेरै, एति गुरु के शरणै॥[64]

नदि में नीर, सागर में हीरों की भांति वह परमात्मा पवन रूप में सर्वत्र विराजमान रहता है–

नदिये नीरूं सागर हीरूं, पवणा रूप फिरै परमेश्वर॥[65]

जिस प्रकार तिल में तैल (अदृश्य रूप में) रहता है उसी प्रकार पाँच तत्त्वों से निर्मित इस शरीर में परमात्मा (अदृश्य रूप में) रहता है–

ऊंचै नीचै करै पसारा, नही दूजै का संचारा।
तिल में तेल पहुप में वास, पाँच तंत में लियो प्रकाश॥[66]

जिस प्रकार पुष्प में सुगंध (अदृश्य रूप में) रहती है उसी प्रकार सर्वत्र परमात्मा की लीला (अदृश्य रूप में) रहती है–

पोहप मध्ये परमला जोति, यूं सुरग मध्ये लीलूं॥[67]

इस प्रकार से अदृश्य (निराकार) रूप में रहने वाला परमात्मा अधर्म बढ़ जाने पर, सज्जनों की रक्षा हेतु साकार रूप में प्रकट होते हैं–

जां जां शैतानी करै उफारूं, तां तां महतं ज फलियो॥[68]

हमें उस परमात्मा (विष्णु) का जप करना चाहिए क्योंकि वह संतों भक्तों का उद्धार करने वाला है। उसके प्रसन्न होने पर मोक्ष रूपी लाभ मिलता है–

विसन विसन तूं भणि रे प्राणी, साचां भगतां उधरणौ।
तिंह तूठे मोख मुगति ज लाभै ॥[69]

परमात्मा को जानना एक दुष्कर कार्य है। जो कहते हैं कि मैंने परमात्मा के विषय में सब कुछ जान लिया है, इसका मतलब उसने कुछ भी नहीं जाना और जो कहता है मैंने कुछ नहीं जाना, इसका मतलब उसने फिर भी कुछ-कुछ जाना है-

जां कुछ जां कुछ जां कुछ न जांणी।
नां कुछ नां कुछ तां कुछ जांणी ॥[70]

इस प्रकार गुरु जाम्भोजी ने अपनी वाणी में 'भगवत्तत्त्व' की बहुत ही व्यवहारिक व विशद् विवेचना की है व इसके गूढ़ गंभीर भेद को सरल भाषा व लोक प्रचलित प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया है।

गुरु जाम्भो जी: भगवत्तत्त्व के परिप्रेक्ष्य में

गुरु जाम्भोजी का जीवन चरित्र, जीवनोद्देश्य महनीय व्यक्तित्व व अद्भुत कार्यों से यह विदित होता है कि वे कोई सामान्य संत या पुरुष नहीं थे, अपितु 'भगवत्तत्त्व' थे। इस विषय में प्रमाण रूप में उनकी वाणी मौजूद है जो स्वत: सिद्ध है और इसे जांभाणी कवियों ने पाँचवां वेद कहा है-

केवल न्यांन सारां सिरै, सब्र जौंण जाण सकल।[71]
पांचवो न्यान न उपजै, सकलां सिरि सोई अकल ॥ -अल्लूजी
गुरु पांचमां वेद पढ़ै मुख परगट, सो गुरुवाणी सांभलियो ॥[72] -गोकलजी

अपनी वाणी में गुरु जाम्भो अपने विषय में बताते हैं कि -

जुगां जुगां को जोगी आयो, सतगुरु सिद्ध बतायो ॥[73]

गुरु जाम्भो जी ने अपनी वाणी में अपने पूर्व के नौ अवतारों का विस्तार से वर्णन करते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि वे नौ अवतार मेरे ही थे-

अइयालो अपरंपर वाणी, म्हें जपां न जाया जीऊं।
नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा थीयूं ॥[74]

अपने अवतार लेने के कारण को विस्तार से बताते हुए उन्होंने कहा है कि मैं प्रह्लाद बाड़े के बिछुड़े बारह करोड़ जीवों का उद्धार करने आया हूँ-

सुरगां हूंते शिंभू आयो, कहो कूणां के काजै।
नर निरहारी एक लवाई, परगट जोत बिराजै।
प्रह्लादा सूं वाचा कीवी, आयो बारां काजै।

बारा मैं सूं एक घटै तो, सू चेलो गुरु लाजै ॥[75]

इसी बात को वे एक सबद में भी कहते हैं–

मैं वाचा दई प्रहलादा सूं, सुचेलो गुरु लाजै।
कोड़ तेतीसूं बाड़े दीन्ही, तिनकी जात पिछाणो ॥[76]

इस तथ्य को उन्होंने अपनी वाणी में बार–बार विश्वासपूर्वक दोहराया है। उनका भौतिक शरीर भी प्रकृति के अधीन नहीं था। सबदवाणी के प्रसंगों और जाम्भाणी साहित्य से विदित होता है कि वे निराहारी थे, उनकी पीठ दिखाई नहीं देती थी और उनके शरीर से सुगंध आती थी। उनकी छांह भी नहीं पड़ती थी और पांवों के निशान भी नहीं बनते थे। वे नींद भी नहीं लेते थे। उद्धरण कान्हावत इस विषय में उनसे प्रश्न करता है–

उद्धरण कान्हावत यूं कह्यो, देवजी किसो आचार।
पेठ पीठि दीस नहीं, ताका करो विचार ॥[77]

गुरु जाम्भो जी उत्तर देते हैं–

मोरे छाया न माया, लोही न मासूं।
रक्तूं न धातूं मोरे माय न बापूं ॥[78]

फिर वीदा पूछता है–

वीदा जोधावत कहै, सोरम आवै देव।
डील तुम्हारो महीम है, हमें बतावों भेव ॥[79]

गुरु जाम्भो जी उत्तर देते हैं–

मोरे अंग न अलसी तेल न मलियो, ना परमल पिसायों।
जीमत पीवत भोगत विलसत दीसां नाही, म्हापण को आधारूं ॥[80]

जम्भवाणी से ज्ञात होता है कि उन्होंने राव वीदा को एक ही समय में अनेक स्थानों पर हवन करके दिखाया था।[81]

गुरु जाम्भो जी के जीवन चरित्र का सबसे प्रमाणिक आधार जाम्भाणी साहित्य है जो उनके समकालीन व परवर्ती कवियों द्वारा रचित है। इस साहित्य में गुरु जाम्भो जी की भगवत्ता स्वयं सिद्ध है। उनके अलौकिक जीवन चरित्र व अद्‌भुत कार्यों को लेकर जांभाणी साहित्य में अनेक छन्द, साखियाँ, हरजस व आख्यान काव्य मिलते हैं जिनकी विस्तृत चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है। जांभाणी कवियों के एक–दो उदाहरण के साथ इस विषय को यहीं विराम देते हैं क्योंकि 'हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता'।

आदि अनादि जुगादि को जोगी, लोहट घर अवतार लियो है।
धन ही धन भाग बड़ो, जिन हांसल कुं हर मात कहयो है।
होत उजास प्रकास भयो, रैन घटी जैसे भोर भयो है।
कोड़ द्वादस काज कै तांई, केसोदास भणै थल आय रहयो है।[82]

प्रगटे जद रूप निरंजन, जांभेसर नाम कहावन कूं।
भगवां कपड़ा करि जाप जपै, संभराथल जाण जगावन कूं।
गुरु ग्यान की ध्यान को ध्यात धरै, बहू लोकन कूं समझावन कूं।
धरणी उर जंघ पांव न धरहूं, बल हूं बल हूं इन पावन कूं॥[83]

संदर्भ :-

1. विष्णु पुराण: 6/5/74
2. अमरकोष: पृ. 616
3. विष्णु पुराण: 6/5/75
4. वही: 6/5/78
5. (संपा.) रामचन्द्र पाठक; आदर्श हिन्दी शब्दकोश; पृ. 303
6. बृहदारण्योकपनिषद्: 4/4/22
7. वह्निपुराण: वैष्णवक्रियायोग; यमानुशासननामाध्याय
8. ऋग्वेद: 10/129/1
9. वही: 10/129/2
10. वही: 10/129/7
11. अथर्ववेद: 10/8/44
12. शुक्ल यजुर्वेद: 32/1
13. वही: 32/4
14. वही: 31/3
15. वही: 31/19
16. श्वेताश्वतरोपनिषद्: 6/7
17. वही: 6/8
18. वही: 6/9
19. मुण्डकोपनिषद्: 3/1/8
20. श्वेताश्वतरोपनिषद्: 1/15
21. कंठोपनिषद्: 2/2/12
22. वही: 2/2/15

23. अध्यात्मोपनिषद् /30
24. श्वेताश्वतरोपनिषद्: 4/9
25. विष्णु पुराण: 6/5/71
26. वही: 6/5/66-69
27. देवी पुराण: 45/27
28. ब्रह्मवैवर्त पुराण: 54/32
29. श्रीमद्भागवत पुराण: 10/13/39
30. वही: 10/10/32-33
31. श्रीमद्भगवद् गीता: 4/14
32. वही: 4/6
33. वही: 4/9
34. वही: 15/16
35. वही: 10/2
36. वही: 13/12
37. वही: 10/8
38. वही: 13/14
39. वही: 13/15
40. वही: 13/16
41. (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, जंभसागर: पंचम संस्करण: पृ. 183/93
42. वही: पृ. 28
43. वही: पृ. 186
44. वही: पृ. 11
45. वही: पृ. 89
46. वही: पृ. 11
47. वही: पृ. 65
48. वही: पृ. 65
49. वही: पृ. 33
50. वही: पृ. 28
51. वही: पृ. 65
52. वही: पृ. 11
53. वही: पृ. 28
54. वही: पृ. 49

55. वही: पृ. 28
56. वही: पृ. 28
57. वही: पृ. 24–26/4
58. वही: पृ. 181/93
59. वही: पृ. 204–206/105
60. वही: पृ. 173–174/89
61. वही: पृ. 172/88
62. वही: पृ. 161/83
63. वही: पृ. 83/40
64. वही: पृ. 99/53
65. वही: पृ. 218/115
66. वही: पृ. 199/101
67. वही: पृ. 125/66
68. वही: पृ. 123/65
69. वही: पृ. 10–11/नवण मंत्र
70. वही: पृ. 47/19
71. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी: जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृ. 583
72. वही: पृ. 421
73. संपा. कृष्णानन्द आचार्य: जंभसागर; पृ. 180/92
74. वही: पृ. 26/5
75. वही: पृ. 222/118
76. वही: पृ. 214/112
77. वही: पृ. 21/प्रसंग
78. वही: पृ. 21/2
79. वही: पृ. 22/प्रसंग
80. वही: पृ. 22/3
81. वही: पृ. 126–139/67
82. संपा. कृष्णानन्द आचार्य; पोथो ग्रंथ ज्ञान; पृ. 129
83. वही: पृ. 134

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी),
दयानन्द महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

सबदवाणी के प्रसंगों में जाम्भोजी का भगवद् रूप

डॉ. बनवारी लाल सहू

बिश्नोई पंथ के प्रवर्त्तक गुरु जाम्भोजी साक्षात् विष्णु थे। इस बात का संकेत जाम्भोजी के अवतार से पूर्व ही भगवान ने लोहटजी एवं हंसा को दे दिया था, जिसका वर्णन जाम्भाणी साहित्य के अनेक कवियों ने किया है।[1] बाद में इसकी पुष्टि जाम्भोजी के अवतरित होने पर बालक रूप में किसी से भी जन्म घूटी न लेने से हो जाती है।[2] कालान्तर में गुरु जाम्भोजी का अपनी बाल्यावस्था में बालक रूप में जच्चागृह से अदृश्य होना व स्वत: ही पुन: प्रकट होना,[3] शरीर को भारी बनाना, जिससे ताँतू एवं लोहटजी द्वारा न उठना व दासी द्वारा उठा लेना,[4] स्तनपान न करना,[5] पीढे पर सुलाने पर घूमकर ईस पर लेटना तथा धरती पर पीठ न लगाना[6] आदि अलौकिक घटनाओं के माध्यम से वे अपने माता-पिता एवं अन्य लोगों को चमत्कृत करते रहते हैं। बाल्यकाल की ये घटनाएँ उनके विष्णु होने का प्रमाण है। पशु-चारन काल में जाम्भोजी द्वारा बिना हथियार एवं बिना जन शक्ति के उद्धहरण कान्हावत की सांढे डाकूओं से छुड़ाना[7] तथा पीपासर के कुएं पर अलग-अलग वर्ग के पशुओं को पानी पीने का आदेश देना एवं उसी के अनुरूप पशुओं का पानी पीने लिए आने से राव दूदा चमत्कृत हो जाते हैं।[8] इससे प्रभावित होकर पशुओं के पीछे जाते हुए जाम्भोजी से मिलने के लिए राव दूदा का घोड़े को सरपट दौड़ाना तथा दोनों के बीच की दूरी का यथावत रहना और राव दूदा का पैदल चलते ही जाम्भोजी से मिलना, राव दूदा की राज्य प्राप्ति की प्रार्थना पर जाम्भोजी द्वारा काठ-मूठ की तलवार देना एवं राज्य-प्राप्ति का आशीर्वाद देना और राव दूदा को खोया हुआ राज्य प्राप्त होना[9] आदि घटनाओं से जाम्भोजी का भगवद् रूप घर, परिवार एवं गाँव के साथ-साथ राज पुरुषों तक पहुँच जाता है।

गुरु जाम्भोजी ने सात वर्ष की अवस्था में सम्वत् 1515 में सबदवाणी का प्रथम सबद कहा था। तब से लेकर सम्वत् 1593 तक जाम्भोजी नें ''जीया ने जुगती अर, मूवा नै मुगती'' के लिए न जाने कितने सबद कहे होंगे पर आज उनके द्वारा कहे हुए 120 सबद ही उपलब्ध हैं, शेष सभी सबद मौखिक प्रवृत्ति के कारण या संरक्षण के अभाव में काल में समाहित हो गये या पंथ की दृष्टि से ओझल हैं। इसलिए आज बिश्नोई पंथ एवं साहित्य जगत को इतने ही सबदों पर संतोष करना पड़ रहा है। काल में समाहित या समाज से ओझल सबदों से पंथ एवं साहित्य को कितनी हानि उठानी पड़ रही है, इसकी कल्पना करना कठिन है। आज समाज में ऐसी अनेक सबदवाणियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें सबदों के गद्य व पद्य में प्रसंग दिये हुए

हैं। इन प्रसंगों की सत्यता एवं असत्यता के विवाद के घेरे से बाहर निकलकर समाज इनको सत्य ही स्वीकार किये हुए है। इन प्रसंगों से जहां एक ओर सबदों के भावार्थ को समझने में सहायता मिलती है, वहीं इनसे हमें तत्कालीन परिस्थितियों, इतिहास की अनेक घटनाओं एवं तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है और साथ ही इनमें गुरु जाम्भोजी का भगवद् रूप भी प्रकट होता है। सबदों के प्रसंगों से प्रकट होने वाले जाम्भोजी के भगवद् रूप से लोगों ने तत्कालीन समय में प्रेरणा प्राप्त की थी व आज भी हमें उनकी कही हुई बातों को मानने के लिए प्रेरणा प्राप्त हो रही है और भविष्य में भी प्राप्त होती रहेगी।

भक्तिकाल में जाम्भोजी कृत सबदवाणी एक ऐसी रचना है, जो विष्णु के विचारों का संग्रह है। इसके इसी महत्व के कारण जाम्भाणी कवियों ने इसे पाँचवां वेद कहा है।[10] यह इस काल की एक विशिष्ट रचना है, जो लोक मंगलकारी है तथा यह मानव जाति को इसमें कही हुई बातों के अनुरूप आचरण करने को प्रेरित करती है। सबदवाणी के अनेक सबदों में गुरु जाम्भोजी ने अपने भगवद् रूप को प्रकट किया है और लोगों को बार-बार यह विश्वास दिलाया है कि उनके सामने साक्षात् विष्णु हैं। इसलिये वे उनकी कही हुई बातों के अनुसार आचरण करके मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं और जो ऐसा नहीं कर पायेंगे, उन्हें पश्चाताप करना पड़ेगा।

जंपो विसन न दोय दिल करणी, जंपो विसन न निंद्या करणी।
मांडो कांध विसन की सरणी, अतरा बोल करो जे साचा।
तो पराय गिरांय गरु की वाचा।[11]
गुर गति छूटी टोट पड़ैला।[12]
चंद आसंण सूर आंसण गरु आसंण संभराथळे।
कहे सतगुरु भूलि न जाइयौ पड़ौला अभै दो जगे।[13]

गुरु जाम्भोजी की सबदवाणी में जितने सबद हैं, वे जिज्ञासुओं की विभिन्न जिज्ञासाओं से संबंधित हैं। इन जिज्ञासुओं में राजा-महाराजा, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, काजी-मुल्ला, योगी एवं पाखण्डी आदि सभी तरह के लोग रहे हैं और सभी के अलग-अलग उद्देश्य रहे हैं। जाम्भोजी ने इन सब की जिज्ञासाओं को शान्त करके उन्हें जीवन का सच्चा रास्ता दिखाया था। इतना ही नहीं अपितु कुछ लोगों को उन्होंने सबदो के माध्यम से जो उपदेश दिया है, उससे पूर्व ही उन्होंने अपने भगवत रूप को भी प्रकट किया है, जिससे उन्हें उनके रूप पर विश्वास हो सके और वे उनकी बात मान कर अपने जीवन को सुखी बना सके और मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो सके।

सबदवाणी के प्रथम सबद के प्रसंग में ही जाम्भोजी का भगवद् रूप प्रकट होता है। बालक जाम्भोजी के उपचार हेतु आया हुआ नागौर का तांत्रिक ब्राह्मण जब बालक का उपचार करने में सफल नहीं हुआ–विशेषकर जब उसके दीप प्रज्जवलित नहीं हुए तो उसने अपनी विवशता प्रकट कर दी और स्पष्ट कह दिया कि जब तक मेरे दीप प्रज्जवलित नहीं होगे, तब तक मैं अपने उद्देश्य में अर्थात् बालक को बुलाने में सफल नहीं हो सकता। इस पर बालक जाम्भोजी ने कच्चे घड़े को कच्चे सूत से बांध कर कुएं से जल निकाला और उन दीपको में डाला। जल के पड़ते ही दीप प्रज्जवलित हो गये।[14] इस दृश्य को देखकर वहां उपस्थित सभी लोग जाम्भोजी के भगवद् रूप के सामने नत मस्तक हो गये और ब्राह्मण ने तो जाम्भोजी के चरण ही पकड़ लिये। तब जाम्भोजी ने उस ब्राह्मण एवं उपस्थित लोगों के प्रति प्रथम सबद कहा। इस प्रसंग के साथ–साथ जाम्भोजी ने अपने प्रथम सबद में भी अपने भगवद् रूप का परिचय देते हुए कहा है–

किसन चिरत विणि काचै करवै रहयौ न रहिसी पांणी।[15]

अर्थात् कृष्ण भगवान की कृपा एवं शक्ति के बिना कच्चे घड़े में आज तक कभी भी पानी न रहा है और न रहेगा। बालक जाम्भोजी के जीवन की इस घटना के हमें निम्नलिखित प्रभाव दिखाई देते हैं–

1. लोहटजी एवं हांसा देवी द्वारा जाम्भोजी के भगवद् रूप को स्वीकार करना।
2. नागौर के बाह्मण एवं वहां उपस्थित सभी लोगों के द्वारा जाम्भोजी के भगवद् रूप पर आश्चर्य प्रकट करना और उनके सामने नत मस्तक होना।
3. लोहट जी एवं हांसा द्वारा जाम्भोजी का उपचार बंद करना।

सबदवाणी के समस्त सबदों में लगभग इक्कीस सबद ऐसे हैं, जिनके प्रसंगों में गुरु जाम्भोजी का भगवद् रूप प्रकट हुआ है। जाम्भोजी के विष्णु रूप तथा तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उन्हें अपना भगवद् रूप प्रकट करना आवश्यक था। यही कारण है कि न चाहते हुए भी लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए तथा उन्हें मोक्ष दिलाने के उद्देश्य से जाम्भोजी को बार–बार अपने भगवद् रूप को प्रकट करना पड़ा है। उनके इसी भगवद् रूप एवं ईश्वरीय कार्यो के द्वारा लोग उनके प्रति इतने आकर्षित हुए थे और वे बुरे–कार्यो, जीव–हिंसा, आडम्बर, तंत्र–मंत्र, जादू–टोने एवं मूर्ति–पूजा आदि को त्याग कर जीवन के सही रास्ते पर अग्रसर होने प्रारम्भ हो गये थे।

गुरु जाम्भोजी की सबदवाणी के विभिन्न सबदों के प्रसंगों में उनका जो भगवद् रूप प्रकट हुआ है, वह अपरम्पार है, क्योंकि ईश्वर के रूप या शक्ति को जानना एवं उसका वर्णन करना असम्भव है। वेदों तक ने भी ईश्वर की शक्ति एवं

गुणों के सम्बन्ध में नेति-नेति कहकर अपनी असमर्थता प्रकट की है। ऐसी स्थिति में सबदवाणी के प्रसंगों में अभिव्यक्त गुरु जाम्भोजी के भगवद् रूप एवं उनकी शक्ति को प्रकट करना अत्यन्त दुष्कर है फिर भी इस क्षेत्र में दूसरों की तरह प्रयास किया जा सकता है। यजुर्वेद में ईश्वर की ग्यारह विशेषताओं (रूपों) का वर्णन किया है।[16] इस दृष्टि से सबदवाणी के विभिन्न सबदों के प्रसंगों में गुरु जाम्भोजी का जो भगवद् रूप प्रकट हुआ है, उसे निम्नलिखित विशेषताओं के द्वारा समझा जा सकता है:-

1. सर्वव्यापी 2. सर्वज्ञ 3. अन्तर्यामी 4.सर्वशक्तिमान
5. चमत्कारी रूप 6. त्रिकाल ज्ञाता

गुरु जाम्भोजी साक्षात् विष्णु थे। इसी आधार पर उन्होंने अपने कई सबदो में 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में अपना परिचय एवं अपनी शक्ति का वर्णन किया है। जाम्भोजी के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी है। वह पिण्ड एवं ब्राह्मण्ड में सर्वत्र स्थित है तथा घट-घट में सूक्ष्म रूप में व्याप्त है।[17] संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां ईश्वर का अस्तित्व न हो। वह बाहर-भीतर सभी स्थानों पर है। उस तक पहुंचना एवं उसका वर्णन करना कठिन है।[18] सबदवाणी के साथ-साथ सबदवाणी के प्रसंगों में भी भगवान के इसी सर्वव्यापी रूप का चित्रण हुआ है। अपने इसी सर्वव्यापी रूप का वर्णन जाम्भोजी ने सबद संख्या इक्कीस के प्रसंग में एक चारणी एवं कुंची वाले सबद (30) के प्रसंग में रणधीरजी से करते हैं। इतना ही नहीं अपितु वे रणधीर जी को भी दिव्य दृष्टि देकर उन लोगों के दर्शन करवाते हैं, जहां जाम्भोजी उपदेश देते रहे हैं।[19] ईश्वर के इस सर्वव्यापी रूप को समझना कठिन है। सामान्य मनुष्य की रहने, उठने-बैठने एवं आने-जाने की अपनी एक सीमा होती है जब कि ईश्वर अपनी शक्ति के अनुरूप सदैव सर्वत्र व्याप्त रहता है। यही स्थिति सबदवाणी के कई सबदो के प्रसंगों में गुरू जाम्भोजी की है।

ईश्वर का एक गुण सर्वज्ञ का है। गुरु जाम्भोजी ने सबदवाणी में अहं ब्रह्मास्मि के रूप में अपने सर्वज्ञ रूप का वर्णन करते हुए बताया है:-

म्हे सरै न बैठा सीख न पूछी, निरति सुरति सा जाणी।[20]

इसी आधार पर उनके कई सबदो के प्रसंगों में भगवान का सर्वज्ञ रूप प्रकट हुआ है।[21] सबद संख्या 23 के प्रसंग में गुणवती नगरी का तेली एवं उसके साथी हिंसा का विरोध करने एवं अपने धर्म पर अटल रहने के कारण राज्य के सिपाहियों द्वारा मारे जाते हैं। इसी घटना की जानकारी समराथल पर बैठे हुए जाम्भोजी को तुरन्त हो जाती है। अपने भक्तों की अहिंसा एवं धर्म पर दृढ़ता को देखकर जाम्भोजी अत्यन्त हर्षित हो जाते हैं।

थल सिर हरखे देव जी, साथरिया बूझे बात।[22]

साथरियों के पूछने पर वे अपनी सर्वज्ञता प्रकट करते हैं तथा अपने भक्तों की धर्म पर दृढ़ता के बारे में बताते हैं:-

साल्हिया हुआ मरण भय भागा। गाफल मरणै घणा डरै।।[23]

सर्वज्ञता की यही विशेषता सबद संख्या उनतीस के प्रसंग में दिखाई देती है, जहां जाम्भोजी समराथळ पर बैठकर अपनी संत मण्डली को कन्नौज एवं समुद्र पार के देशों के लोगों के रहन-सहन के बारे में समस्त जानकारी करा देते हैं:-

एक समय हर्षाय देवजी बात चलाई।
कन्नोज कालपी समद पार की कही संभलाई।[24]

भगवान सब के अन्तर्मन की बात को जानते हैं। इसी आधार पर भगवान को अन्तर्यामी भी कहा जाता है। सबदवाणी के कई सबदो के प्रसंगों में हमें जाम्भोजी के भगवद् रूप में उनके अन्तर्यामी गुण की जानकारी प्राप्त होती है। एक बार जाम्भोजी समराथळ से नागौर जाते हुए मुहम्मद खां नागौरी एवं शेख मनोहर के मन की जिज्ञासा को जानकर अपने सेवक को भेजकर उन्हें समराथळ पर बुलाते हैं और उनके द्वारा पूछे गये 'रूह के रंग' के प्रश्न का जवाब सबद संख्या अठाइस के द्वारा देते हैं।[25] इसी तरह सबद संख्या इक्यासी के प्रसंग में भी जाम्भोजी के दर्शनों के लिए दूर से आने वाले साधु की मन: स्थिति को जानकर जाम्भोजी अपने सेवक के माध्यम से उसे अपने पास बुलाकर, उसके संशय को दूर करते हैं।[26] यहां भी जाम्भोजी के भगवद् रूप का अन्तर्यामी गुण ही प्रकट होता है।

सबदवाणी के सबद संख्या नब्बे के प्रसंग में साणियां का भी उल्लेख है, जिस पर प्रेत का प्रकोप रहा है। उसके प्रसंग में भी जाम्भोजी का यही अन्तर्यामी गुण प्रकट होता है। वे जमात को साणिया का सारा रहस्य बतलाते हैं और साणियां को प्रेत के प्रभाव से मुक्त करके सामान्य जीवन जीने के मार्ग पर अग्रसर करते हैं।[27] जोधपुर के मूलराज ब्राह्मण की प्रेरणा से वहां के राजा मालदेव जब जाम्भोजी के दर्शनो के लिए जाम्भोळाव को प्रस्थान करते हैं तो अन्तर्यामी जाम्भोजी मालदेव की भावना को समझकर और उनके रास्ते के कष्टों को देखकर स्वयं ही जंगल में उनके सामने पहुँच जाते हैं। इस तरह सबद संख्या नब्बे एवं जोधपुर के राजा मालदेव के प्रसंग में गुरु जाम्भोजी के भगवद्रूप का अन्तर्यामी गुण प्रकट होता है। मालदेव के पूछने पर जाम्भोजी उनके प्रति कहे गये सबद में अपना भगवद् रूप ही प्रकट करते हैं और कहते हैं कि इस धरती पर ईश्वर के जो नौ अवतार हुए हैं, वे मेरे ही रूप रहे हैं और हर बार मेरी ही विजय होती रही है। अब मैं स्वयं विष्णु, जाम्भोजी के रूप में उपस्थित हूँ। इन परिस्थितियों में यदि कोई मोक्ष चाहता है तो जैसा मैं कहता हूँ,

वैसा करो। मोक्ष प्राप्ति की ऐसी गारन्टी विष्णु ही दे सकते हैं। इससे बड़ा कोई प्रमाण जाम्भोजी के भगवद् रूप का नहीं हो सकता।

पंथ चलायो राह दिखायो, नौबर विजय हुई हमारी।
शेष जम्भराज आप अपरंपर, अवल दिन से कहियो।
दोजख छाड़ि भिस्त जे चाहो, तो कहियो करो हमारा।
इन्द्रपुरी बैकुण्ठे बासो, तो पावो मोक्ष ही द्वारा।।[28]

जाम्भोजी के समय में मरु प्रदेश में नाथ सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था। बिश्नोई पंथ के बढ़ते प्रभाव को देखकर यहां के नाथ चिन्तित हो गये थे क्योंकि उन्हें अपना अस्तित्व खतरे में दिखाई दे रहा था। इसीलिए तत्कालीन नाथ सम्प्रदाय के एक प्रमुख नाथ लोहा पांगल ने जाम्भोजी को परास्त करने का बीड़ा उठाया था।[29] जाम्भोजी ने भी कनफटे नाथों में व्याप्त आडम्बरों को समाप्त करने और उन्हें सही राह पर लाने के लिए उन्हें इक्कीस सबदों द्वारा समझाया है।[30] इन सबदो में से बारह सबद तो जाम्भोजी ने अकेले लोहा पांगल को समझाने के लिए कहे थे।[31] इनके अतिरिक्त लक्ष्मणनाथ भी जाम्भोजी के समकालीन था, जिसको भी जाम्भोजी ने कई सबदो द्वारा समझाया था। सारी बातें समझाने के बाद भी जाम्भोजी लक्ष्मण नाथ एवं उनकी मंडली को पूर्ण विश्वास दिलाने के लिए अपने भगवद् रूप के द्वारा सबद संख्या इक्यावन के प्रसंग में ईश्वर के सर्व शक्तिमान गुण का परिचय देते हैं। गुरु जाम्भोजी अपने सर्वशक्तिमान गुण के द्वारा अपने शिष्य को नाथों से ऊंचा आसन लगवाकर, धूप-गर्मी से विचलित न होकर तथा भूख-प्यास से अप्रभावित रहकर लक्ष्मणनाथ एवं उसकी मंडली को अपने भगवद् रूप के सामने नत मस्तक कर देते हैं। यही स्थिति लोहापांगल के सम्बन्ध में सबद संख्या चौवन के प्रसंग में होती है- जब जाम्भोजी अपनी ईश्वरीय शक्ति से लोहापांगल के लोहे के कच्छ को खंडित कर देते हैं, तो लोहापांगल अपने सिर की जटा उतरवाकर, पाहळ ग्रहण करके बिश्नोई पंथ में सम्मिलित हो जाता है। जाम्भोजी उसका नाम रूपा रखकर उसे परोपकारी कार्यों में लगा देते हैं।[32] गुरु जाम्भोजी ने सबदवाणी में भी अपने अहं ब्रह्मास्मि रूप में अपने सर्वशक्तिमान गुण का परिचय देते हुए कहा भी है।

मतूंत का दा उगवंतो भाण ठभाउं।[33]
च्यारि चक्र नव दीप थरहरै, जे आपौ परगासां।[34]

सबद संख्या अट्ठासी के प्रसंग में गुरु जाम्भोजी ने अपनी भगवद् शक्ति से जैसलमेर के राव जैतसी के कुष्ट रोग को समाप्त किया था।[35] और राव जैतसी ने अपने यहां जैतसमन्द के उद्यापन पर गुरु जाम्भोजी को आमन्त्रित किया था। जाम्भोजी के जैसलमेर पहुँचने पर रावत जैतसी ने जीव-दया से सम्बन्धित कई बातें

मानने का वचन उन्हें दिया था और जाम्भोजी ने एक सबद (88) के द्वारा जैतसी को उपदेश भी दिया था।[36] वील्होजी की 'कथा जैसलमेर की'[37] के साथ-साथ पंथ के अन्य कई कवियों ने जैतसी का उल्लेख अपने काव्य में किया है।[38]

सबद संख्या सतानवे के प्रसंग में देवी का पुजारी ऊदो जब देवी से मोक्ष मांगता है और देवी अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई कहती है:-

देवी कहै सुणियो सभी, मुक्त नहीं मो हाथ।[39]

इस पर ऊदो बिश्नोइयों की जमात के साथ समराथळ पहुँच जाता है। वहां गुरु जाम्भोजी ऊदो को एक सबद (97) के द्वारा उपदेश देते हैं और ऊदो के द्वारा लायी गई खळ की भेंट को नारियल की गिरी बना देते हैं। वहीं जाम्भोजी ऊदो को ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे ऊदो पंथ के श्रेष्ठ कवि बन जाते हैं। यहाँ भी गुरु जाम्भोजी का भगवत् रूप प्रकट होता है, जिसमें ईश्वर का सर्व शक्तिमान गुण दिखाई देता है।[40] ऊदो के द्वारा दी गई भेंट का वर्णन किसी अज्ञात कवि ने अपनी एक साखी में भी किया है।

कंचन पालट करै कथिरो, खळ नारे लो गिरियो।[41]

एक अन्य सबद (116) के प्रसंग में साधुओं की मंडली जाम्भोजी के विष्णु होने या न होने की परीक्षा के लिए जब हिम्मटसर गाँव में पहुँचती है तो जाम्भोजी उनके पास पहुँचकर अपनी ईश्वरीय शक्ति के द्वारा धूनी, कमण्डलों, पावड़ी एवं जल आदि में जै अलख पुरुष-जै अलख पुरुष' का उच्चारण प्रारम्भ करवा देते हैं:-

धूनी पावड़ी पवन पाणी, सब ही कियो अलेख।[42]

इस पर भी जब साधुओं को विश्वास नहीं होता है तो जाम्भोजी उन्हें एक सबद (116) के द्वारा समझाते हैं और उन्हें पाहळ देकर बिश्नोई पंथ में सम्मिलित करते हैं।[43] भगवद् रूप में गुरु जाम्भोजी में इतनी अधिक शक्ति है कि वे चुटकी में ही एक न बोलने वाले बालक को ठीक कर देते हैं और एक सबद (118) के द्वारा स्वयं के संसार में अवतरित होने के उद्देश्य को बालक के सामने स्पष्ट करते हैं।[44]

गुरु जाम्भोजी चमत्कार प्रदर्शन के पक्ष में नहीं थे पर कुछ लोगों की हठधर्मिता, जिद्दी स्वभाव, पाखंडी प्रवृत्ति एवं समाज को आडम्बर व तंत्र-मंत्र के बन्धन से मुक्त कराने के लिए वे अपनी ईश्वरीय शक्ति के द्वारा चमत्कार प्रदर्शित करके लोगों को जीवन के सच्चे रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते रहे हैं। सबद संख्या 67 के प्रसंग में जाम्भोजी जोधपुर नरेश राव जोधा के पुत्र बीदा के पास द्रोणपुर पहुँचकर उसकी कैद से अपने भक्त मोती को छुड़वाते हैं और राव बीदा की शर्त के अनुसार उसे समराथळ बुलाकर उसे आक के पौधों पर आम, नीम के पेड़ों पर नारियल, पानी का दूध एवं समराथळ के चारों

ओर नदी बहाने के चमत्कार दिखाते हैं। बीदा के पूर्ण विश्वास के लिए ही जाम्भोजी बीदा एवं उसके आदमियों को एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर यज्ञ एवं उपदेश करते हुए दर्शन देते हैं। कहते हैं कि बाद में बीदा ने जाम्भोजी स्त्री है या पुरुष, इसको जानने के लिए अपने आदमी से उनके शरीर पर पड़े वस्त्र को भी खींचवाया था पर इसमें बीदा को सफलता नहीं मिली थी। इसी बात पर बीदा को जाम्भोजी से क्षमा याचना करनी पड़ी थी। बाद में जाम्भोजी ने उसे 'सुक्ल हंस' सबद (67) के द्वारा उपदेश और अपने भगवद् रूप का परिचय दिया था। ईश्वरीय चमत्कार की यही स्थिति सबद संख्या 106 के प्रसंग में देखी जा सकती है, जहां गुरु जाम्भोजी शेख सद्दो को गो-हत्या बंद करवाने के उद्देश्य से मांस के देगो को गर्म होने से रोक देते हैं और सबको चमत्कृत कर देते हैं। काजी के पूछने पर जाम्भोजी अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं और शेख सद्दो से गो-हत्या बंद करवाने का संकल्प करवाते हैं।

शेख सद्दू परचाइयो, गऊ छुटाई देव।[45]

ऐसा ही चमत्कार हमें सबद संख्या 74 के प्रसंग में दिखाई देता है। एक बार किसी गाँव से खीर ले जाते हुए किसी साधु के हाथ से जाम्भोजी अदृश्य रूप से खीर के पात्र को गिरा देते हैं और बाद में उस साधु द्वारा समराथळ पर शंका प्रकट करने पर जाम्भोजी उसे सारी स्थिति स्पष्ट करते हैं।[46] वे साधु को रूखा-सूखा भोजन एवं साधारण पहनावा पहनने का उपदेश देते हैं।

खारा कड़वा भोजन भिखिले, भिछिया देखो खीरूं।
धर आखरड़ी साथर सोवंण ओढंण ऊंना चीरूं।।[47]

भगवद् रूप में गुरु जाम्भोजी ने अपने कई सबदो में त्रिकाल ज्ञाता की विशेषता का उल्लेख किया है, जैसे-

म्हे तदि पंणि हुंता, अब पंणि अछां।
वळि वळि हुयस्यां, कहि कदि कदि का कहूं विचारूं।[48]
नव अवतार न्यंमो नारायण, ते पंणि रूप हमारा थींयौ।[49]
म्हां देखतां देव दांणों सुर नर खींणां।[50]

जाम्भोजी के भगवद् रूप की यही विशेषता हमें सबद संख्या 63 के प्रसंग में दिखाई देती है, जहां वे चित्तौड़ की झाली रानी के पूर्व जन्म की बात बताते हैं और उन्हीं की कृपा से झाली रानी को भी अपने तथा राणा सांगा का पूर्व जन्म स्मरण हो आता है, जिसे वह राणा सांगा को बतलाती है:-

तू मारीच रामजी स्वर्गे, जम्भेश्वर खुद करतार।
मैं सीता कवल जो चूकी, तो आई अवतार।।[51]

सबद संख्या 110 के प्रसंग में जाम्भोळाव की खुदाई के समय जाम्भोजी जमाती लोगों के पूछने पर एक गधी के पूर्व जन्म की बात बताते हुए कहते हैं कि यह गधी पूर्व जन्म में मथुरा नगर की रानी थी।

मथुरा नगर की राणी होती, होती पाटम दे राणी।[52]

सबदवाणी के विभिन्न सबदों के प्रसंगों में गुरु जाम्भोजी का जो भगवद् रूप प्रकट हुआ है, उससे निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

1. लोगों के भौतिक जीवन को सुखी बनाकर मानव जीवन को सार्थक करना।
2. लोगों को मोक्ष प्राप्ति की ओर प्रेरित करना।
3. समाज में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, मूर्ति-पूजा एवं आडम्बरों को समाप्त करना।
4. लोगों को अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
5. अपने अनुयायियों एवं भक्तों में स्वयं के विष्णु रूप में विश्वास पैदा करना और उनकी श्रद्धा में वृद्धि करना।
6. जीव-हिंसा को समाप्त करना।

संदर्भ सूची-

1. क-वील्होजी-कथा औतारपात-25 से 28
   ख- सुरजनजी-कथा औतार की-19 से 21
   ग- साहबरामजी-जम्भसार-चौथा प्रकरण-पृ-56
2. क-वील्होजी-कथा औतारपात-38
   ख- कैसोजीकृत सवैया
   ग-साहबराम-जम्भसार-पांचवां प्रकरण-पृ-83
3. साहबरामजी-जम्भसार-चौथा प्रकरण-पृ-64
4. स्वामी ब्रह्मानंद-श्री जम्भदेव चरित्र भानु-पृ.
5. वील्होजी-कथा औतारपात-54
6. वील्होजी-कथा औतारपात-39
7. कैसोजी-कथा बाललीला -37 से 41
8. क-केसौजी-कथा बाललीला-50,54 से 55
   ख- साहबरामजी-जम्भसार-छठा प्रकरण-पृ.-110
9. क.- साहबरामजी-जम्भसार-छठा प्रकरण-पृ.-112
   ख-केसोजी-कथा बाललीला-57,58,60
   ग- ऊदोजी नैण-आरती-2
   घ- सुरजनजी-कथा परसिध-21
   ड़- परमानंद कृत साखी

10. क- वैद जोग वैराग खोज दीठा नर निगंम।
सन्यासी दरवेस सेख सोफी नर जंगंम।
बिथ वियापी मोहि आज आसा धरि आयो।
पांणी अन्न अहार पेटि सुख परचो पायो।
पांचवो वेद सांभलि सबद, च्यारि वेद हूंता चलू।
केवळी झंभ सावळ कावळ, आज साच पायो अलू।। अल्लू जी कृत
ख- खेह न खोज न छांह न छोति विराजे जंभ निरमल जोति।
पढ़े मुख पंचवो वेद पुराण, झणके जोजन झीणी बांण।। गोकुल जी कृत
11. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी-(सन 1976) 21-8 से 12 पृ.-50
12. वही 82-5 पृ.-169
13. वही 90-13,14 पृ.-191
14. स्वामी सच्चिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता (सन् 1989) 5,6 पृ.-46
15. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी-1-21, 22 पृ.-2
16. यजुर्वेद -40/8
17. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी 17-1,2 पृ.38
18. वही 17-6 पृ.38
19. स्वामी सच्चिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता पृ.-135
20. डा. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी- 5-7,8
21. कृष्णानंद आचार्य-शब्दवाणी-जम्भसागर सबद संख्या-23,29, पृ.73,87
22. वही पृ.-73
23. वही पृ.-73 सबद सं. 23
24. स्वामी सच्चिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता - पृ.-126
25. वही पृ.- 124
26. वही पृ.-293
27. वही पृ.-312 से 316
28. वही पृ.-324
29. डा. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य (सन् 1970) पृ.-208
30. वही जाम्भोजी की सबदवाणी-सबद सं. 33 से 53
31. वही सबद सं 42 से 53
32. स्वामी भागीरथदास आचार्य-बिश्नोई धर्मप्रकाश (सन् 2000)पृ.-146-147
33. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी- 42-2

34. वही पृ. 73-2
35. स्वामी सचिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता - पृ.-309
36. वही सबद सं. 88
37. सम्पादक कृष्णानंद आचार्य-पोथो ग्रंथ ज्ञान - पृ.-38
38. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य-पृ.-249
39. स्वामी सचिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता पृ.-328
40. वही पृ.-327,328
41. कृष्णानंद आचार्य-साखी भावार्थ प्रकाश-(सन् 1993) पृ.-2
42. स्वामी भागीरथ दास आचार्य-बिश्नोई धर्मप्रकाश-पृ.-296
43. स्वामी सचिदानंद योगिराज-श्री जम्भगीता पृ.-370 से 372
44. वही पृ.-273
45. वही पृ.-352
46. वही पृ.-280-281
47. डा. हीरालाल माहेश्वरी-जाम्भोजी की सबदवाणी 74-1,2, पृ.-160
48. वही 3-27 से 29
49. वही 4-3,4 पृ. 9-10
50. वही 23-6 पृ. 53
51. स्वामी सचिदानंद योगिराज - श्री जम्भगीता-पृ.-224
52. वही पृ.- 360

1/73, प्रोफेसर कॉलोनी,
हनुमानगढ़ टाउन, राज.
9414875029

सबदवाणी में परिलक्षित गुरु जाम्भोजी का भगवद् रुप

-डा0 श्रीमती छाया रानी

श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान ने बारह करोड़ जीवों के उद्धार के लिये धरती पर अवतार लिया, ऐसा हम सभी जानते हैं। इसलिये जब हम सब यह जानते हैं तब उसी क्षण इस बात को भी स्वीकार कर लेते हैं कि अवतार ईश्वर ही लेते हैं सामान्य प्राणी नहीं। श्री विष्णु भगवान ने ही श्री जम्भेश्वर भगवान के रुप में धरती पर अवतार लिया। जिस प्रकार भगवान श्री कृष्ण के उपदेश गीता के रुप में संग्रहीत हैं उसी प्रकार श्री जम्भेश्वर भगवान के उपदेश सबदवाणी के रुप में संग्रहीत हैं। अब हम श्री जम्भेश्वर भगवान के भगवद् रुप पर विचार करेगें कि उनके ऐसे कौन से कार्य हैं जो उनके भगवद रुप को दर्शातें हैं।

भगवद् रुप के संदर्भ में सबद संख्या तीन में श्री जम्भेश्वर भगवान ने बताया (नान्ही मोटी जीया जूणी, एति सांस फूरंतै सारुं) अर्थात- सृष्टि के छोटे तथा बड़े जीवों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के बीच का समय एक श्वांस का ही होता हैं। जितना समय श्वांस के आने तथा जाने में लगता हैं। उतने ही समय में परमात्मा सम्पूर्ण जीवों का सृजन कर देते हैं। जम्भेश्वर जी कहते हैं कि वह सृजनकर्ता मैं ही हूँ।

आगे सबद सं0 4 में श्री जम्भेश्वर भगवान कहते हैं (म्हे तदपण होता अब पण आछै, बल-बल होयसां कह कद कद का करुं विचारुं) अर्थात् इस सृष्टि का विस्तार जब कुछ भी नहीं था मैं तब की स्थिति को भी बता सकता हूँ कि उस समय क्या स्थिति थी? इस समय मैं विद्यमान हूँ और आगे भी रहूंगा । हे उधरण! कहों कब-कब का विचार कहूँ। अर्थात् मेरी आयु किस-किस समय की पूछते हो? मैं अपनी आयु कितने वर्षो की बतलाऊँ। क्योंकि भगवान की आयु की कोई सीमा नहीं हैं।

सबद सं0 5 में श्री जाम्भोजी ने कहा (नव अवतार नमो नारायण, तेपण रुप हमारा थीयूँ) भगवान विष्णु के नौ अवतार हुए हैं ये नौ अवतार ही नमन करने योग्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जन्मा जीव उपास्य नही हैं। ये मेरे ही रुप हैं देशकाल, शरीर से भिन्न होते हुए भी तत्वरुप से तो मैं और ये नौ अवतार एक ही हैं। यह श्री जाम्भोजी के भगवद् रुप को ही परिलक्षित करता है। जाम्भोजी के विषय में यह भी कहा जाता है कि उन्होने बीदा जी को सन्मार्ग पर लाने के लिये आक के आम लगाये थे तथा रोटू गॉव में एक रात में हजारो खेजड़ियां लगाकर सभी को

विशाल अर्थात् पूरे पेड़ बना दिया था। उदे जी भक्त की खल को नारियल बना दिया था। ये सब भगवान के द्वारा ही सम्भव है किसी सामान्य मनुष्य की करणी नहीं हैं।

श्री जम्भेश्वर भगवान ने शब्द संख्या सत्रह में कहा (अई अमाणो तत्व समाणो) अर्थात् यह सारा संसार मेरे तत्व स्वरुप में समाया हुआ है। (अइया लो म्हे पुरुष न लेणा नारी) इस प्रकार विचार दृष्टि से मैं न पुरुष हूँ, न स्त्री। क्योकि स्त्री पुरुष का भेद पंच भौतिक शरीर में होता हैं आत्मा में नही। श्री जम्भेश्वर भगवान नित्य निरन्तर आत्म ज्ञान की स्थिति में रहते है।

सबद संख्या 19 में गुरु जाम्भोजी ने कहा (ओ३म् रुप अरुप रमू पिण्डे ब्रहमण्डे घट-घट अघट रहायों) अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जो वस्तु दिखाई देती है उसमें, प्रत्येक घट में और अघट में अर्थात प्राणी और अप्राणी इन सबमें मै ही व्याप्त हूँ। (अनन्त जुगां मैं अमर भणीजूं, न मेरे पिता न मायों) मैं शुद्ध आत्म स्वरुप अनन्त युगों से अमर हूँ। मुझ शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरुप आत्मा के कोई माता पिता नही हैं (ना मेरे माया न छाया रुप न रेखा बाहर-भीतर अगम अलेखा) माया और अविद्या मेरे समीप अपना प्रभाव नहीं जमा सकती तथा मैं नित्यानन्द स्वरुप हूँ इसलिये मैं रुप रेखा आदि बाहरी चिन्हों में नही आ सकता। मै ब्रह्माण्ड में बाहर तथा भीतर सभी में व्याप्त हूँ। यह श्री जम्भेश्वर जी के भगवद् रुप का ही परिचायक हैं।

भगवान श्री जम्भेश्वर जी ने शब्द संख्या 29 में कहा है (पोह का धुर पहुँचायो) अर्थात् 29 नियमों पर चलने वाले को परमगति देता हूँ अथवा मैं जम्भेश्वर उसे सारुप मुक्ति देता हूँ। (मोरे धरती ध्यान वनस्पति बासो) मेरे ध्यान समाधि के लिये रेतीली भूमि ही पवित्र आसन हैं और मैं कंकेहेड़ी पेड़ के नीचे निवास करता हूँ (ओजू मण्डल छायो) आकाश ही एक प्रकार से मेरा भवन है (गींदू मेर पगाणै पर्वत मनसा सोड़ तुलायो) सुमेरु पर्वत सिराने का गेन्दुवा है और पैरों का गेन्दुवा विन्ध्याचल पर्वत और शीत निवारण के लिए मनसा रुपी सोड़ है (ऐ जुग चार छतीसां और छतीसां, आश्राा बहै अंधारी) यह जो चार युगों की चौकडी होती है ऐसे छत्तीस चौकड़ी युग तथा इससे पहले के छत्तीस चौकड़ी और परिवर्तनशील संसार के आदि अन्त में जो अन्धकार होता है। ये सब काल परमात्मा अर्थात् मेरी शाक्ति से बहते है लेकिन फिर भी मैं अपरिवर्तनशील हूँ अर्थात् जैसे पहले था वैसे ही अब हूँ और भविष्य में भी ऐसा ही रहूँगा। (मतां तो डीलै डीलै क्रोड़ रचायों) यदि मेरी इच्छा हो तो एक ही शरीर से करोड़ो रुप धारण कर सकता हूँ (म्हे ऊँचे मण्डल का रायों) मै ही बैकुण्ठ का स्वामी हूँ (म्हे खोजी थापण हो जी नाहीं, लह-लह खेलत डायो) वास्तव में मैं अजन्मा हूँ फिर भी सद्वृति वाले संतो व भक्तों की रक्षा के लिये तथा तमोगुण वृत्ति वाले व दुराचारी मानवों का दमन करने के लिये समय-समय पर अवतार धारण करता हूँ।

इलोल अर्थात् उनतीसवां शब्द सुनने के बाद जब महात्मा रणधीर जी ने देव जी से पूछा कि हम लोग नित्य प्रति समराथल पर आपका दर्शन करते हैं तब आप समुद्र पार के देशों में कब और कौन से वर्ष में गये थे? मैं उन दूसरे देशों में निवास करने वाले गुरु भाइयों को देखना चाहता हूँ। तब श्री जम्भेश्वर भगवान ने रणधीर जी को दिव्य दृष्टि के द्वारा सभी देशों के बिश्नोई बन्धुओ से मिलाया जहाँ उन्होंने सूर्य की किरणों से मनुष्यों को भोजन बनाते देखा तथा अन्य स्थान पर वृक्षों को आपस में बातचीत करते देखा यह सब श्री जम्भेश्वर भगवान के भगवद् रुप की अनुभूति कराता हैं।

शब्द सं0 33 में श्री जम्भेश्वर भगवान ने कहा (रतन काया ले पार पहुँचे तो आवागवण निवारूं) रे रामा। उत्तम मानव शरीर को पाकर अब तुम मेरे सत्योपदेश रुपी अमृत का पान करोगे तो मैं तुम्हारे को जन्म-मरण रुपी चक्र से निवृत्त कर दूँगा।

शब्द सं0 40 में श्री जाम्भोजी ने लोहा पांगल से कहा (ओ३म् सप्त पताले तिहूँ त्रिलोके, चवदा भवने गगन गहीरे। बाहर भीतर सर्व निरन्तर) अर्थात् मैं सच्चिदानन्द स्वरुप सप्त पाताल मे तीनों लोकों में, चोदह भुवनों में रुपरहित गम्भीर आकाश में सम्पूर्ण विश्व के बाहर-भीतर सर्वदा निरन्तर एक रस व्यापक हूँ। (जहाँ चीन्हो तहाँ सोई) जो अनन्य भक्त मेरे को जहाँ पर सच्चे हृदय से याद करता हैं उसको मैं उसी भावना से वहीं प्राप्त हो जाता हूँ।

शब्द सं0- 50 में श्री जम्भेश्वर भगवान लक्ष्मण नाथ से कहते है (जिहि के नादे वेदे शीले शब्दे। लक्षणे अंत न पारु) जिस परमात्मा के सगुण अवतार के शीलमय शब्द वेदमंत्रो के समान पुण्य कारक तथा अनन्त शुभ लक्षणों वाले है। (अंजन माहिं निंरजन आछैं, सो गुरु लक्ष्मण कवांरु) माया और अविद्या उपाधि से रहित ब्रह्म, माया उपाधि को धारण कर श्री जम्भेश्वर भगवान के रुप में मै इस समराथल पर विराजमान हूँ इसलिये हे लक्ष्मण नाथ। अन्य तुच्छ गुरुओं का आश्रय छोड़कर मुझ परम गुरु का आश्रय पकडों जिससें तुम्हारा कल्याण हो।

इसी प्रकार शब्द सं0 51 में भी श्री जम्भेश्वर भगवान ने लक्ष्मणनाथ को पुनः सम्बोधित करके बताया (ओ३म सप्त पताले भुंय अंतर अंतर राखिलों) हे लक्ष्मणनाथ। सात पाताल, सात ऊपर के लोक तथा पृथ्वी इन सबकी रचना तथा इस सबकी पृथक-पृथक व्यवहारिक सत्ता को मैनें ही बनाया हैं (म्हे अटला अटलूं) इन सबको मै ंही बनाने वाला हूँ लेकिन फिर भी नित्य ज्ञान स्वरुप होने के कारण निर्विकार,अचल तथा सब इच्छाओं से रहित हूँ। (अलाह अलेख अडाल अयोनी शंभू) मैं वास्तव में क्रिया रहित, चिन्ह रहित, हाथ पैर आदि अवयव रहित तथा जन्म रहित हूँ। लेकिन फिर भी (पवन अधारी पिण्ड जलूं) पवन जल आदि पंचतत्व तथा प्राणियों के शरीर मेरे आश्रय रहते हैं। (काया भीतर माया आछै) सांसारिक जीवों की देह में जो चैतन्य शक्ति है वह मेरी माया हैं। अर्थात मेरा ही सनातन अंश हैं।

शब्द सं0 67 में श्री जम्भेश्वर भगवान कहते हैं (श्री गढ़ आल मोटपुर पाटण भुंय नागोरी) श्री विष्णु भगवान जो समस्त श्रियों के स्वामी है तथा जिनकी भंक्ति सात्विक प्रधान हैं ऐसा मैं विष्णु भगवान ही जम्भेश्वर भगवान के रुप में जोधपुर राज्य के नागौर परगने पीपासर गॉव में अवतार ग्रहण कर प्रकट हुआ हूँ। (काहिको मैं खैकाल कीयो) मैने राम कृष्ण आदि अवतार धारण कर रावण, कंस आदि दुष्ट राक्षसों का नाश किया (काही सुरग मुरादे देसां) मैंने उत्तम सात्विक भक्तों को स्वर्ग में स्थान दिया और आगे भी दूंगा। (काही दौरें दीयूं) मैं ही काल रुप होकर दुष्ट अधर्मगामी पुरुषों को नरक की यातना देता हूँ तथा मैंने पूर्व काल में भी दुष्टों को नरक में डाला। (होम करीलो दिन ठावीलो सहस रचीलो) हे बीदा! तूने हमारे अनेक रुप एक ही दिन अनेक स्थानों पर देखने के लिये दिन स्थापित किया था। उस दिन हमने हजारों रुप धारण कर हजारों स्थानों पर हवन किया था। (अई अमाणों, तत्व समाणो) भगवान विष्णु सर्वव्यापक हैं इस बात को जो साधक जान लेता है वही आत्मतत्व का अनुभव कर मेरे में लीन हो जाता हैं (दयारुप म्हे आप बखाणां, संहार रुप म्हे आप हती) मैं ही सत्वगुण धारण कर समस्त ब्रह्माण्ड का पालन करता हूँ तथा समयानुसार तमोगुण धारण कर संसार का संहार भी मैं ही करता हूँ।

शब्द सं0 94 में श्री जम्भेश्वर भगवान ने कहा (जद मैं रहयो निरारंभ होकर, उत्पत्ति धंधुकारी) अर्थात् जिस समय सृष्टि के आदि में धूम के अतिरिक्त भौतिक पदार्थ कुछ भी नही थें उस समय भी मै ही ब्रह्मरुप से बिना किसी आश्रय के विद्यमान था। पुनः उसी स्थिति से मैंने समय आने पर सृष्टि की उत्पत्ति की (दीन्ही करामात केतीबारी) मैंने धर्म की मर्यादा के लिये विभिन्न अवतार धारण कर बहुत अद्भुत कार्य किये।

शब्द संख्या 119 में श्री जम्भेश्वर भगवान ने सब कुछ पुनः पूरी तरह से स्पष्ट कर अपने भगवद् रुप को बताया (ओ३म् विष्णु विष्णु तू भण रे प्राणी, पैके लाख उपाजूं। रतन काया बैकुण्ठे बासों, तेरा जरा-मरण भय भाजूं)

इस प्रकार ओ३म् विष्णु का जप करने से जब व्यक्ति को वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी और वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। तब व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति भगवान के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये श्री जम्भेश्वर भगवान, भगवान विष्णु के अवतार हैं और उनमे हमें भगवद् रुप के दर्शन होते हैं। इसमें तनिक भी संशय नही है।

प्रवक्ता हिन्दी विभाग
दयानन्द आर्य कन्या डिग्री कॉलेज
मुरादाबाद उ0प्र0
दूरभाष - 0591-2451400

सबदवाणी परिलक्षित गुरु जाम्भोजी की भगवद्ता

- आर.के. बिश्नोई

कुछ लोग गुरु जाम्भोजी को गुरु, संत या महापुरुष मानते हैं, लेकिन सबदवाणी के अध्ययन व मनन से यह साबित हो जाता है कि गुरु जाम्भोजी का स्वरूप भगवद् ही था।

सतयुग में भक्त प्रह्लाद को दीये वचन को पूरा करने के लिए व कलयुग में धर्म विमुख व दुखी मानव को सहज मार्ग 'जीने की युक्ति व मरणोप्रान्त मोक्ष' दिलाने व वैष्णव धर्म की पुन: स्थापना के लिए व जीवों, पेड़ों व पर्यावरण की रक्षा के लिये ही स्वयं विष्णु जाम्भोजी के रूप में इस धरती पर अवतिरत हुए व बिश्नोई पंथ चलाया जो सच्चे वैदिक, सनातन, वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित मानवधर्म है।

सबदवाणी में कई जगह बताया है कि मैं शेष 12 करोड़ जीवों के लिए ही आया हूं। उन्होंने विष्णु के पूर्व के 9 अवतारों के रूप में भी आने के कारण व स्वरूप बताये। वो सभी अवतार पाप व दुष्टों के नाश व भक्तों के कल्याण व उद्धार के लिए ही थं।

चूंकि लोग किसी स्वरूप के बिना ईश्वर का विश्वास नहीं करते इसलिए उन्होंने अपना भागवद् रूप अपने श्रीमुख से कहा भी व लोगों को दिखाया भी।

सबदवाणी में उनके भागवद् रूप का दर्शन अनेकों जगह पर होता है व उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर उनके भागवत् स्वरूप का दर्शन करके, मोक्ष प्राप्ति की जा सकती है।

इस छोटे से समय अंतराल में उनका सम्पूर्ण भगवत् स्वरूप बता पाना सम्भव नहीं फिर भी मैं कोशिश करता हूं कि उनके भगवत् स्वरूप की कुछ झलकियां प्रस्तुत कर सकूं।

सबद 1 में उन्होंने स्वयं गु गुरु स्वरूप व कल्याणकारी भागवत रूप का वर्णन किया जैसे कि स्वयं संतोषी लेकिन दूसरों का भरण पोषण करने वाला व दु:खों को हरने वाला।

सबद 2 में जाम्भोजी ने अपना भागवत् स्वरूप बताया कि मैं माया व छाया से परे हूं, मेरे कोई शरीर, माता-पिता नहीं है। मैं दु:ख, क्रोध, शाप, सदन से परे हूं। मैं मूलत: निर्गुण निराकार हूं और सगुण रूप में भी प्रगट होता हूं। मैं तीनों लोकों में व्याप्त, अनादि, स्वयंभू हूं। मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है। दया धर्म का पालन करने वाले, निर्मल हृदय व मोह माया से रहित भक्त ही मेरे वृहद् स्वरूप को

पहचान सकते हैं।

सबद 3 में गुरुजी कहते हैं कि मैं शरीरधर्मिता से परे हूं। मुझे भूख, प्यास, भोग की जरूरत नहीं। मैं अपने आधार पर स्थित हूं, छोटी मोटी जितनी भी योनियां हैं उनकी देखभाल मैं क्षणभर में ही कर लेता हूं।

सबद 4 में जाम्भोजी बताते हैं कि जब सृष्टि में कुछ भी नहीं होता था तब भी मैं वहां था। मैं पिछले छत्तीस युगों व उससे भी पहले छत्तीस युगों में मौजूद था। अब भी हूं व भविष्य में भी मौजूद रहूंगा।

सबद 5 में जाम्भोजी कहते हैं कि लोकहित में हुए 9 अवतार मेरे ही थे, मेरी वाणी ब्रह्मवाणी है।

सबद 6 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं प्रत्येक पिण्ड व ब्रह्मण्ड में ज्योति/आत्मा स्वरूप में व्याप्त हूं। मैं अलाह, अलेख, अडाल, अजोनि, स्वम्भू हूं। मैंने किसी से भी शिक्षा-दीक्षा नहीं ली व धर्मग्रन्थ नहीं पढ़े हैं। फिर भी मैंने निरति व सुरति सबको जान लिया है।

सबद 14 में जाम्भोजी कहते हैं कि मेरा उपदेश वेद है, मेरी वाणी में परमतत्त्व का रहस्य छुपा है। इसे खोजो। परमेश्वर की कृपा से हर कार्य सम्भव है।

सबद 15 में जाम्भोजी ने जीवन के मूल कर्त्तव्य/उद्देश्य को भगवत कृपा से सम्भव बताया है।

सबद 17 में जाम्भोजी कहते हैं कि मेरी वाणी सहज, सुन्दर व विवेकपूर्ण है।

सबद 19 में जाम्भोजी ने कहा है कि मैं ही साकार व निराकार रूप में पिंड व ब्रह्माण्ड में रमा हूआ हूं। मैं सनातन ब्रह्म व स्वम्भू हूं। मैं माया व छाया से परे हूं, अगम्य व अवर्णनीय हूं। जिन्होंने इस परम तत्त्व को पहचाना है उन्होंने ही इसे पाया है।

सबद 26 में जाम्भोजी कहते हैं कि इस कलयुग में चेतो, तुम्हें सदगुरु प्राप्त हुआ है जिसने भ्रांतियां दूर करके सत्य पथ बताया है। मैं वेदों के गूढ़ ज्ञान का बखान करता हूं। मेरे सबद वेदों के सार हैं।

सबद 28 में जाम्भोजी उस परमतत्व की पहचान बताते हुए कहते हैं कि वह अगम्य, असीम, अनंत है जिसका कोई रूप व चिन्ह नहीं है।

सबद 29 में जाम्भोजी कहते हैं कि गुरु के सबद ज्ञान से ही लोगों को पूर्ण बोध हुआ है। इस संसार से भी परे चारों और ब्रह्माण्ड है जिसका कोई आदि या अंत नहीं है। मैं भगवी टोपी धारण करके साधू वेश में यहां समराथल पर आया हूं। मेरा यहां आने का कारण उन बचे हुए 12 करोड़ जीवों का उद्धार करके पहले वाले

21 करोड़ जीवों से मिलाप करवाना है। मैंने निरंकुश लोगों को धर्माचरण की ओर प्रेरित किया है। कुपथगामियों को सुपथ पर लाया हूं।

पूरी धरती मेरे ध्यान में है व वनस्पति में मेरा वास है। मैं सर्वत्र छाया हुआ हूं। ये चारों युग व ऐसे ही छत्तीस युग विलीन हो गए लेकिन मैं स्थिर रहा। मैंने ही रावण को मारकर सीता को छुड़ाया था।

मैं पूर्णतया निष्पक्ष और पूर्ण योगी हूं व बैकुंठ का स्वामी हूं। मेरे पास जो जिस भावना से आता है। मैं उसे वैसा ही फल देता हूं। सच्चे लोगों से सत्यभाव रखता हूं। मैं पूर्ण योगी व अमृत रूप हूं। आशा, तृष्णा, निंद्रा और भूख मेरे वश में है।

सबद 40 में जाम्भोजी कहते हैं कि यह परमतम्व सातों पातालों, तीनों लोकों, चौदह भवनों, गहन आकश में सर्वत्र विद्यमान है। सतगुरू के रूप में मैं यहां आया हूं, भ्रांतियां दूर करके सच्चा मार्ग बताया है।

सबद 58 में भी जाम्भोजी यही कहते हैं कि मैं यहां 12 करोड़ जीवों के उद्धार के लिए आया हूं।

सबद 67 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैंने नागौर की इस भूमि में जहां पानी बहुत गहरे में मिलता है अवतार लिया है। मैं यहां ठग लोगों को ठगने, दबंगों को दबाने, नाकाबु लोगों को काबू करने, अनम्र लोगों को नम्र करने के लिये ही आया हूं।

मैंने ही राम रूप होकर रावण का वध किया, मैंने ही समुन्द्र मंथन करवाया था। मैंने ही कृष्ण का रूप धारकर कालिया नाग का नाश किया। मैं स्वम्भू हूं। मेरा रहस्य कोई नहीं जानता। मैंने ही अवतार धारण करके दानवों व बुराई का नाश किया व भक्तों व धर्म की रक्षा की। मैं ही दयालु होकर जीवनदान देता हूं, पालन पोषण व रक्षा करता हूं।

सबद 85 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं पहले ही धर्म स्थापना, दुष्ट दमन, साधु रक्षा, भक्त हित व लोक कल्याण के लिए 9 बार अवतार ले चुका हूं। अब दसवीं बार हाया हूं। मैंने एक स्थान पर बैठे हुए ही नौ खण्डों को जीता है।

सबद 92 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं चारों युगों का योगी सतगुरू जाम्भोजी के रूप में आया हूं। व यह मुक्ति का मार्ग बताया है। मैं कैवल्यज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी व सजह स्नानी हूं।

सबद 94 में वे कहते हैं कि मैं सृष्टि के आरम्भ से ही हूं, मैं अपना व सृष्टि का निर्माता हूं। मैंने ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश की स्थापना की है। मैंने ही 9 अवतार लेकर पाप व दुष्टों को समाप्त कर भक्तों की रक्षा व धर्म स्थापना की। अब

कलयुग में मैंने यह पंथ चलाकर कल्याणमयी सत्य मार्ग दिखलाया है।

सबद 96 में फिर कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूं, मैं ही सृष्टि का निर्माता हूं। मेरा उपदेश मानोगे तो आपका उद्धार हो जाएगा।

सबद 97 में वो फिर कहते हैं कि मैं प्रह्लाद से किये वायदे को पूरा करने के लिए 12 करोड़ जीवों के उद्धार के लिए आया हूं।

सबद 105 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं स्वयम्भू हूं, आदिकाल से हूं। तब सूर्य, चन्द्रमा, समुन्द्र, पहाड़, पवन, तारे, धरती, आकाश, तीनों लोक इत्यादि कुछ भी नहीं थे।

सबद 115 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं जीवात्मा रूप में हरेक के हृदय में विराजमान हूं। मैं अनेकों रूपों में सत्रत्र विद्यमान हूं जैसे कि नदियों में नीर, सागर में रत्न/मोती व पवन रूप में तो सर्वत्र राम रहा हूं। इस परमतत्व की पहचान व चिंतन का आनन्दित होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

सबद 118 में जाम्भोजी कहते हैं कि मैं बैकुंठ में रहने वाला स्वम्भू हूं व प्रह्लाद को दिए वचन की वजह से 12 करोड़ जीवों के उद्धार के लिए ही यहां आया हूं।

इससे यह साबित हो जाता है कि गुरु जाम्भोजी का स्वरूप भागवत् ही था। वे स्वयं ईश्वर/विष्णु ही थे।

39/एच 33, सै.-3, रोहिणी दिल्ली-85
फोन : 9899303026
E-mail : bishnoirk@gmail.com
www.bishlnoism.com

समन्वय साधना, भगवद्रूप और गुरु जांभोजी

–डॉ. मनमोहन लटियाल

समन्वय भारतीय संस्कृति की मूल आधारशिला है। भारतीय संस्कृति सदैव प्रगतिशील रही है। आदिकाल से ही विभिन्न जातियों धर्मो और पंथों का समावेश भारत और भारतीय संस्कृति में हुआ है डॉ विश्वम्भरदयाल अवस्थी के अनुसार भारतीय संस्कृति गंगा की एक धारा के समान है जो हिमालय पर्वत से निकलकर गंगासागर तक अनेक नदियों को आत्मसात् कर लेती है किन्तु अपने गुण, रूप और नाम का परित्याग नहीं करती। सभी नदियां गंगा में मिलकर गंगा का ही नाम और रूप ग्रहण कर लेती है ।[1] संस्कृति की यह विशेषता समन्वय के नाम से ही जानी जाती है। भक्ति साहित्य परम्परा में समन्वय की यह विराट भावना वेदों से लेकर भक्तिकाल तक अनवरत रूप से बहती रही है। श्री सी. ई. एम. जोड के अनुसार मानव जाति को भारतीयों ने जो सबसे बड़ी चीज वरदान के रूप में दी है वह यह है कि भारतवासी सदा ही अनेक जातियों के लोगों और अनेक प्रकार के विचारों के बीच समन्वय स्थापित करने को तैयार रहे हैं और सभी प्रकार की विविधताओं के बीच एकता बनाए रखने की उनकी योग्यता और शक्ति अद्वितीय रही है।[2]

जाम्भाणी साहित्य परम्परा का दृष्टिकोण सदैव अत्यन्त व्यापक रहा है जांभाणी साहित्य के प्रवर्तक गुरु जांभोजी से लेकर विभिन्न कालों एवं कवियों से होते हुए वर्तमान साहित्य तक विस्तृत एवं विराट समन्वय की चेष्टा सदैव विद्यमान रही है। स्वयं गुरु जांभोजी ने ज्ञान भक्ति एवं कर्म के बीच समन्वय करने का स्तुत्य प्रयास किया है। गुरु जांभोजी ने निर्गुण एवं सगुण में जबर्दस्त सामंजस्य स्थापित किया है। साथ ही जांभाणी साहित्य में भाव एवं भाषा में समन्वय विभिन्न समुदायों एवं जातियों में समन्वय की इतनी विराट दृष्टि दिखाई देती है जो भक्तिकाव्य में अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति साहित्य में जांभाणी साहित्य इसलिए भी विशिष्ट और महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि यहां समन्वय साधना लोककल्याण एवं प्रकृति चित्रण एवं चेतना से पूरी तरह सम्प्रक्त हो चुकी है। गुरु जांभोजी ने लोक दिखावे हेतु तीर्थाटन एंव भ्रमण करने वालों को चेतावनी देते हुए सभी तीर्थस्थलों का समन्वय मानव हृदय में लाकर कर दिया है–

अड़सठ तीरथ हिरदै भीतर, बाहर लोका चारूं।
नान्ही मोटी जीया जूणी, एती सास फुरंते सारू।[3]

इससे बेहतर समन्वयात्मकता का उदाहरण हो ही नहीं सकता। व्यक्ति स्वयं को पहचाने बिना कहाँ कहाँ भटकता रहता है जबकि सच्ची श्रद्धा से ढूंढा जाए तो इन तीर्थो का दर्शन मानव हृदय में हो जाता है।

जांभाणी साहित्य ने विभिन्न धर्मो का सार एक ही बताया है। गुरु जम्भोजी ने स्वयं धार्मिक समन्वय का प्रयास किया है हिन्दू मुस्लिम सिख आदि सभी धर्मो का जिक्र करते हुए उन्हें बुराईयाँ त्यागकर अच्छाइयाँ ग्रहण करने का उपदेश दिया है जांभाणी साहित्य परम्परा के प्रसिद्ध साहित्यकार परमानन्द जी की पंक्तियाँ–

ओ३म् एक बिसन की माया, इरख सू दोय लखाया।
हिन्दू कहे ब्रह्म एक है, दुतिया नास न कोई।
अलाह अलेख राम रहीमा, यो भी इचरज होई।
मुसलमान कहे रिबील आलमीन, मीसलमीन नही सोई।
खाल्यक खुदाय दोय करि ध्यावै, योह अंदेशो जोई।[4]
क्या हिन्दु क्या मुसलमाना, अरथ खोज्या गति पाव।
परमानन्द दास हरिपुर का, एक मन एक चित ध्याव।[5]

उपर्युक्त दोनों पद समन्वय साधना के सुन्दर उदाहरण है हमें विभिन्न धर्मो के बाहरी आवरण को ना देखकर उनके मर्म को ही पहचानना श्रेयस्कर रहता है।

समन्वय का भाव अनायास अस्तित्व में नहीं आ पाता विभिन्न विचारधाराओं और अवधारणाओं में समायोजन अपेक्षित है। इस समायोजन की प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म और दीर्घकालीन होती है अतः इसमें वही संस्कृति चेता सफल हो पाता है जिसका चिन्तन और व्यक्तित्व उदात्त एवं बहुमुखी हो।[6]

जांभाणी साहित्य परम्परा के प्रणेता गुरु जांभोजी बहुमुखी, महान् दूरदृष्टि एवं उदात्त व्यक्तित्व के धनी थे। जिस युग में जांभोजी का आविर्भाव हुआ वो युग इतिहास, समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ आदि क्षेत्रों में पर्याप्त विषमता और विभेद वाला युग था। समाज जाति प्रथा एवं ऊंच नीच के कारण पथभ्रष्ट हो रहा था। उच्च वर्ग विलासिता में लिप्त था मर्यादाओं को खुले तौर पर भंग किया जा रहा था इस विकट समय में जांभोजी ने मरुस्थल में अवतार लेकर निराशा में डूबे सामान्यजन में पुनः आशा का संचार किया।

जांभाणी साहित्य में निर्गुण एवं सगुण ईश्वर में शानदार समन्वय किया गया है भगवान जम्भेश्वर स्वयं श्री कृष्ण के अवतार होकर निर्गुण रूप में उपदेश देते हैं। वही परवर्ती रचनाकारों में भी निर्गुण एवं सगुण का सुन्दर समन्वय मिलता है।

उदोजी अडिग द्वारा रचित लूर में कृष्ण के सगुण रूप का चित्रण सूरदास और मीरा के निकट जा ठहरता है।

गिरधर गोकल आय, गोपी सनेसो मोकलौ।
मोह दरसण को चाव, प्रेम पियारा कान जी।
गले वेजंती माल, पीतांबर कट काछनी।
हाथ लकुटिया लाल, सांम सलूणा सांवरा।[7]

श्री परमानन्द जी ने भगवान शिव के रूप का भी मनोहारी चित्रण किया है जिससे शैव एवं वैष्णवों में समन्वय का अनूठा उदाहरण हो जाता है–

कंवलास के वासी, सीव संकर हो।
व्रखंम वाहंन सैन्या संग सौभत, जोगण्य बावन बीर।
भसम मुयंगम अंग लिपटाएँ, कांधे बाघम्बर चीर।[8]

प्रस्तुत पद में भगवान शिव के साकार रूप का सुन्दर चित्रण किया है जिन्होंन शरीर पर भस्म लगा रखी है गले में शेषनाग विराजमान है गले में शेषनाग तथा भाल में चन्द्रमा विराजमान है तथा कंधे पर बाघ की खाल का चीर धारण कर रखा है।

सगुण के साथ ही निर्गुण ईश्वर का भी सुन्दर चित्रण जांभाणी साहित्य में देखने को मिलता है। शब्दवाणी में संकलित शब्द 19 में स्वंय गुरु जांभोजी ने स्वीकार किया है–

रूप अरूप रमूं पिण्डे ब्रहाण्डे, घट घट अघट रहायों,
अनन्त जुगांमें अमर भणीजूं, ना मेरे पिता न मायों।
ना मेरे माया न छाया, रूप न रेखा।
बाहर भीतर अगम अलेखा।[9]

जम्भसागर के भावार्थ में स्वामी कृष्णानन्द जी ने स्वीकार किया है कि ''रूपवान अरूपवान प्रत्येक शरीर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मैं ब्रह्म रूप से रमण करता हूं दृष्ट रूप कण कण में तथा अदृष्ट रूप कण कण में सर्वत्र तिल में तेल फूल में सुगन्धी की तरह हर जगह प्रत्येक समय में समाया हुआ हूं। मैं देश तथा काल से भी परे हूँ अनन्त युग बीत जाने पर भी मैं अमर ही रहता हूँ। मेरे माता पिता भी नही है। ना ही मेरा कोई रूप है और ना ही किसी प्रकार की रूप की आकृति है।[10]
विसन छत्तीसी में वील्होजी ने जांभोजी के निराकार रूप का चित्रण किया है।

''ओउंकार आद्य गुरु, निरंजण निराकार।
आकारे जुग जो गयो, आप रह्या निरकार।
आप रह्यो निराकार , साम्यं सुनकर संमापो।

अलख न लखियो जाए, भेद कही विरलै पायो।[11]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''सन्त काव्य का लक्ष्य था सामान्य अशिक्षित जनता में सत्य का निरूपण करना, करनी कथनी में तारतम्य पर बल देना तथा नाम के माधुर्य को जनता तक पहुँचाना। कबीरदास से लेकर सन्त काव्यधारा के अन्तिम कवि तक की काव्य दृष्टि, समाज-दृष्टि और चिन्तन दृष्टि में अद्‌भुद साम्य है।[12] जांभोजी के समकालीन समाज में धार्मिक शांति के साथ-साथ सामाजिक शांति भी भंग हो चुकी थी। जात-पांत एवं ऊंच-नीच का भेदभाव भोली-भाली जनता पर हावी हो चुका था। वर्ग भेद की खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी ऐसे विकट समय में दग्ध और दुखी तथा प्रताड़ित जातियों को एकत्रित कर उन्हे सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार दिया तथा कर्म आधारित समाज व्यवस्था पर बल देकर समन्वय की भावना का परिचय दिया। शब्द 26 के अनुसार-

घणा दिना का बड़ा न कहिबा, बड़ा न लंधिबा पारूं।
उत्तम कुली का उत्तम ना होयबा, कारण किरिया सारूं।[13]
हिन्दु मुसलमान देउ, खुदाय के वंदा।
हम जोगी कीसहूं के न राखे छदा।[14]

लोकदृष्टा गुरु जांभोजी ने सामान्य जन की पीड़ा को पहचाना और अपने काव्य के माध्यम से अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया जिससे जाम्भाणी साहित्य को अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। गुरु जांभोजी ने भाव एंव भाषा का समन्वय किया। जांभोजी ने ना केवल मरुवाणी का प्रयोग किया बल्कि उर्दू, पंजाबी, फारसी, ब्रज, अवधी, खडी बोली बांगरू गुजराती आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग कर अद्‌भुत भाषाई समन्वय का परिचय दिया है। साथ ही विभिन्न धर्मो के शास्त्रों एवं महान ग्रंथों वेदों आदि का वर्णन तथा सार प्रस्तुत कर अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मोरा उपख्यान वेदूं कण तत भेदूं।
शास्त्रे पस्तके लिखणा न जाई।[15]
गीता नाद कविता नाऊं।
रंग फटारस टारूं।[16]
वेद कुराण कुमाया जालूं।[17]

जांभाणी साहित्य में समन्वय साधना के विस्तृत विवेचन के बाद जाम्भाणी साहित्य में चित्रित भग्‌वद् रूप पर चिन्तन करते हैं। जांभोजी के रूप को लेकर विद्वानों में मतभेद नजर आते हैं। कुछ विद्वान गुरु जांभोजी को निर्गुण परम्परा में स्थापित करते हैं तो कुछ विद्वान इन्हें सगुण परम्परा में स्थापित करते हैं। दोनों ही मतों का अध्ययन करने के बाद यह तो निर्विवाद रूप से साबित हो जाता है भगवान विष्णु

स्वयं गुरु जांभोजी के रूप में मरुभूमि में अवतरित हुए थे तथा ग्वाल बालों के साथ लीला करते हुए अपने उपदेश सामान्य जन को दिए थे जो आज शब्दवाणी के रूप में संकलित है। जांभोजी ने अपनी शब्दवाणी में स्वयं स्वीकार किया है।

नरसिंह रूप धर हिरण्यकश्यप मारयो, प्रह्लादो रहियो शरण हमारी।
श्री राम सिर मुकुट बंधायो सीता के अहंकारी।
कन्हड़ होयकर वंशी बजाई, गऊ चराई धरती छेदी।
काली नाथ्यो, असुर मार किया क्षयकारी।[18]

समराथल पर भगवें वेश में स्नेहिल स्वभाव के गुरु जांभोजी के रूप का चित्रण करती शब्दवाणी–

भगवी टोपी थलसिर आयो, हेत मिलाण करीलो।[19]

कवि वील्होजी ने जांभोजी के रूप का चित्रण करते हुए लिखा है–

दुनी वरणउ दस अवतार, जांह हाथ्य खड़ग ले कीयो संघार।
असुर मार किया बलमंग, वासुदेव बल्य जीता जंग।
कोटिरूप धरि धारी काय, जोग रूप आयो जग मांय।[20]

जांभाणी कवि आलम जी ने बड़े ही मनोरम रूप में गुरु जांभोजी की झांकी का चित्रण किया है–

हरि लियो अवतार, आयो घर रे पुंवार कै।
धन्य लोहट को भाग, जा धरे किसन पधारिया।
धन्य तिथ धन्य ओ वार, हांसा ज माता लोहट पिता।
रीख ब्राह्मण ब्रह्मचार, जोतिग गावै जोतसी।[21]

उपर्युक्त समस्त विवेचन से गुरु जांभोजी के भगवद्रूप की एक सुन्दर झांकी हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती है। स्वयं भगवान विष्णु ने मरुभूमि मे अवतार लेकर ग्वाल बालों संग गो चारण एवं लीला करते हुए आतप और पथ भूल चुकी जनता को राह दिखाने हेतु बिश्नोई पंथ की स्थापना कर ''जीया न जुगति अर मुआ ने मुक्ति'' का संदेश दिया। अंत में हम प्रमुख समीक्षक विजयेन्द्र स्नाातक का कथन उद्धृत करते हैं जिसमें संतो के समन्वयवाद पर सटीक विचार दिखाई देते हैं संतो की साधना समन्वयमूलक थी। धर्म दर्शन उपासना आचार और विचार सबमें समन्वय द्वारा ये संत ऐसे मार्ग का संधान करते रहे जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी होने के साथ स्वीकार्य हो सके। इनकी दृष्टि में हिन्दू मुसलमान का भेद नहीं था। इन्होंने मनुष्य के बीच वर्ग, धर्म, जाति, सम्प्रदाय की दीवार खडी़ नही की। जिस सर्वधर्म समभाव की बात आज हम बड़े उत्साह से राजनीति के क्षेत्र में करते हैं वह बात इन सन्तों ने आज से पांच शताब्दियों पहले बड़े आग्रह और

विचारपूर्वक कही थी। संतो का सत्य मानव मात्र का सत्य है शाश्वत सत्य है। ऐसा सत्य है जिसे स्वीकार कर मनुष्य दंभ और पाखण्ड से मुक्त होकर आस्तिक भावना से परमानन्द का सुख प्राप्त कर सकता है।[22]

सन्दर्भ सूची

1. डॉ विश्वम्भरदयाल अवस्थी–छायावादोन्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यो का सांस्कृतिक अनुशीलन पृ. 350
2. श्री रामधारी सिंह दिनकर–संस्कृति के चार अध्याय पृ. 97
3. गुरु जांभोजी–शब्दवाणी
4. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक)–पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 349
5. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक)–पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 349
6. डॉ मनीषा गौड़–तुलसी के ब्रजभाषा काव्य में संस्कृति और समाज–पृ.–119
7. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 385
8. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 351
9. गुरु जांभोजी शब्दावली – शब्द – 19
10. आचार्य कृष्णानन्द (टीकाकार) – जम्भसागर पृ. 49
11. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 48
12. डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 141
13. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी – शब्द सं 26
14. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 400
15. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी – शब्द – 14
16. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी – शब्द – 16
17. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी
18. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी – शब्द – 94
19. गुरु जांभोजी – शब्दवाणी – शब्द – 29
20. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 24
21. स्वामी कृष्णानन्द आचार्य (सम्पादक) – पोथो ग्रंथ ज्ञान – पृ. 308
22. डॉ. विजयेन्द्र स्नातक (सम्पादक)
23. डॉ रमेशचन्द्र मिश्र (सम्पादक) – कबीर वचनामृत – पृ. 46

पता–WZ- 571 नारायणा गांव
नई दिल्ली–110028
मो0–9999206695

सनातन धर्म में अवतार परंपरा एवं श्री जाम्भोजी का भगवद्रूप

- डॉ. हुसैन खां ''उत्तम''

अवतार का मूल वेद-

ऋग्वेद के अनुसार जो सृष्टि बन चुकी है और जो बनने वाली है, वह सब विराट पुरुष ही है। इनके एक चरण में ये सभी प्राणी हैं और तीन चरण अनन्त दिव्य लोक में स्थित हैं।

-ऋग्वेद - 10/90/2

यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति।

- अथर्ववेद 13/3/17

एक ज्योतिस्वरूप परमात्मा अनेक रूपों से प्रकट होता है। सृष्टि के आदि में परमात्मा अकेले थे। भगवान ने संकल्प किया कि मैं एक ही बहुत रूपों में हो जाऊँ-

सोऽकामयत्। बहुस्यां प्रजायेमेति।

-तैतिरीय 2/6/4

वे एक ही परमात्मा जगत् रूप से प्रकट हो गये। अतः जगत् परमात्मा का आदि अवतार है -

आद्योऽवतारः पुरुष परस्य।

- श्रीमद्भागवत् 2/6/41

अर्थ-अवतरण या अवतार लेने का अर्थ है ऊपर से नीचे उतरना, जन्म धारण करना, शरीर धारण करना। सामान्यतः परमात्मा का निराकार से साकार रूप धारण करने का नाम अवतार है।

भारतीय वाङ्गमय के श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहास में और श्रीमद् भागवत, श्रीमदभगवद्गीता, रामचरितमानस आदि लोकोपकारक सर्वमान्य ग्रन्थों में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भगवान के अवतारों की कथा, अवतारों के कारण और अवतारों के रहस्य विविध प्रकार से वर्णित हैं। श्री जाम्भोजी ने शरीर धारण करने को अवतार लेना कहा है -

म्है ऊँडै नीरे अवतार लीयौ। (63:2)

यही नहीं उन्होंने तो पशुओं के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

गावें गाडर सहरे सूअर जळम जळम अवतारूं।

यह कथन जीव दृष्टि से है और श्री जाम्भोजी की जीवमात्र के लिए सम्मान सूचक भावना व्यक्त करता है।

अवतार का प्रयोजन-

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं-

अजोऽपि सन्नव्यात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधि ठाय, संभवाम्यात्ममायया।।

श्रीमद्भगवद्गीता 4/6

हे अर्जुन! मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होने पर भी तथा सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनाथाय, संभवामि युगे-युगे।।

धार्मिक सत्पुरुषों का उद्धार और पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिये एवं धर्म की पुनः भली प्रकार से स्थापना करने के लिये युग युग में मैं प्रकट होता हूँ अर्थात् अवतार धारण करता हूँ। श्रीमद्भागवत् महापुराण में कहा गया हैं कि पृथ्वी का बोझ हल्का करने, साधु सज्जनों की रक्षा करने और दुष्ट दुर्जनों का संहार करने के हेतु तथा समय-समय पर धर्म रक्षा के लिये बढ़ते हुये अधर्म को रोकने के लिये शरीर ग्रहण कर भगवान धरातल पर अवतीर्ण होते हैं-

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभार हरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येशां वधायश्च।।
अन्योऽपि धर्म रक्षाय देहः संभ्रीयते मया।
विरामयाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्।।

-श्रीमद्भागवद् 10-50 (9-10)

अवतार के लक्षण-

भगवान श्रीकृष्ण 16 कलाओं के साथ प्रकट हुए। छः ऐश्वर्य, आठ सिद्धि, कृपा (दया) तथा लीला में 16 कलाएं हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्रिय।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव, शण्णां भग इतीरणा।।

-विष्णु पुराण 6 (5-74)

अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः का नाम भग हैं।

आठ सिद्धियां-

अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, इशित्व, और वशित्व और कामावसायित्व ये आठ सिद्धियां कही जाती हैं। सनातन धर्म में भगवान के 24 अवतार माने जाते हैं, जिनमें 10 मुख्य अवतार हैं

मत्स्यकूर्मोवराहश्च नरसिंहऽथवामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्ध कल्कि च ते दशः ।।

अर्थात् मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा दसवें कल्कि अवतार होंगे।

श्री जाम्भोजी का भगवद्रूप

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

-श्रीमद्भगवद्गीता (4-8)

श्री जाम्भोजी के अवतरण के संबंध में इसी प्रकार की धारणा बिश्नोई पंथ में परंपरा से प्रचलित है कि जब नारायण ने नृसिंहावतार लेकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी, उस समय प्रह्लाद ने भगवान से एक वर मांगा था कि वे युग-युग में जीवों के उद्धार के लिये अवतार लें। भगवान ने भक्त को वचन दिया और मत्स्यादि अवतार धारण करने वाले वही भगवान त्रेता में श्री रामचन्द्र द्वापर में श्रीकृष्ण और इसी अनुक्रम से कलियुग में जाम्भोजी अवतरित हुए। हम यहां जाम्भोजी के सबदों, कथनों के आधार पर ही उनके भगवद् रूप का निदर्शन करेंगे। वे बिना छाया माया के हैं। हाडमांस रक्त और धातु से रहित है। उनके न मां है न बाप वे स्वयंभू है।

सबद-2

मोरे छाया न माया लोहू न मांसू रक्तू न धातु।
मोरे माई न बापू आपण आपू।

वे आगे कहते हैं मैं भगवी टोपी ओढ़कर कल्याणेच्छु जीवों के उद्धार के लिये मरूस्थल पर आया हूँ और वह भी खासकर किसानों के लिये । यद्यपि श्रीकृष्ण की कृपा से किसानों का आवास तो धरती पर सर्वत्र ही है, किन्तु मुझे जंबूद्वीप में ही आना था, क्योंकि मुझे सिकंदर (बादशाह) को चेताना था। जो परमात्मा हज और काबे में भी जाग्रत है, वहीं मैं मरुस्थल में जाग्रत हुआ हूँ। मुझे बारह कोटि जीवों की याद आई, इसलिये मुझे यहाँ आना पड़ा।

भगवी टोपी थलसिर आयो, हेत मिलाण करीलो।
अम्बाराय बधाई बाजै हृदे हरी सिंवरीलो।

कृष्णमया चौखंड कृषाणी, जम्बूदीप चरीलो।
जम्बूदीप अैसो चर आयो इसकंदर चेतायो।
मान्यो शील हकीकत जाण्यो हक की रोजी धायो।
तेतीसा की बरग वहां म्हें बारां काजै आयो।

सबद 29 इलोलसागर

श्री जाम्भोजी का अवतरण –

सुरजनदासजी ने जाम्भोजी के अवतार समय का इस प्रकार वर्णन किया है–

माता सपने रैन के पुत्र हेत करि मींट।
हंसा बोलि विहस तब, सनमुख बालक दीठ।

सुरजनदासजी, अवतार चरित

अर्थात् माता हांसा रात्रि के समय स्वप्नावस्था में अर्द्धोन्मिलित नेत्रों से सो रही थी। नेत्र खुलने पर जब उसने अपने सामने बालक देखा तो वे प्रसन्नता से विहंस उठी।

जन्मघूंटी नहीं लेना –

मान्यता है कि जाम्भोजी ने जन्मघूंटी नहीं ली, न ही स्तनपान किया। स्त्रियाँ उसे किसी उपाय से जन्म घूंटी नहीं दे सकी।

पचहारी सबनार घूंटी बूटी ना लही।
निसार्दन करत विचार दूध अरू जल पीवे नहीं।

जंभसार, षष्ठम् प्रकरण

जन्मघूंटी न लेना तथा स्तनपान न करना, यह जाम्भोजी के अलौकिक व्यक्तित्व को व्यक्त करता है।

पिता लोहटजी की चिन्ता–

लोहटजी को बालक के स्तनपान न करने की चिन्ता हुई कि यह कैसे जीवित रहेगा। किन्तु सहसा स्मरण हुआ कि वन में मिलने वाले महापुरुष ने अलौकिक और अद्‌भुत चरित्र वाला बालक आपके घर जन्म लेगा, कहा था, तब वे कुछ समय के लिए आश्वस्त हुए।

लोहट हांसा नै कह मनमां करो विचार।
महापुरुष बन भेटिया, ताकी वाचा सार।।

सुरजनदासजी, अवतार चरित

ज्योतिर्विद ब्राह्मण का आगमन–

लोहटजी ने ज्योतिषी ब्राह्मण को बुलाया और बालक के ग्रह, नक्षत्र तथा भविष्य देखने को कहा। ब्राह्मण ने ग्रहादि देखकर कहा, यह बालक देवी शक्ति सम्पन्न है। अनिष्ट कारक ग्रह तो इसके पास आ ही नहीं सकते। यह सनकादि दत्तात्रेय, गोरख, कपिल, तथा नारायण के समान योग शक्ति सम्पन्न होगा तथा धर्म का प्रचारक एवं जीवों का कल्याण करने वाला होगा।

पंडित पतड़ा बांचे जोय, यह बालक कुल तारक होय।
पांडे वचन सुनाया जाहि मात पिता सोचे मन मांहि।
सोवे नहीं पीठ धर सोय, धरती अंग न लागै कोय।
नीर दूध नहीं लेई आहार, भूख प्यास नहीं नींद व्यवहार।

अवतार चरित्र

नामकरण संस्कार –

10 दिन बाद बालक का नामकरण संस्कार हुआ। श्री जम्भदेव चरित्रभानु के अनुसार ब्राह्मण ने बालक का नाम 'जम्भराज' रखा।

जम्भयति नाशयति अज्ञानम् पापानि वा जम्भः।
मननात् मुनिरीति व्युत्पत्याच्च सम्भवात्।

अर्थात् जो अज्ञान का नाशक हो और मुनि हो उसको जम्भमुनि कहते हैं। अणिमादि सिद्धि सम्पन्न को जम्भमुनि कहते हैं।

बाल्यकाल

जाम्भोजी के शैशवकाल के अद्‌भुत चरित्रों का उल्लेख बिश्नोई पंथ के साहित्य में बड़े विस्तार के साथ हुआ है।

जच्चा गृह से अदृश्य होना, पुनः प्रकट होना।
माता मने उदास हुय, दौड़ गई दरबार।
अब बालक दीसै नहीं, ताका करहौ विचार।।

जंभसार चतुर्थ प्र.

अन्न, जल एवं दुग्धादि का पान न करने के अतिरिक्त अपने शरीर को इतना बोझिल बना लेना कि उठाये भी न उठना आदि का वर्णन श्री जम्भदेव चरित्रभानु में किया गया है।

भोपा को बुलाना –

श्री जाम्भोजी के दुग्धपान न करने पर पिता द्वारा भोपा को बुलवाया गया। उसने झाड़ फूंक किया तथा 11 जीवों की बलि दी। जाम्भोजी द्वारा उसको कहना कि तूने नाहक 13 जीवों की हत्या की है।

नाचै कूदे भोपड़ा, कारी लगै न काय।
पाखंड पाप पसार कै, मने रह्या अरगाय।।
सूभर छाली मारी दोय, गर्भजीव निकाला दोय।

अवतार चरित्र (स्वामी रामदासजी)

जन्मजात अवधूत-

जाम्भोजी जन्म से ही अवधूत थे। उन्हें बाल्यकाल से ही कपड़े तथा आभूषण पहनना पसंद नहीं था। श्री जंभदेव चरित्र भानु के अनुसार जब कभी माता-पिता ने जाम्भोजी को आभूषणादि पहनाएं तो वे उन्हें कंटक की तरह चुभने लगे। उन्हें तब तक चैन नहीं पड़ा जब तक उनके हाथ कंगन एवं कुंडल उतार न लिये गये।

एकान्तप्रिय-

जाम्भोजी एकांतप्रिय थे।

अरति जनसंसदि।

नारद भक्तिसूत्र

सदा उदास बोलेहु न कबहि।
बालनि संग रलायो तबहि।
मिले बालक खेलन जाई।
मिले न ता संग दूर रहाई ।
बालक खेलन ही बुलावै।
बैठे इकतर ध्यान लगावै।

जंभसार साहबरामजी

माता की जाम्भोजी का विवाह करने की इच्छा-

जांभोजी की वाणी में इस ओर संकेत हुआ है-

मा जाणै मेरै बहुटल आवै बाजै विरद बधाई।
म्हे शंभु का फरमाया, बैठा तखत रचाई।।

सबद-85

जाम्भोजी ने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर परमार्थ मार्ग को प्रशस्त किया। जांभोजी भूख प्यास से रहित, मैत्री-मंडप, कोट घर और माया से रहित, वृक्षों के नीचे विश्राम करने वाले परमहंस वृति थे। वील्होजी के शब्दों में-

पुरुष प्रगट्यो अेक पाप पुनि सिद्ध करंतो।
नहीं भूख तिस नींद रह्यो निरंकार करंतो।

रूंख वृक्ष विश्राम तजी मनहूं तै माया।
मेत्री मंडप कोट तजै घर मंदिर छाया।
वील्हा सोच विचार अब, मन साधां गुर साचो मिल्यो।
जंभ सरीखो इसो गुरु, जुग जुग और न सांभल्यो ।।

वील्होजी

गोचारण काल - (सं. 1515 से 1542)

श्मशान सेवी ब्राह्मण की घटना के पश्चात् जंगल में पशु चराने लगे। टीले पर बैठे हुए वे आज्ञा से ही पशु चराया करते थे। गो आदि पशु सहज भाव से आते-जाते, खाते-पीते और जाम्भोजी की आज्ञा मानते थे।

हुकमे आवे हुकम ज्यौं हुकम चरावैं बाल।
जंगल्य थलि जीवां धंणी, लखियो लील भुवाल ।।

सुरजन जी कथा परसिंध।

राव दूदा पर कृपा करना :-

किसी कारणवश राव दूदा को मेड़ते के अधिकार से वंचित होना पड़ा। उसने चांडासर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में वह पीपासर के पास कुएं के समीप विश्राम किया तथा अपने घोड़े को पानी पिलाने लगे। इतने ही में जाम्भोजी भी अपनी गायों को पानी पिलाने के लिए कुएं पर आए अंगुलियों के इशारे से गायों को पानी पिलाने लगे। वे जितनी अंगुलियां उठाते, उतनी ही गाएं खेली में पानी पीने के लिए आगे बढ़ती। इसी क्रम से गायें पानी पीती जाती तथा पश्चात् जाम्भोजी के शरीर से अपना माथा स्पर्श कर अपने टोले में जा खड़ी होती। राव दूदा इस दृश्य को देखकर अचंभित रह गया। उसने जाम्भोजी को एक पहुंचे हुए महात्मा एवं सिद्धपुरुष के रूप में पहचान लिया। उसने सोचा इनकी कृपा से मेरी विपत्ति का नाश हो सकता है।

पानी पीने के पश्चात् सारी गायें जंगल की ओर चल पड़ी। जाम्भोजी भी उनके पीछे-पीछे चल दिये। घोड़े पर सवार दूदा भी उनके पीछे चल पड़ा। उनके बीच की दूरी बराबर बनी रही। यह एक चमत्कारिक घटना थी। अंततः दूदा जब घोड़े से नीचे उतरे तब कहीं वे जाम्भोजी के समीप पहुँच सके। दूदा ने जांभोजी को प्रणाम किया तथा अपने संकट निवारण की प्रार्थना की।

जाम्भोजी ने राव दूदा पर कृपा की और उसको एक कैर की तलवारनुमा लकड़ी देते हुए वरदान दिया कि तेरा मनोरथ सफल होगा। आज से सातवें दिन तुम्हें

मेड़ता पुनः मिल जाएगा और जब तब यह तलवार तुम अपने पास रखोगे, तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा।

दोहा

थलिये उठ दूदा मिला तूंठा सारे काज।
जब तक खांडा राखसी जब लग निश्चल राज।।

वील्होजी

राव जोधा, राव बीका तथा राव लूणकरण को भी जाम्भोजी ने अपने परचों से प्रभावित किया था। राव जोधा को नगाड़ा निशान (बैरिसाल नगाड़ा) दिया था, जो कि वर्तमान में बीकानेर के जूनागढ़ किले में मौजूद है। जाम्भोजी को लेकर राव लूणकरण एवं नागौर शासक मुहम्मद खान में यह विवाद था कि वे हिन्दुओं के देव हैं या मुसलमानों के पीर हैं। इस निर्णय के लिये राजा ने अपने पुरोहित तथा मुहम्मद खान ने अपने काजी को जाम्भोजी के पास भेजा कि वे वस्तुतः देव हैं या पीर। पुरोहित ने जाकर प्रश्न किया–

कहै पिरोहित जंभ नै, संत कहो गुर पीर?
तुम हिन्दू के देव हो? के है मुसलमान सूं सीर?

जाम्भोजी का उत्तर था–

हिन्दू मोकूं मत कहो, मुसलमान मैं नाहीं।
जाकी करणी शुद्ध है, ता मांही दरसाही ।।

–जंभसार, सप्तक

अर्थात् मैं न हिन्दू हूं और न ही मुसलमान, मै तो शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्तों के हृदय में विराजमान आत्म स्वरूप हूँ। अर्थात् पवित्रात्मा ही मुझे पहचान सकते हैं। यहां हिन्दू मुस्लिम एकता की भी बात कही गई है।

सिकंदर लोदी

जाम्भोजी ने अपने सबद 'इलोलसागर' में सिकंदर को चेताने का उल्लेख किया है। सिकंदर को शीलधर्म का पालन करना सिखाया। फलतः क्रूरता का त्याग कर हक की कमाई में प्रवृत्त हुआ।

हासम व कासम दर्जी मुसलमान थे तथा दिल्ली के निवासी थे। वे जाम्भोजी के परमभक्त थे। उन्होंने जाम्भोजी को अपना गुरु मान लिया था। इन्होंने अपनी जाति के लोगों के हाथ का भोजन खाना छोड़ दिया था तथा पूर्ण रूपेण निरामिश भोजी बन गए थे। किसी ने बादशाह सिकंदर लोदी से इनकी शिकायत कर दी, जिनके फलस्वरूप बादशाह ने इन्हें जेल में डाल दिया। अतः जाम्भोजी ने

दिल्ली पहुंचकर सिद्धि चमत्कार से बादशाह को प्रभावित कर इन्हें जेल से मुक्त कराया था।

बीदाजी को परचा दिखाना–कहा जाता है कि जाम्भोजी ने शुक्लहंस शब्द बीदोजी के प्रति कहा था। जाम्भोजी द्वारा इसे सिद्धि के कई चमत्कार दिखाने के उल्लेख हुए हैं–

आके आम्ब कराइया, नीबे नारेल कराय।
पाणी दूध कराइयो, तो नहीं परच्यो काय।।

जाम्भोजी ने ऋतु और बीज के विपरित वृक्षों पर फल लगा दिये। थल में पानी का दरिया बहता दिखा दिया।

अकाल पीड़ितों की सहायता–

वि.सं. 1542 में इस क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा। जांभाणी साहित्य में इस अकाल का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।

पनराइसयों समत कहावे, कुसमो संवत वैयालो आवै।
मेघ न वरसै बूंद न परि है, जेठ असाढ़ सावन अवतरि है।
मंडल काल पड़ेउ बड़भारी, त्राह त्राह सब दुनि पुकारी।
भूख मरहि सब जीया जूणी, दिन दिन दाह लगती भई दूणी।

जंभसार, आठवाँ प्रकरण

लोगों के सामने दुर्भिक्ष से बचने का एक ही उपाय था। वह था, अपना घर बार छोड़कर उदरपूर्ति हेतु मालवा की ओर प्रस्थान करना। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने लिखा है कि अकाल पीड़ित समुदाय जब समराथल धोरे के पास से मंऊ मालवे की ओर गुजर रहा था। जनता के इस सामूहिक निष्क्रमण को देखकर कारुणिक जाम्भोजी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने उस विशाल जनसमूह को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, यदि तुम्हें यहीं खाने को अनाज मिलता रहे तो क्या मऊ मालवे की ओर जाना स्थगित कर देंगे? लोगों का उत्तर था, ''श्वास और वास (निवास) बड़ी मुश्किल से छूटता है। यदि यहीं भूख से बचने का कोई उपाय हो जाए तो फिर हमें अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है।''

जाम्भोजी ने दृढ़ता के साथ आश्वासन देते हुए उनकी शंकाओं का समाधान किया और कहा कि 'यदि तुमने निष्क्रमण रोक दिया तथा मेरे उपदेश के अनुकूल आचरण किया तो चाहे कितने ही मनुष्य हों, सबको खाने को अन्न और आगामी वर्ष के लिये खेती बोने का सामान दिया जाएगा। लोगों ने जाम्भोजी की बात मान ली। समराथल पर उनकी छत्र–छाया में लोग पलते रहे।

अक्षुण्ण अन्न राशि–

इस प्रकार जाम्भोजी ने अपनी यौगिक सामर्थ्य के बल पर हजारों व्यक्तियों के लिये महीनों तक अन्न की व्यवस्था कर दी।

बिश्नोई पंथ की स्थापना–

जाम्भोजी ने बिश्नोई पंथ की स्थापना वि.सं. 1542, कार्तिक कृष्णा अष्टमी को अपने आदि आसन समराथल धोरे पर की। यह अष्टमी पंथ स्थापना की समारंभ तिथि थी। इस दिन से लेकर अमावस्या तक चारों वर्णों का बिश्नोई पंथ में दीक्षा समारोह मनाया जाता रहा था।

आदि अष्टमी अंत अमावस।
चार वरण कूं किया तपावस।।

जंभसार

पूल्होजी को परचा दिखाना–

जाम्भोजी ने सर्वप्रथम अपने चाचा पूल्होजी को पाहल पिलाकर बिश्नोई पंथ में दीक्षित किया। दीक्षित होने से पूर्व जाम्भोजी से निवेदन किया कि यद्यपि मैं आपका संबंधी हूँ तथा आपकी शरणागत हूँ। तदपि बिना किसी परचे (चमत्कार) के आपके मार्ग में मेरा विश्वास स्थिर नहीं होता।

जाम्भोजी ने पूल्होजी को परचा दिखाना स्वीकार कर लिया पर साथ ही उनसे यह वचन भी ले लिया कि परचा मिलने पर उनके बताए मार्ग को उन्हें स्वीकार करना होगा। इस प्रकार वचनबद्ध होने पर पूल्होजी को जांभोजी ने अभिप्सित परचा दिया।

सतगुरु पूल्हो लियो बुलाय सकल लोक मिला परथाय।
मनसारथ आकास विवाण सतगुरु, पूल्हे लियो बैसाण।
सिद्ध लोक विवाण चलाया, स्वर्गलोक का दर्शन पाया।

सुरजनदासजी, अवतार चरित्र

इस प्रकार अलौकिक परचा पाकर पूल्होजी के दीक्षित होने के बाद पंथ निःशंकभाव से चल पड़ा।

प्रह्लाद की प्रीत सूं, जाग्यो पूर्व अंक ।
पूल्है की प्रीत सूं, चाल्यो पंथ निशंक ।।

श्री रामदासजी कृत,
श्री जांभाजी महाराज का जीवन चरित्र–

भगवान जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित 29 नियम धर्म का सार तत्त्व है। आन्तरिक व बाह्य पवित्रता, स्नान, सन्ध्यावंदन, अहिंसा, सत्य, अस्तेय का पालन, काम क्रोधादि, मद मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय, सहिष्णुता, प्रकृति संरक्षण आदि धर्म के विभिन्न पहलुओं को संजोए हुए यह पंथ वस्तुत: वैश्विक धर्म है।

श्री जाम्भोजी ने अपने प्रवर्तित पंथ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान आदि सभी जाति वर्ण, वर्ग, धर्म के लोगों को अपनाया तथा अपनी सबदवाणी द्वारा उक्त कर्म बंधनों को तोड़कर मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बताया है।

श्री जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित वसुधैव कुटुम्बकम्, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य संबधित कथन दृष्टव्य है।

सबद-10

बिस्मिल्ला रहमान रहीम।
जिहिं के सदके भीना भीन, तो भेटीलो रहमान रहीम।
करीम काया दिल करणी, कलमा करतब कौल कुरांणौ।
दिल खोजो दरवेश भईलो, तइयां मुसलमाणों।
पीरां पुरूषां जमी मुसल्ला, कर्तब लेक सलामो।
हम दिल लिल्ला तुम दिल, लिल्ला रहम करै रहमाणो।
इतने मिसले चालो मियां, तो पावो भिस्त इमाणो ।

अर्थात् शुरू अल्लाह (ईश्वर) के नाम से जो परम कृपालु व दयावान है। जिसने अपने हृदय से भेदभाव को (अहं मम को) परमात्मा पर न्यौछावर कर दिया है उस पर कृपालु परमात्मा की दया अवश्य प्रकट होगी।

सूफीसंत अमन आश्रम, गरडाली
सांचौर, जिला - जालोर (राज.) 343041
मो. - 09414425521, 08107125780

भगवद्गीता में भगवद्स्वरूप

– डॉ. रमेश चन्द्र यादव 'कृष्ण'

भगवद्गीता का भारतीय ही नहीं अपितु विश्व वाङ्मय में भी विशिष्ट स्थान है। भगवद्गीता का शाब्दिक अर्थ है – भगवान के द्वारा गाया गया गीत। गीता के गायक महान कवि हैं – श्रीकृष्ण। वेद में परमात्मा को कवि कहा गया है और सारी सृष्टि ही उसका काव्य है –

स पर्यगाच्छक्रमकामम व्रजम स्नाविरं शुद्दमपापविद्धम।
कर्विमनीषी परिमन स्वयम्भूर्याद्या हयतोऽर्मान्व्यच्छाश्वतीक्यः समाभ्य।।

– यजुर्वेद 4018

क्योंकि गीता भगवान का गाया हुआ गीत है, अतः स्वाभाविक ही है कि इसमें यत्र-तत्र-सर्वत्र भगवान की चर्चा होगी। गीता महाभारत के भीष्मपर्व का भाग है। अध्याय 25 से लेकर 42 तक अर्थात् 18 अध्यायों में महाभारत के कुरुक्षेत्र युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच जो संवाद चला है, उसी का नाम भगवद्गीता है। ऐसी मान्यता है कि जन्मजात योगी जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य ने भीष्मपर्व से ये अठारह अध्याय लेकर उन पर स्वतन्त्र टीका लिखी। तब से गीता सर्व-जन सुलभ बन गई। भगवद्गीता में 18 अध्याय हैं। कुल सात सौ श्लोक हैं। इनमें एक श्लोक राजा धृतराष्ट्र का है। इकतालीस श्लोक सञ्जय के हैं, चौरासी श्लोक भक्त अर्जुन के हैं तथा शेष 504 श्लोक भगवान श्रीकृष्ण के हैं। संस्कृत में लिखी गई भगवद्गीता का मूल पाठ मात्र दो घन्टे में पूर्ण हो जाता है।

भगवद्गीता के इन 18 अध्यायों में वेद-उपनिषदों व ब्रह्मसूत्र का सारा निचोड़ आ गया है। इसीलिए हमारे मनीषियों ने सगर्व यह घोषणा की –

सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
यार्थो वत्सः सुधीर्मोक्ता दुग्धंगीतामृतं महत्।। – वाराह पुराण

अर्थात् सब उपनिषद् गौएं हैं, श्रीकृष्ण दूध दुहने वाले ग्वाल हैं, पार्थ वत्स (बछड़ा) है, तथा श्रेष्ठ बुद्धि वाले लोग गीतामृत दुग्ध का पान करने वाले हैं।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर भगवान श्रीकृष्ण के समय तक वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, षड्दर्शन, ब्रह्मा, आरण्यक की महामात्रा का सारा सार छोटी-सी पुस्तक भगवद्गीता में समाया हुआ है। इसीलिए कहा गया है –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यै शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सता।। – गीता महात्म्य।

शरीर नश्वर है, आत्मा नित्य है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति जीण वस्त्रों को उतार कर दूसरे नये वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को धारण कर लेता है। (गीता 2/22)

गीता ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को मानती है और यह भी मानती है कि दोनों रूप एक ही अभिन्न तत्त्व के हैं। ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लाभ का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, वह शुद्ध, चेतन्य और अखण्ड आनन्द है। वह निर्विकल्प, निरुपाधि विश्वातीत भी है। अन्तर्यामी रूप में वह सारी प्रकृति और समस्त प्राणियों में वास करता है। जिस प्रकार धागे में मणियां पिरोई हुई होती हैं उसी प्रकार ब्रह्म में समस्त विश्व अनुस्यूत है –

कोई स्वार्थ नहीं होता। उनके कार्य लोकसंग्रह अर्थात् लोककल्याणार्थ ही होते हैं। उनके द्वारा सम्पादित कार्यों से स्वत: ही लोक कल्याण होता है। ब्रह्म रस पान से तृप्त व्यक्ति को कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसका अपना कोई कार्य शेष नहीं रहता। भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट कह रहे हैं – 'तस्य कार्यं न विद्यते।' –

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्य मानव:।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। गीता 2/16

जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति मात्र से प्रकाश फैल जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मपात्र साधक के कार्यों से स्वत: ही लोक मंगल होता रहता है।

भगवान स्वयं कहते हैं – ''हे अर्जुन! मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्त्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्य है, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ। यदि मैं कर्म न करूं तो बड़ी हानि हो जाए, क्योंकि मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि मैं कर्म न करूं तो समस्त लोकों का उच्छेद हो जाए –

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि। गीता-3/22
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रित:।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश:।। 3/23
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमा: प्रजा:।। गीता 3/24

यहां यह बात भी स्मरणीय है कि भगवद्गीता के महान् भाष्यकार जन्मजात योगी सन्त ज्ञानेश्वर जी ने 21 वर्ष की अवस्था में ही गीता के नवम् अध्याय का पाठ करते हुए आलन्दी में जीवित समाधि ले ली थी।

गीता के उपदेश का उपसंहार भी शरणागति में ही हुआ है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। गीता 18/66

भगवद्गीता का भक्तियोग ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। पराभक्ति, परा ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक ही हैं। गीता ने भक्ति, ज्ञान, कर्म में समन्वय करके साधनामार्ग को भी सरल, सुबोध और सुगम बना दिया।

अनन्य शरणागति की महिमा – भगवान की अनन्य शरण ग्रहण करने पर भगवान ही भक्त का ध्यान रखते हैं। गीता में भगवान् ने पुनः पुनः आश्वासन दिया है –

न मे भक्तः प्राणश्यति। गीता 9/31

अर्थात् मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। कल्याण कर्म करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति। गीता 6/40

श्री भगवान् कहते हैं – हे अर्जुन! अनन्य भक्ति से ही मेरा तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, मेरा प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है, और मुझमें प्रवेश करके मुझमें एकाकार हुआ जा सकता है –

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप। गीता 21/54

भगवद्गीता की अप्रतिम विशेषता है – सर्वव्यापी परमात्मा का विशद् एवं प्रभावशाली चित्रण। गीता में श्रीकृष्ण को ही सर्वोच्च सत्ता स्वीकार किया गया है। परमात्मा सर्वव्यापक है। वह सबको घेरे हुए है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, पैर हैं, मस्तिष्क, नेत्र, मुख और कान हैं। वह सबको व्याप्त किये हुए है।

सर्वतः पाणियादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। गीता 13/13

With hands and feet everywhere, with eyes, heads, and faces everywhere, with ears everywhere, It rusts pervading evorgetting in this world.

श्री भगवान् कहते हैं 'मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत परिपूर्ण है और सब भूत मेरे संकल्प के आधार पर स्थित हैं, किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्यानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।। गीता 9/4

ये सब भूत मुझमें स्थित नहीं है, किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख कि भूतों का धारण–पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाला भी मेरा

आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है –

न च मत्स्यानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।। गीता 9/5

जिस प्रकार आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही (मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से) सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित है –

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रयो महान्।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्यानीत्यधारय।। गीता 9/6

कल्पां के अन्त में सब भूत मेरी (ईश्वर की) प्रकृति को प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में ईश्वर उनको पुनः रचता है –'

सर्वभूतानिकौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।

कल्पक्षये पुनस्तानिकल्पादौ विसृजाम्यहम्।। गीता 9/7

अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बार–बार (उनके कर्मानुसार) रचता हूं।

प्रकृतिं स्वामवष्टम्रू विसृजामि पुनः पुनः।

हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्वजगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूम रहा है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते चराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। गीता 9/10

ऋतु मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मउैं हूं, मन्त्र मैं हूं, घृत मैं हूं, अग्नि मैं हूं, और हवन रूप क्रिया भी मैं ही हूं।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यहमग्निरहं हुतम्।। गीता 9/16

हे अर्जुन! इस सम्पूर्ण जगत का धाता अर्थात् धारण करने वाला एवं कर्मों के फल को देने वाला पिता, माता, पितामह, जानने योग्य, पवित्र ॐकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।

वेद्यं पवित्रमोंङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।। गीता 9/16

(गतिः) प्राप्त होने योग्य परमधाम, भरण–पोषण–कर्ता, सबका स्वामी (साक्षी) शुभ–अशुभ का देखने वाला (निवासः) सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य हितैषी (प्रभवः प्रलयः) सबकी उत्पत्ति प्रलय का हेतु, (स्थानम्) स्थिति का आधार, निधान (प्रलयकाल मेंस म्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूप से जिसमें लय होते हैं, उसे

विधान कहते हैं), अविनाशी (बीजम) कारण (भी) मैं ही हूं।

गतिर्मता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।। गीता 9/18

ईश्वर सनातन बीज – ईश्वर सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज है, वह बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज है।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेनस्विनामहम्।। गीता 7/20

ईश्वर परम कारण – ईश्वर से भिन्न दूसरा कोई भी परम (कारण) नहीं है, यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र की मणियों के सदृश ईश्वर में गुंथा हुआ है।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। गीता 7/7

ईश्वर जल में रस है, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश है, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार है, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व है।

रसोऽमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु। गीता 7/8

ईश्वर पृथ्वी में पवित्र गन्ध है और अग्नि में तेज है तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन है और तपस्वियों का तप है।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभाबसौ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।। गीता 7/9

ईश्वर सर्वज्ञ है – ईश्वर पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले समस्त भूतों को जानता है।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।

भविष्याणं च भूतानि मां तु भेद न कश्चन्।। गीता 7/26

ईश्वर सर्वज्ञ–अनादि–सबका नियन्ता–सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म–सबका धारण–पोषण करने वाला–अचिन्त्य स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाशमय और अविद्या से परे शुद्ध सच्चिदानन्द है –

कविं पुराणमनुशाति तारमणोरणीमांसमनुरस्मरेधः।

सर्वस्य धतारमकिन्त्यरूपमादित्यवर्गं तमसः परस्तात्।। गीता 8/9

ईश्वर सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी है –

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।। गीता 9/24

ईश्वर सम है, उसे न कोई प्रिय है और न अप्रिय –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। गीता 9/29

ईश्वर को देवगण और महर्षिजन भी जानने में असमर्थ हैं –

न मे विदुःसुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। गीता 10/2

ईश्वर ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण है और उसी से सब जगत् चेष्टा करता है –

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। गीता 10/8

ईश्वर परमब्रह्म, परमधाम, परम पवित्र है, वह सनातन दिव्य पुरुष है, देवों का भी आदि देव है, अजन्मा और सर्वव्यापी है –

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादि देवमजं विभुम्। गीता 10/12

उस भूतों को उत्पन्न करने वाले भूतेश्वर, देवों के देव, जगत के स्वामी पुरुषोत्तम को अन्य कोई नहीं जानता, वह स्वयं ही अपने को जानता है –

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्य त्वं पुरुषोत्तम।

भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। गीता 10/15

वह ईश्वर सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा है तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी वही है –

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानमत्त एवच।। गीता 10/20

सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी वही है –

सर्गणामादिरन्तश्च मध्यं चैवहमर्जुन। गीता 10/32

वही अक्षय काल है, सब और मुख वाला है तथा धारण–पोषण–कर्ता है।

अहमेवाक्षयः कालो धाता है विश्तोमुखः। गीता 10/33

वही सबका नाश करने वाला मृत्यु है और उत्पन्न होने वालों का उत्पत्ति हेतु है –

मृत्युः सर्वहरश्चाहमभद्वश्च भविष्यताम्। गीता 10/34

संसार में जो–जो भी विभूतियुक्त–कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, वह परमात्मा के तेज की ही अभिव्यक्ति है –

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमद्र्जितमेव ना।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम ते जोंऽशसम्भवम्।। गीता 10/41

परमात्मा अनन्तगुना है – यह सम्पूर्ण जगत उस परमात्मा के एक अंश मात्र से धारण किया हुआ है अर्थात् वह इससे अनन्त गुना है –

विष्टम्याहसिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत्।। गीता 10/42

जिस प्रकार नदियों के बहुत से जल प्रवाह स्वाभाविक रूप से समुदं के

ही सम्मुख दौड़ते हैं, अर्थात समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही नरलोक के वीर ईश्वर के प्रज्वलित मुखों में प्रवेश करते हैं –

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवन्ति नरलोकनीरा विशन्ति वक्ताण्यमि विज्वरन्ति।। गीता 11/28

ईश्वर ही चराचर जगत का पिता है, वही गुरुओं का गुरु अर्थात् आदि गुरु है –

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यम्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।। गीता 11/43

शशि और सूर्य उस सर्वोच्च सत्ता के नेत्र हैं –

शशिसूर्यनेत्रम्। गीता 11/19

महाप्रकाश – आकाश में सहस्रों सूर्यों के एकसाथ उदय होने से जो प्रकाश प्रस्फुटित होगा, वह भी विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के समक्ष नगण्य ही रहेगा –

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेधुगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्माद्भसस्तस्य महात्मना।। गीता 11/12

वह परमात्मा जिसके सब और हाथ–पैर, नेत्र, सिर, मुख और कान हैं और जो सबको व्याप्त करके स्थित है। सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारण–पोषण करने वाला है और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है –

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। गीता 13/13
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वमृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। गीता 13/14

वह चराचर सब भूतों के बाहर–भीतर (परिपूर्ण है) और चर–अचर रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित है –

वहिरन्तश्च भूतानामचारं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।। गीता 13/15

वह परमात्मा विभागरहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण होने पर भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में विभक्त–सा स्थित प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से भूतों का धारण–पोषण करने वाला और रुद्ररूप से संहार करने

वाला तथा ब्रह्म रूप से सबको उत्पन्न करने वाला है –

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

भूतभर्तृचतज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। गीता 13/16

वह परमात्मा ज्योतियों की भी ज्योति है एवं माया से अत्यन्त परे है, वह बोधस्वरूप जानने योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है –

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानवाक्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। गीता 13/17

नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में परमेश्वर नाशरहित है और समभाव से स्थित है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। गीता 13/27

महत् ब्रह्मरूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और परमात्मा उस योनि में चेतनसमुदाय रूप गर्भ को स्थापित करता है, उस जड़–चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है। नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्रकृति (तो) उन सबकी गर्भधारण करने वाली माता है और ईश्वर बीज को स्थापित करने वाला पिता है –

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाक्यहम्।

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। गीता 14/3

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयःसम्भवन्ति यः।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।। गीता 14/4

अविनाशी परब्रह्म का, अमृत का, नित्य धर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का आश्रय परमात्मा ही है –

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। गीता 14/27

ज्योतिर्मय परमधामः – परमात्मा के परमधाम को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है –

न तद्भासमते सूर्यो न शशाङ्कों न पावकः।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। गीता 15/6

जीवात्मा परमात्मा का अंश है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। गीता 15/6

परमात्मा सबके हृदय में रहता है –

परमात्मा ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित है, परमात्मा से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है, सब वेदों द्वारा ईश्वर ही जानने योग्य है, वेदान्तकर्ता और वेदवित् भी वही है –

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। गीता 15/15

इस संसार में नाशवान् और अविनाशी – दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान और (कूटस्थ) जीवात्मा (अक्षर) अविनाशी कहा जाता है। (15/16)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्चयते।। गीता 15/16
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विमर्त्यव्यय ईश्वरः।। गीता 15/17
यस्मत्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रभितः पुरुषोत्तमः।। गीता 15/18

पृथक् पृथक् सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा ही विभागरहित अर्थात् समभाव से स्थित है –

सर्वभूतेषु मेनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्दि सात्त्विकम्।। गीता 18/20

अन्तर्यामी परमेश्वर शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी माया से उनके कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूदानि मायमा।। गीता 18/61

अवतारवादः – यद्यपि ईश्वर अजन्मा और अविनाशी है तथापि वह अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से मूर्तरूप धारण करता है। जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब ही वह अपने रूप को रचता है। अर्थात् निराकार से साकार हो जाता है। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए तथा पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की भलीभांति स्थापना करने के लिए युग-युग में प्रकट होता है (गीता 4/6-8)। जो लोग ईश्वर के इस दिव्य जन्म और कर्म का रहस्य जान लेते हैं, वे आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं यद्यपि ईश्वर की माया लोगों को बन्धन में डालती हैं और ईश्वर ही लोकनाशक काल भी है। (कालोऽस्मि लोकक्षमकृत्यप्रवृद्धों – गीता 11/32) तथापि प्रेम और करुणा के

द्वारा वह मानवात्माओं से बंधा हुआ भी है। वह चर-अचर सबका पिता है। वह गुरुओं का भी गुरु है तथा सभी का उपास्य है, वह अप्रतिम है। जो भी उसकी शरण ग्रहण करता है, उस पर उसकी अहैतुकी कृपा बरसती है। वह शरणागत की उसी प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार पिता पुत्र की सखा-सखा की और पति-पत्नी की। वह विश्व का पिता, माता, सहायक, पितामह, शरण-स्थान तथा मित्र सभी कुछ है। सभी प्राणी उसके लिए समान हैं, वह किसी से द्वेष नहीं रखता, किसी का पक्षपात नहीं करता। किन्तु जो उसकी अनन्य भक्ति करते हैं वे उसमें और वह उनमें निवास करता है। इससे सिद्ध होता है कि गीता अध्यात्म जगत को एक नवीन क्षितिज प्रदान करती है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। गीता 4/12

अर्थात् जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनके उसी प्रकार भजता हूं, क्योंकि सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

ईश्वर की उदारता शब्दों में नहीं समा पाती। प्रभु कहते हैं -

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपिमामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। गीता 9/23

हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धा से जो सकाम भक्त अन्य देवताओं को पूजते हैं वे भी मुझको ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक है।

Even those who worship goods other than the universal being are not condemned though the limitations of their worship are clearly pointed out. (Gita IX/23)

अहं हि सर्वमज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिज्ञानन्ति तत्त्वेनातश्च्यन्ति ते।। गीता 9/27

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं, परन्तु वे मुझ परमेश्वर को नहीं जानते, इसी से गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

कृष्णकुटीर, कृष्णपुरी, लाइन पार,
मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश

गुरू जाम्भोजी सबद वाणी सार

-मनोहरलाल गोदारा

साहित्य जगत में जाम्भाणी, साहित्य का अपना विशेष महत्व है। इसमें ज्ञान ध्यान, भक्ति सेवा, परउपकार करूणा आदि का विवरण मिलता है जिसकों पढ़कर जीवन में आत्मसात् करने से जीवन का मूल्य बढ़ जाता है। जाम्भाणी साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि गुरू जाम्भोजी ने सार्गार्मत तात्विक तत्व मीमांसा का विवेचन किया है गुरू जाम्भोजी ने सबदों को ही वेद माना है। गुरू जाम्भोजी ने जीवन में प्रत्येक क्षेत्र को धर्म से जोड़ा क्योंकि धर्म एक ऐसी ईश्वरीय सत्ता है। जो ईश्वर जीव और प्रकृति में संतुलन बनाती है गुरू जाम्भोजी कहते है जेा गुण श्रेष्ठ बनाये उन्ही को अपनाओ यही मोक्ष का मार्ग है।

गुरू जाम्भोजी ने एक सबद में कहा है-

''जां जां जीव न ज्योति, तां तां मोक्ष न मुक्ति
जां जां दया न धर्म्, तां तां विकर्म कर्म्''

गुरू जाम्भोजी सबद वाणी सन्देश

गुरू जाम्भोजी ने मनुष्य को ऊंचा उठाने और उसे लोक कल्याण की ओर उन्मुख करने का सरल, सहज और व्यावहारिक मार्ग बतलाया था। उन्होने सत्य को ही मुख्य माना अपनी वाणी सेवा तथा जीवन में लक्ष्य तक पहुंचने का सरल उपाय बतलाया। वे कहते है- युक्ति के साथ जीओ, जिससे मरने के बाद मुक्ति की प्राप्ति हो। जीवन का लक्ष्य जीवनमुक्ति प्राप्त करना है और एक बार की मुक्ति सदा की मुक्ति है गुरू जाम्भोजी जी ने व्यक्ति का दोहरा दायित्व बतलाया है। अपने प्रति तथा समाज और संसार के प्रति। अत: ''जीवन की विधि के अन्तर्गत आत्मोत्थान के साथ, लोक संग्रह और लोक मंगलकारी कार्यो को करना है। गुरू जाम्भोजी ने किसी न किसी रूप में निरन्तर लोक मंगल कार्य करना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य बतलाया है।

किसी कार्य की सफलता के लिए गुरू जाम्भो जी ने दुविधा वृत्ति को त्यागने को कहा। उन्होने लोक जीवन के प्रंसगों से स्पष्ट किया दुविधा वृत्ति से कोई भी कार्य सम्पन्न होना कठिन है। दुविधा में न तो गुरू-शिष्य का सम्बन्ध रह सकता है और न ही समानुसार कार्य हो सकता है।

गुरू जाम्भोजी ने कहा है कि ''पहले क्रिया आप कमाओ फिर दुजा न फरमाओ'' अर्थात् कहने वाला जब किसी काम को स्वयं करके न दिखा दे, तब तक उसके कथन का कोई मूल्य है। स्थायी प्रभाव भी उसकी बात का होता है जो कथनी को करनी में बदलकर दिखा देता है। गुरू जाम्भोजी ने जहां कथनी और करनी में सांमजस्य पर बल दिया, वहां उन्होने अपनी वाणी द्वारा बार-बार कर्ममय

और श्रमशील, जीवन बिताने का सन्देश भी दिया-जैसे बिना दानों के भूसी और बिना रस के गन्ने का छिलका निरर्थक है, वैसे ही जीविकोपार्जन हेतु बिना काम किये परिवार भी निरर्थक है। उन्होने अपनी वाणी में कहा कि -जीविकापार्जन हेतू धन अन्याय व बेईमानी से अर्जित नही किया जाना चाहिए। मनुष्य को अपने हक की ही कमाई खानी चाहिए तथा सादगी से रहना चाहिए। मनुष्य वही है जो मानवीय गुणों का पालन करो। गुण विहीन व्यक्ति आडम्बर का सहारा लेता है।

गुरू जाम्भोजी पाखण्ड, आडम्बर और अंहकार के विरूद्ध थे। उन्होने अपनी वाणी में सामान्य जन को सम्बोधित करते हुए उनको सम्भल जाने की चेतावनी दी। उन्होने कहा इस कलियुग में तत्वज्ञान न होने के कारण सभी भ्रम में पड़े दिखते हैं ब्राह्मण वेदों को, काजी कुरान को, और जोगी जोग को भूल गये है।

हिन्दूओं को सम्बोधित करते हुए वे कहते है कि-हिन्दू होकर तुमने हरि का जाप क्यो नही किया, तूने अपना जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया क्योंकि तूं धर्म के मार्ग पर नहीं चला। मृत्युपरान्त ईश्वर तेरी करनी का हिसाब मांगेगा।

गुरू जाम्भोजी ने समय-समय पर उन लोगों को सुधारने का प्रयास किया था जो जाति-भेद, सम्प्रदाय भेद अथवा धर्म भेद के कारण परस्पर एक दूसरे के प्रति अलगाव का भाव रखते थे। उन्होने अध्यात्मिक जीवन-पद्धति के वास्तविक स्वरूप को प्रत्यक्ष रखने की चेष्ठा की। साथ ही उन्होने लोगों का ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट किया कि उनका आदर्श नैतिक जीवन कैसा होना चाहिए। उन्होने सभी धर्मो और जातियों के लोगों को एक ही प्रकार के उपदेश देकर न केवल पारस्परिक साहिष्णुता का पाठ पढ़ाया अपितु उन्हें इसके साथ ही आदर्श मानवता की बातो ंको समान रूप से अपनाने का भी प्रेरणा दी।

गुरू जाम्भोजी के सिद्धान्त

सबद वाणी से पता चलता है कि गुरू जाम्भोजी अद्वैतपरक सिद्धान्तों को मानते थे। उनका कथन है कि जो कोई ब्रह्म के विषय में यह कहता है कि ''मै उसे कुछ-कुछ जानता हूँ'' वह कुछ भी नहीं जानता। जो कहता है कि मै कुछ भी नहीं जानता वह उसे कुछ-कुछ समझता है सत्य तो यह है कि ब्रह्म सर्वथा अकथनीय है। ब्रह्म तत्व अज्ञेय है उसका कोई छोर नहीं जिस कारण वह अगम्य है। परमतत्व की रूप रेखा, चिह्न, खोज, वर्ण आदि के विषय में किसी भी प्रकार का अनुमान करना सम्भव नही है। गुरू जाम्भोजी का इस विषय मे कहना है कि वह परमतत्व सातों पतालों, तीन लोकों, चौदह भुवनों एवं आकाश में बाहर और भीतर सर्वत्र विद्यमान है तथा जहां भी देखा जाये, वही मौजूद है उनके अनुसार अगोचर स्वयंभू अपने आप ही उत्पन्न हुआ। जब कुछ भी नही था, ऐसी स्थिति में वह स्वयं प्रकट हुए। गुरू जाम्भोजी विष्णु को इसी परमत्तत्व का पर्याय मानते थे।

गुरू जाम्भोजी जी पुर्नजन्म और कर्म-सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। चौरासी लाख योनियों का उन्होने मान्यता पूर्वक उल्लेख किया है। गुरू जाम्भोजी ने कहा कि फल प्राप्ति अपनी-अपनी करनी के अनुसार होती है, इसमें विष्णु का कोई दोष नही है। जैसी खेती की जायेगी, फसल भी वैसी ही मिलेगी। उन्होने कर्मो की दोहरी महता बतलाई है। अच्छा जन्म और जीवन पुण्य कर्मो के कारण मिलता है इस जन्म में किये गये सत्कर्म आगे अच्छा फल देते है। जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाने का सतत् प्रयास करना चाहिए। आवागमन से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा पाना और स्वर्ग में वास करना ही मोक्ष है जो जीव का चरम प्राप्तव्य है इसी को ''अनोपाव मागूं''- अपुनर्भव का मार्ग कहां है।

गुरू जाम्भोजी में श्रीभगवत् गीता प्रति बड़ी निष्ठा थी। उसे अन्य काव्य ग्रन्थों में सर्व श्रेष्ठ मानते है। गुरू जाम्भोजी ने गीता में निष्काम कर्मयोग का दृष्टान्त किया है-किन कारणों से विदुर की तो मुक्ति हुई और कर्ण जैसे दानी को इस संसार में पुनः आना पड़ा। एक कवि ने गुरू जाम्भोजी से प्रेरित होकर साखी द्वारा भगवतगीता के बारे में कहा है-

''भागवत गीता गाय, ग्रंथ नहीं गीता समों''
भागवत पूरो, पुराण सुणिया ही सांसो मिटे''

परमात्मा शुभ कार्यो को करने के लिये, अन्यायियो के दमन और धर्म रक्षार्थ अवतार धारण करता है। गुरू जाम्भोजी के यहां आने का कारण भी सबदवाणी में बताया गया है। सतयुग में भक्त प्रह्वलाद के उद्धार के लिए भगवान ने नृसिंह का रूप धारण किया था। उस समय तेतीस कोटि जीव प्रह्वलाद भक्त के अनुयाई थे। उनमें से पांच कोटि अनुयायियों को हत्या हिरणयकश्यप ने कर दी थी। उसके मरणोपरांत प्रह्वलाद ने इन तेतीस कोटि अनुयायिों के उद्धार का वचन भगवान से मांगा। उन्होने सत्य, त्रेता द्वापर और कलियुग-चारों युगों में उनके उद्धार का वचन दिया। इस तरह पांच कोटि जीव प्रहलाद के साथ, सात कोटि जीव राज हरिश चन्द्र के साथ, नौ कोटि जीवों का धर्मराज युधिष्ठिर के साथ उद्धार हुआ। बाकि बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ कलियुग में गुरू जाम्भोजी जी का आना हुआ।

गुरू जाम्भोजी सबदवाणी में साधना

साधना के क्षेत्र में गुरू जाम्भोजी का विशिष्ट स्वर जप-साधना है। उन्होने सबद वाणी में विष्णु नाम के स्मरण अथवा जप की महिमा बड़ी निष्ठा और आग्रह के साथ बताई है गुरू जाम्भोजी ने बतलाया कि विष्णु-विष्णु का जप करते रहने से अनन्त गुणा है, और मरोणपरान्त मोक्ष प्रप्ति होती है। उन्होने सबद वाणी में कहा है कि हे प्राणी! तूने विष्णु-विष्णु का जप नही किया और प्रलोभनों में ही उलझा रहा, तूने यह नही सोचा कि घड़ी-घड़ी, पहर-पहर, रात-दिन तेरी आयु घट

रही है। इसलिए तू विष्णु का जपकर, क्योकि इसी के द्वारा ही आत्मोपलब्धि सम्भव होगा। तू विष्णु का जाप कर तुझे मृत्यु एवं आवागमन से छुटकारा मिल जायेगा। गुरू जाम्भोजी ने विष्णु जाप को सब के लिए एक समान परमावश्यक कर्तव्य मानकर उसे सर्वाधिक महत्व दिया। इस सम्बन्ध में उनका मूल मन्त्र है–हृदय में तो विष्णु का जाप करों और हाथ से कार्य करो–

''हिरदे नांव विष्णु का जपो हाथे करो टवाई''

गुरू जाम्भोजी ने परमत्तत्व के लिए विष्णु के अतिरिक्त औ3म्, पारब्रह्म परमेश्वर नारायण, हरि, राम–सतगुरू, कृष्ण, श्याम, लक्ष्मण, परशुराम, रहीम व अल्लाह आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे सिद्ध होता है कि वे किसी मत–मतान्तर अथवा दृष्टि–विशेष के प्रभाव में सीमित नही थे। जिस प्रकार गुरू जाम्भोजी ने परम तत्व, मुक्ति, पुर्न जन्म, एकान्त निष्ठा, विष्णु जाप, योग साधना आदि के विषय में अपने उपदेश दिये है, उसी प्रकार उन्होने साधारण कोटी के उक्त लोगों का अंहकार और पांखड के परित्याग के साथ–साथ कथनी एवं करनी में सांमजस्य रखने, दुनिया की देखा–देखी आदि को फेर में ने पड़कर अपने गुरू के उपदेशानुसार अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए श्रमशील बनने और कर्ममय जीवन यापन करने आदि से सम्बन्धित अनेक बातों की ओर बार–बार ध्यान आकर्षित किया है।

गुरू जाम्भोजी ने जन साधारण को अपनी सबदवाणी द्वारा चेताया और कहा कि घोर कलयुग चल रहा है, हे लोगों चेतो, सुपथ पर चलकर ही पार पहुंचा जा सकता है।

संक्षिप्त सार

गुरू जाम्भोजी की जीवन पद्धति और कार्य प्रणाली से स्पष्ट है कि महान कर्मयोगी थे उनका प्रयास मान–मात्र को ऊंचा उठाने और उसे कल्याण की ओर अग्रसर करने का था। उन्होने अपनी ज्ञानमयी वाणी से समाज को सुसंस्कृत और आदर्श समाज बनाने का यत्न किया था। उनकी वाणी में दृढ़ता, स्पष्टवादिता और ओजस्विता थी। वे बिना किसी लाग–लपेट के, सार्थक, संक्षिप्त और स्पष्टता से बात कहते है और मर्म को छूते थे असंगत, अनैतिक, अमंगलकारी और कुप्रभावी बातों पर गुरू जाम्भोजी कभी झुकते नही थे वे झुकते है तो गुणो के आगे। गुणों का सम्मान मनुष्य का प्राथमिक गुण है।

''सहजे, शीले, शब्दे, नादे वेद, तिहि गुरू का अलिंकार पिछाणी।'' मेरा सबद खोजो ज्युं शब्दों शब्द समाई

सबद नं० 1 से 14 गुरू जम्भेश्वर सबदवाणी में धर्म शिक्षा, संस्कार, शिष्टाचार, ज्ञान वैराग्य भक्ति योग नीति सदाचार आदि सभी विषयों का विवेचन

किया गया है। सबदवाणी में सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड की चर्चा गई है। आदि-अनादि काल से आज तक भगवान के अवतार, वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, गीता, गुरू ग्रंथ सभी सबद वाणी में समाहित है। सबदवाणी में सम्पूर्ण वेदों का सार-संग्रह है सबदवाणी भक्ति, वैराग्य विरक्तता का अनुपम संग्रह है। सबदवाणी का एक भी सबद सद् उपदेश से खाली नही है। सबद-23 में धर्म अचारे सतगुरू तुठे पाइये। अर्थात धर्म पूर्वक आचारण करने से गुरू संतुष्ट होता है, तभी मोक्ष की प्राप्ती होती है। यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

विशालता, सामाजिकता और उदात्त भावना का पोषण होता है। गुरू जाम्भोजी ने स्वयं ऐसा किया और दूसरों को इसकी शिक्षा दी। गुरू जाम्भोजी की सबदवाणी का महत्त्व जितना उस समय था, उतना आज भी है और आने वाले समय में इनका महत्व और अधिक बढ़ जोयगा। उनके द्वारा कही गई वाणी का सम्बन्ध किसी काल, स्थान एवं जाति विशेष से न होकर सम्पूर्ण मानव जाति से है। उनकी वाणी पूर्णत: वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक है। इन पर चलकर मनुष्य बहुत ही सरल तरीके से जीवन जी सकता है। इसी वजय से 500 वर्षो से अधिक समय होने के बावजूद, उनकी वाणी का स्वर कभी मन्द नहीं पड़ा, बल्कि अनकी महत्ता बढ़ती जा रही है। उनकी सबद वाणी समाज की अनमोल धरोहर है। सबदवाणी पर कितने भी शोध किये जा सकते है। सबद वाणी का प्रचार-प्रसार होता रहना चाहिए।

ग्रा.पो. सदलपुर
जिला-हिसार (हरि.)
मो.-9416131047

भगवान श्री गुरु जम्भेश्वर जाम्भाणी साहित्य के प्रेरणा स्रोत

पृथ्वी सिंह बैनीवाल बिश्नोई

साहित्य किसी समाज अथवा राष्ट्र का दर्पण होता है, जो आगामी पीढ़ी के सन्मुख फिल्मों के चल-चित्रों की तरह प्रस्तुत कर उनके पूर्वजों की मान मर्यादा, आचरण, उनके चरित्र, उनके सांस्कृतिक मूल्यों और स्वीकृत नियमों से अवगत करवाता है। जब हम किसी भी घटना या इतिहास का वर्णन करते हैं तो उस घटना या इतिहास से सम्बन्धित पात्र की पूरी तस्वीर दर्पण की तरह हमारे सामने घूमने लगती है। जब हम भक्त प्रह्लाद की कहानी या इतिहास पढ़ते हैं तो उसके साथ होने वाले हर जुल्म की तस्वीर हमारे सामने उपस्थित हो जाती है। जब हम त्रेतायुग के हरिश्चन्द्र या भगवान श्री राम की कथा सुनते हैं तो उसकी तस्वीर हमारे सामने घूमने लगती है। जब हम द्वापर युग के भगवान श्री कृष्ण अथवा कौरवों-पाण्डवों की कहानी सुनते या पढ़ते हैं तो उसकी तस्वीर दर्पण की तरह हमारे मानस पटल पर घूमने लगती है, यही कारण है कि साहित्य को दर्पण की संज्ञा दी जाती है। यही नहीं मनसा वाचा कर्मणा जो मानव और समाज का हित कर सके वही साहित्य होता है। ''**मचलति एकेन पादेन, तिष्ठति एकेन मतिमाने।।**'' अर्थात बुद्धिमान लोग एक पैर से चलते हैं तो दूसरा पैर जमाकर स्थिर रखते हैं, यदि कोई एक साथ दोनों पैर उठायेगा तो गिर पड़ेगा। साहित्य भी हमारा वही जमा हुआ स्थिर चरण है।

साहित्य पर प्रकाश डालते हुए विद्वान साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि ''**जिस जाति का अपना कोई साहित्य नहीं होता, वह बर्बर हो जाती है।**'' इसका अर्थ यह कि साहित्य सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करता है। उसका पोषण करते हुए पूर्व पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक पूर्वजों द्वारा स्वीकृत आचरण, मान मर्यादा, स्वाभिमानी चरित्र, उनके सांस्कृतिक मूल्यों और सुखद, शानदार जीवन जीने के मार्ग दर्शक नियमों को पहुँचाने वाला संवाहक या संचार का साधन होता है। साहित्य समाज राष्ट्र को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाने वाला प्रकाशमान सूर्य होता है। हमारे ऋषि-मुनि, विद्वान साहित्यकार लेखकों-कविजनों ने हमारे शिरोमणि बिश्नोई पंथ और प्राणी मात्र की भलाई के लिए साहित्य रूपी महान धरोहर एवं ज्ञान भण्डार हमारे मार्ग दर्शक के रूप में छोड़कर गये हैं। अपने शानदार साहित्य की उपस्थिति में मानव कभी दानव नहीं बन सकता। जब दानव नहीं होगा तो सात्विक बुद्धि वाला प्राणी मात्र के लिए सुखदायक होता है। वह सदैव साहित्य के मार्ग दर्शन से प्रेरणा लेकर सही पथ पर चलेगा।

हमें गर्व हैं कि-साहित्य की दृष्टि से यह शिरोमणि बिश्नोई पंथ बहुत ही समृद्धशाली एवं सौभाग्यशाली हैं क्योंकि इस समाज अर्थात् महान पंथ के पास साहित्य की ज्ञान राशि का विपुल भण्डार यानि पूँजी मौजूद है। श्री हरि विष्णु अवतार और शिरोमणि बिश्नोई पंथ के प्रवर्तक श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान (भगवद् अर्थात भगवान, परमेश्वर, विष्णु, ईश्वर, शिव, बुद्ध, सूर्य कार्तिकेय, वेदव्यास, पूजनीय और गुरु होता है और वही परम गुरु जाम्भोजी है) श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान स्वयं ही जाम्भाणी साहित्य के प्रेरणा स्रोत रहे हैं इसी कारण बिश्नोई साहित्य को जाम्भाणी साहित्य कहा जाता है। जाम्भाणी साहित्य भी पद्य और गद्य दोनों ही विधाओं में मौजूद है। पद्य में साखियाँ, आरतियाँ, छन्द और हरजस इत्यादि है, जबकि विभिन्न प्रकार का कथा साहित्य इत्यादि गद्य रूप में है। यह कहना भी कि पंथ के साहित्यकारों द्वारा रचित अधिकतर साहित्य काव्यमय ही है।

साखियाँ, आरतियाँ, छन्द और हरजस श्री गुरुदेव की विद्यमानता में रचे या सृजित किये गये हैं उन्हें हजूरी साखियाँ, आरतियाँ, छन्द और हरजस कहा जाता है। हजूरी कवियों में विशेष कर रेड़ोजी, चारण कवि, ऊदोजी नैण तथा अन्य अनेक अज्ञात कविजन आते हैं। उनकी लिखी हर रचना जाम्भाणी साहित्य के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनमें हजूरी कवि और महान संत रेड़ोजी का नाम सर्वप्रथम आता है। क्योंकि उनका निवास श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान के श्री चरणों में ही रहता था। जाम्भाणी साहित्य के प्रमाणों के अनुसार इनका जीवन काल विक्रमी सम्वत् 1530 से 1620 बताया जाता है। श्री हरि विष्णु गुरु जाम्भोजी के इस संसार से अन्तर्धान होने के बाद समाज के हजूरी साधु (महात्मा) रेड़ोजी की ही शिष्य परम्परा चली है।

महान संत रेड़ोजी के शिष्य नाथोजी, नाथोजी के शिष्य वील्होजी थे। इस तरह से यह साधु परम्परा अभी तक चली आ रही है। शिरोमणि बिश्नोई पंथ के पास महान धरोहर के रूप में शब्दवाणी जो वर्तमान समय में उपलब्ध एवं प्रचलित है, वह भी महात्मा रेड़ोजी के कारण है, क्योंकि उपलब्ध शब्दवाणी महात्मा रेड़ोजी को कण्ठस्थ थी। यह वही शब्दवाणी है जिसे रेड़ोजी ने अपने परम शिष्य नाथोजी को कण्ठस्थ करवाई और आगे चल कर नाथोजी के अपने परम भक्त शिष्य महात्मा वील्होजी ने सर्वप्रथम शब्दवाणी को कण्ठस्थ किया और फिर उसे लिपिबद्ध किया गया था। हजूरी संत कवि रेड़ोजी रचित मात्र एक साखी उपलब्ध है। इस 20 दोहों की साखी के प्रथम दोहे में वे सम्भराथल धोरे पर श्री गुरु जाम्भोजी को लक्ष्य कर उन्हें सर्व-शक्तिमान एवं सर्वस्व मानते हुए सभी सन्तों भक्तों का मार्ग दर्शन करते हुए बताते हैं कि श्री गुरु जाम्भोजी यहाँ आये हैं। यह एक बहुत बड़ी और आश्चर्यजनक घटना है। वे कहते हैं खुद गुरु जाम्भोजी एवं उनके कार्य दोनों ही आश्चर्य से भरे हुए हैं या आश्चर्ययुक्त है। उसी अद्‌भुत दिव्य अचम्भे से युक्त श्री हरि से प्रेम करो तथा उसी का ध्यान करो। रेड़ोजी ने अपनी एक मात्र साखी में इसी भाव को व्यक्त किया है।

अपनी 20 दोहों की साखी के अन्तिम एवं 20वें दोहे में वे बताते हैं श्री गुरु जाम्भोजी की कृपा से रेड़ोजी बोल रहे हैं और कहते हैं कि उसी हरि के श्री चरणों में चित लगावो। श्री हरि विष्णु गुरु जाम्भोजी का लक्ष्य कर जाम्भाणी साहित्य सृजन में समाज के महान समर्पित सन्त कवि ऊदोजी नैण का योगदान भी उल्लेखनीय है। उनका जीवन काल विक्रमी सम्वत् 1505 से 1593 तक का प्रमाण जाम्भाणी साहित्य में मिलता है। शिरोमणि बिश्नोई साहित्य में ऊदोजी नैण की जीवन गाथा बहुत प्रेरणा दायक तथा अति रुचिकर रही है। उनकी साहित्यिक चर्चा से पूर्व उनके जीवन पर प्रकाश डालना उचित होगा। बिश्नोई पंथ में शामिल होने से पूर्व गाँव गोठ माँगलोद में एक महमाई (महामाई) के मन्दिर में पूजा-अर्चना कर अपना जीवन यापन करते थे। देश के पूर्व गँगापार के बिश्नोइयों से विष्णु अवतार गुरु जाम्भोजी के चमत्कार एवं उनकी अपार महिमा के बारे में सुनकर बहुत प्रभावित हुए और पंथ शिरोमणि बिश्नोई जमात के साथ गुरुदेव के पास सम्भराथल पर आये थे। जाम्भाणी साहित्य के प्रमाणों के अनुसार ऊदोजी गुरुदेव जी को नतमस्क होने वाली श्रद्धालुओं की पंक्ति में सबसे पीछे खड़ा हो गया था ताकि सबके अन्त में उन्हें नमस्कार करके चला जायेगा। लेकिन श्री गुरु देव तो सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक होने के कारण सब कुछ जानते थे।

गुरुदेव के श्रीमुख से गुरुवाणी का ज्ञानामृत ग्रहण करके ऊदोजी तृप्त ही नहीं हो रहे थे। श्री गुरुदेव जानते थे कि ऊदोजी नैण के अन्दर एक महान काव्य सृजन के गुण मौजूद है, तभी खुद खुदा श्री गुरुदेव ने ऊदोजी को सम्बोधित करते हुए पुकारा कि-हे ऊदो तुम हमसे इतनी दूर क्यों बैठे हो, जरा पास तो आओ। ऊदोजी अपनी पूर्व की करणी पर लज्जित होते हुए सामने आया और हाथ जोड़ कर श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान के चरणों में बैठ गया। तभी गुरुदेवजी ने कहा हे ऊदो! कोई भजन, साखी इत्यादि तो सुनाओ। तब ऊदोजी ने हाथ जोड़ कर गुरुदेव से विनती करते हुए कहा हे गुरुदेव मैं केवल महमाई के ही गीत, भजन जानता हूँ यदि आप कहो तो वो मैं सुना सकता हूँ और तो मैं कुछ नहीं जानता। तब गुरुदेव ने कहा नहीं भाई! कुछ पिता के भी सुनाओ, लेकिन ऊदोजी कुछ भी नहीं जानता था। इस पर आस-पास बैठे लोग हँस पड़े और ऊदोजी नैण भी शर्मिन्दा होने लगा। तभी श्री गुरुदेव ने बड़े ही स्नेह के साथ ऊदोजी के सिर पर हाथ रखा। विष्णु श्री जाम्भोजी के हाथ का सिर पर स्पर्श होते ही उनका अनुभव ज्ञान जाग गया और उन्होंने अपनी प्रथम साखी वहीं पर गाई।

इसी प्रकार महात्मा ऊदोजी द्वारा सृजित 15 साखियाँ और चार आरतियाँ जाम्भाणी साहित्य को समृद्ध बना रही है। इन रचनाओं के अतिरिक्त भी उन्होंने हरजस, कूकड़ी, सौहलो, जखड़ी, छन्द और आख्यान कथाओं आदि की रचना की

थी। ऊदोजी बिश्नोई पंथ के सर्वमान्य कवि रहे हैं। हजूरी कवि होने के कारण उनकी रचनाएं बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रमाणिक भी है। उनकी साहित्य सृजना कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

गुरुदेव के अनेकानेक प्रसिद्ध हजूरी साहित्यकार लेखक एवं कविजन शिष्य हुए थे। उन महान साहित्यकार और विद्वान कवियों ने गुरु जम्भेश्वर भगवान के अलौकिक कार्यों एवं व्यक्तित्व को लक्ष्य करके अति उत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ काव्य की रचना की थी। जाम्भाणी साहित्य सृजन गंगा की यह अमृतमय पावन धारा गुरु जाम्भोजी की विद्यमानता से लेकर लगभग पाँच सौ वर्षों से निरन्तर बहती चली आ रही है। बिश्नोई पंथ मे एक सौ से भी अधिक महान साहित्यकार और कविजन हुए हैं, जिनका काव्य भाव और कला की दृष्टि से सर्वोच्च शिखर पर स्थित बहुत ही उच्च कोटि का है। उन कवियों द्वारा रचित-सृजित जाम्भाणी साहित्य सम्पूर्ण साहित्य जगत की अमूल्य धरोहर है। यही नहीं जाम्भाणी साहित्य की एक और विरल विशेषता यह भी रही है कि गत पाँच सौ वर्षों से जहाँ हिन्दी साहित्य में अनेक प्रवृतियां बदली है, परिवर्तित हुई है, लेकिन जाम्भाणी साहित्य अपने सिद्धान्तो जैसे आचरण प्रधान कर्म, नैतिकता, अध्यात्म और भक्ति आदि पर सदैव अडिग रहा है।

जाम्भाणी साहित्य में शब्दवाणी के बाद साखियों को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त है। साखी राजस्थानी बोलचाल की मरुभाषा का शब्द है जिसे संस्कृत में साक्षी कहा जाता है। जिसका अर्थ होता है गवाही देना अर्थात् साखियां जाम्भाणी साहित्य की गवाही देती है। सभी साखियाँ गुरु जाम्भोजी को लक्ष्य करके सन्तों भक्तों ने उनकी महिमा स्वरूप सृजित की गई है। इनमे से कुछ साखियां गुरुदेव की विद्यमानता में ही कही या सृजित की गई और कुछ अन्य साखियाँ उत्तर काल में श्री गुरुदेव के अन्तर्धान होने के बाद सृजित की गई और अब भी हो रही है।

परमानन्द जी का पोथा जाम्भाणी साहित्य का महत्वपूर्ण आधार और सबसे प्राचीन एवं प्रमाणिक भी है। सबसे बड़ी पोथी तो वील्होजी की थी, उसके बाद सुरजनजी, केसोजी, मुकनूं जी, सुरताणजी आदि के किए हुए संग्रह परमानन्द जी को प्राप्त हुए थे। उन्होंने दसुंधी दास, खीराज, रासोजी एवं सुरतांण जी से आज्ञा एवं उनसे प्रमाणित करवा करके यह पोथा परमानन्द जी ने लिखा था। यदि परमानन्द जी इस पोथे का संग्रह नहीं करते तो शायद वे प्राचीन रचनायें पोथीयां नष्ट हो जाती और समाज के पास साहित्य का भण्डार न बचता। उन्होंने पोथो ग्रन्थ ज्ञान लिख कर समाज के जाम्भाणी साहित्य की रक्षा की है। यही नहीं उनके बाद जाम्भाणी साहित्य की अनेक विधाओं की विशेष पहचान बनाये रखने साहित्य रक्षक यौद्धा के रूप में एक और महान सन्त का नाम सोने के अक्षरों में लिखने योग्य प्रतीत होता है। वे हैं महा विद्वान गुरुजी जाम्भाणी साहित्य अकादमी के संस्थापक अध्यक्ष स्वामी श्री कृष्णानन्द जी आचार्य।

पोथो ग्रन्थ ज्ञान के बारे में स्वयं महात्मा परमानन्द जी ने भी प्रमाण देते हुए लिखा है कि :-

बड़ पोथी गिण वील्ह की, दूजी सुरजन दाख।
तीजै मुकनू मुझ गुरु, सुरताण पिता मुझ ऑख।।1।।
दसुधी दासो खीराज जी, रासो जी सुरताण।
ऐ पांचु परत्या बाँच कै, पोथो लिख्यो प्रवांण।।2।।
कै बात सुणी साधां कनां, कै पोथियां मां परवांणि।
परमाणंद सुरतांण रे, लिखिया सबद सुजांणि।।3।।।
दीठा वाच्या मैं लिक्ष्या, सासतर मां था सोय।
ग्याता कोई वांचि कै, दोस न देइयो मोय।।4।।
मैं तो मांड्या मोह कर, पुसतक देखि विचारि।
सबदां रा अर्थ अनन्त है, जाणै सिरजण हारि।।5।।
कचा सब संसार है, सचा सबद ततसार।
परमाणंद सुं परम गुरु, राखो हेत विचार।।6।।

साखी ही नहीं पालनहार श्री हरि विष्णु गुरु जाम्भोजी को ईष्टदेव के रूप में मनाते हुए उनकी स्तुति रूप में कहीं मंगलाचरण लिखा तो कहीं ग्रंथ विसन विलास, कहीं हरिजस लिखा तो कहीं कथा अवतार पात, कथा गूगलिये की, कहीं दूणपुर तो कहीं कथा झोरड़ की, कहीं बाल लीला दी है तो कहीं कथा लोहा पांगल की, कहीं कथा ऊदै अतली की है तो कहीं जम्भ सरोवर की, कहीं ज्ञानचरी है तो कहीं जम्भसार, कहीं कथा चितौड़ की है तो कही कथा जेसलमेर की, कहीं कथा सैंसे जोखाणी की है तो दस अवतारों का वर्णन है तो कहीं गीत है, कहीं कवित बावनी का है तो कहीं कथा सुरगा रोहणी, कहीं प्रह्लाद चरित है तो कहीं कवित, छन्द, दोहे, आख्यान काव्य, कथाएं, हरिजस और आरतियां इत्यादि। कहने का अभिप्राय: यह है कि लड्डू को किसी भी तरफ या कहीं से खाओ या चखो मीठा ही होता है अर्थात् किसी भी कवि की कोई भी रचना उठाकर पढ़ने पर अपार शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। इस शिरोमणि पंथ में सैंकड़ों महान् विद्वान कवि, लेखक साहित्यकार हुए हैं। उन सभी का साहित्य सुजन का लक्ष्य केवल और केवल श्री गुरु जाम्भोजी ही थे।

पता- म.नं.189.एफए सैक्टर-14,
पंचकूला-134113 (हरियाणा)
मो.-94676-94029

सबदवाणी : समाजशास्त्रीय आदर्श

विनोद कुमार भादू

दौर-ए-तरक्की के अंदाज कुछ निराले हैं
ज़हन में अँधेरा और सड़कों पे उजाले हैं।

भौतिकवादी युग में इस यथार्थ की मुखरता परिलक्षित होती है। औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम स्वरूप मनुष्य ने जो उन्नति हासिल की है, वह नि:सन्देह मनुष्य की प्राप्ति है, परन्तु दूसरी और भौतिकता की चमक में मानव सभ्यता की ध्वन्सोन्मुखता भी बहुत बड़ी सच्चाई है। आधुनिक युग में सार्वभौम मानव-मूल्य और सांस्कृतिक-मूल्य धीरे-धीरे व्यावहारिक जीवन से लुप्तप्राय: होकर महज ग्रन्थों, पोथियों तक सीमित हो रहे हैं। इस संक्रमणकालीन दौर में मूल्य स्थापना हेतु मनुष्य समाज को सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति की आवश्यकता अवश्यंभावी है।

व्यक्ति और समाज अन्तर्गुम्फित सत्ता है। व्यक्तियों का समूह ही समाज की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। व्यक्ति और समाज को पृथक-पृथक करके किसी आदर्श की स्थापना नहीं की जा सकती है। व्यक्ति के समूह यानी समाज का प्रारूप कैसा हो यही प्रश्न आदर्श की सत्ता को प्रतिपादित करता है। आदर्श किसी एक युग तक उतरदायी न होकर युगों-युगों तक मानव जीवन को दिशा प्रदान करता है। मध यकालीन दौर मानव जाति के पतन का यथार्थ था। उस यथार्थ के बीच में आदर्श को मंडित करने का प्रयास संतों द्वारा हुआ। इस काल में रामानंद और उनके शिष्यों की समर्थ परम्परा का उतरी भारत में विशिष्ट योगदान रहा है। जम्बू प्रदेश में गुरु जम्भेश्वर का अवतरित होना उस युग की महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों से लड़ने के लिए मानव समाज के सामने आधारभूत वैचारिकता का अभाव था। गुरु जम्भेश्वर ने अपनी दूरदर्शिता से जिस आदर्श समाज की परिकल्पना की, वह अनुपम थी। गुरु जम्भेश्वर का अवतरण (सम्वत् 1508)[1] उस समय हुआ जब समाज अनेक विसंगतियों और विडम्बनाओं से घिरा हुआ था। धार्मिक-पाखंड, आपसी वैमनस्य, अज्ञानता, अनैतिकता, वर्ण-व्यवस्था, धर्मान्धता जैसी विकृतियों का बोल-बाला प्रभावी रूप में व्याप्त था। गुरु जम्भेश्वर ने मानव सभ्यता को उर्ध्वगामी बनाने हेतु जो उपदेश दिए वे समाज हितकारी थे। उनकी वाणी में मनुष्य के आंतरिक व बाह्य शुद्धिकरण का आह्वान दिखाई देता है। ग्राह्य-भाव और त्यागवृत्ति के मद्देनजर उन्होंने उन ध ाारणाओं को सर्वग्राही बताया जो मानव समाज को विकासोन्मुख बनाए और उन कुत्सित

वृत्तियों को त्यागने पर बल दिया जो समाज को पतनोन्मुखी बनाती है। 'सबदवाणी' में समाज शास्त्रीय आदर्श की संरचना इसी भाव को पुष्ट करती है।

अनुकूल का संकल्प व प्रतिकूल का त्याग 'सबदवाणी' की मूल संवेदना है। प्रेम, दया, ममता, स्नेह, भ्रातत्व भावना संतोष आदि वृत्तियों को मनुष्य का आभूषण माना है। इन वृत्तियों को धारण करने से व्यक्तित्व के साथ-साथ सामाजिकता भी सुदृढ़ होती है।

सदा संतोषी सत उपकरणां, म्हे तजिया मान अभिमानूं।।[2]

अर्थात् मनुष्य को अभिमान त्यागकर संतोषवृत्ति धारण करना चाहिए। व्यर्थ वाद-विवाद में न उलझकर व्यक्ति को नैतिक जीवन व्यतीत करना चाहिए।

वाद-विवाद फिटाकर प्राणी, छोडो मनहट मन को भाणों।।[3]

नैतिकता के लिए संयम/शुचिता का पालन करना आवश्यक है। संयम/शुचिता बाह्य स्तर तक सीमित न होकर आंतरिक भी होनी चाहिए। आत्मिक शुद्धि और संयमी मन से ही अनूकूलता के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। मन चंचल होने के कारण संसारिकता में अधिक रमता है। जिसके प्रभाववश पंचेन्द्रियां विलास-क्रम मे रत रहती हैं। गुरु जम्भेश्वर ने बाह्य व आंतरिक शुचिता पर बल देते हुए कहा है-

तन मन धोइये, संजम होइये, हरष न खोइये।[4]

संसारिकता का मोह मनुष्य को लालायित करता है। संसारिक सुखों को भोगने के लिए मनुष्य पथभ्रष्ट होकर अपना लक्ष्य विस्मृत कर देता है। ऐसे पथभ्रष्ट लोगों को समझाते हुए गुरू जम्भेश्वर ने कहा है कि इस संसार में कोई भी स्थिर नही है। यह संसार क्षणभंगुर है।

इस गढ़ कोई थिर न रहिबा, निश्चै चाला गया गुरु पीरू।[5]

क्योंकि मृत्यु रूपी काल हर क्षण आपके समीप आ रहा है। समय रहते ही हमें ईश्वरोन्मुख होकर सदाचरण करना चाहिए-

क्षण-क्षण आव घटती जावै, मरण दिनो दिन आवै।[6]

गुरू जम्भेश्वर ने समाज के बीच रहकर विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। वर्ण-व्यवस्था समाज को विश्रृंखलित किए हुए थी। लोक के प्रति गहरी आस्था रखने वाले मध्यकालीन संतो ने समाज में प्रचलित जातिगत भेदभाव के वैशम्य को अनुभव किया जाति के आधार पर मनुष्य के कई वर्ग बने हुए हैं। वर्ग आधारित समाज में एक वर्ग दूसरे वर्ग को हेय दृष्टि से देखता है। जाति के बलबूते पर मनुष्य, मनुष्य से दूर होता चला गया। जाति की इस 'दीमक', जो लोक को धीरे-धीरे अन्दर ही अन्दर खाए जा रही है, को गुरु जम्भेश्वर ने एक सिरे से खारिज

कर दिया और सम्पूर्ण सृष्टि को परमात्मा की सृजना मानकर समता का संदेश दिया। गुरु जम्भेश्वर का मानना है कि एक ही रक्त माँस से सभी का शरीर बना है तो फिर ऊँच-नीच का भेद क्यों? जातीय समता के विषय में 'सबदवाणी' में कथन है

तइया सांसू तइया मांसू तइया देह दमोई।
उत्तम मध्यम क्यों जाणीजै बिबरस देखो लोई।।[7]
उत्तम कुली का उत्तम न होयबा कारण किरिया सारूं।।[8]

समाज में सद्गुणों का सम्मान होना चाहिए। गुरु जम्भेश्वर ने तो यहां तक कहा है कि हम तो सद्गुणी के शिष्य हैं-

गुणियां म्हारां सगुणा चेला, म्हे सगुणा का दासूं।[9]

नीति कथन का सामाजिक जीवन में अत्यधिक महत्व है। नीति कथन लोक-जीवन के क्रियाकलापों की उपज होती है। गुरु जम्भेश्वर ने नीति कथनों के अंतर्गत जीवनानुभवों को व्याख्यायित किया है। जो समाज को सीख प्रदान करते हैं-

लोहा नीर किसी बिध तिरबा, उत्तम संग स्नेही।।[10]

नीति कथनों के साथ-साथ संगति के महत्व को भी 'सबदवाणी' में रेखांकित किया गया है-

भलियो होय सो भली बुध आवै, बुरियो बुरी कमावै।।[11]

'भक्ति' और 'कर्म' स्वस्थ समाज का मूलाधार है। सभी संत अपने सांसारिक कार्य करते हुए अध्यात्म साधना मे लीन रहे। जुलाहा कबीर ताना बुनते रहे, रैदास चमड़ा गाँठते रहे, नानक खेती करते रहे, सेन भक्त, नामदेव, पीपा आदि अनेक संत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। संतो के उपदेशों में व्यक्तिगत जीवन के उदाहरणों से क्रियात्मक पक्ष प्रभावी रहा। 'भक्ति' के क्षेत्र में संतो ने आडम्बरों का पुरजोर विरोध किया। तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा, कर्म-कांड, भेषादि, बाह्याचारों का खंडन किया। गुरु जम्भेश्वर ने भक्ति का सहज मार्ग बताते हुए धार्मिक पाखंडों को नकार दिया।

अडसठ तीर्थ हिरदां भीतर, बाहर लोकाचारूं।।[12]

तत्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु जम्भेश्वर ने निर्गुण जाप को अनिवार्य माना है। विष्णु के जाप से ही मोक्ष का अधिकारी बनकर जीवन-मरण के आवागमण से छुटकारा पाया जा सकता है-

विष्णु-विष्णु तू भण रे प्राणी, पैंके लाख उपाजूँ।
रतन काया बैकुण्ठे बासो, तेरा जनम मरण भय भाजूँ।।[13]

संतो ने कर्म त्यागकर वैराग्य धारण करने की बात कभी नहीं की उनका मानना है कि मनुष्य को अध्यात्म मार्ग पर चलते हुए भी लौकिक कर्मो का त्याग नहीं करना चाहिए। निष्काम कर्म की भावना में समाज कल्याण में निहित हैं। गुरु जम्भेश्वर की वाणी में 'अध्यात्म' और 'कर्म' का सुमेल स्पष्टत: लक्षित है–

हृदय नाम विष्णु को जंपो, हाथे करो टवाई।। [14]

गुरु जम्भेश्वर ने स्वानुभूति एवं आत्म चिन्तन के बल पर साधना मार्ग में कोरी उपदेशवादी प्रवृति को सुसंगत नहीं माना। वे दूसरों को उपदेश मात्र न देकर आचरण को आदर्श रूप मे प्रस्तुत करने के पक्षधर थे। कथनी और करनी के ऐक्य का महत्व 'सबदवाणी' में इस प्रकार दर्ज है–

पहली किरिया आप फरमाइये, तो औरां न फुरमाइये।।[15]

समाजचेता के रूप में गुरु जम्भेश्वर की दृष्टि व्यापक थी। समाज की अवधारणा से उनका आशय मानव समाज तक सीमित न रह कर मानवेत्तर प्राणियों को भी समाज में परिगणित करने का रहा है। सृष्टि में जीव मात्र के प्रति प्रेम और दया का भाव उनके समूचे चिन्तन में उभरा है। पशु–पक्षी, पेड़–पौधों को भी गुरु जम्भेश्वर ने समाज का अविभाज्य अंग मानकर उनकी रक्षार्थ लोगों को जागरुक किया। '**जीव दया पालणी**' व '**सिर सांटै रूंख रहै तो भी सस्तौ जाण**' के माध्यम से उन्होंने अहिंसा पर बल दिया। पर–पीड़ा को आत्मसात् करने का आह्वान करते हुए गुरु जम्भेश्वर ने कहा है–

जोर जरब करद जे छाडो, तो कलमा नाम खुदाई।[16]

सूल चूभीजै करक दुहेली, तो हे हे जायो जीव न घाई।[17]

इस प्रकार साहित्य सिद्ध करता है कि जम्बू प्रदेश में वैज्ञानिक जीवन की रूपरेखा बहुत पहले गुरु जम्भेश्वर द्वारा तैयार की जा चुकी थी। जिस वैज्ञानिक प्रगति का दावा आधुनिक काल में पाश्चात्य चिंतक करते हैं, वह केवल भौतिक विकास है। जबकि जाम्भाणी साहित्य आत्मशुद्धि और मानसिक विकास की समूचित व्यवस्था है। निष्कर्षत: राम विलास शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है–'संत साहित्य की सीमाएं उस बीते युग के साथ छूट जाएगी। उसके प्रगतिशील तत्व भावी संस्कृति के प्रासाद में अनमोल रत्नों जैसे जड़े रहेंगे।'[18]

संदर्भ सूची

1 डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, श्री जाम्भोजी और जम्भवाणी मीमांसा, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (रजि:), श्री बिश्नोई मंदिर अबोहर, संस्करण 2011, पृष्ठ–2

2 कृष्णानंद आचार्य (टीकाकार), जम्भसागर, जाम्भाणी साहित्य अकादमी बीकानेर, संस्करण 2013 पृष्ठ-221
3 वही, पृष्ठ-210
4 वही, पृष्ठ-173
5 वही, पृष्ठ-177
6 वही, पृष्ठ-254
7 वही, पृष्ठ-108
8 वही, पृष्ठ-68
9 वही, पृष्ठ-168
10 वही, पृष्ठ-52
11 वही, पृष्ठ-254
12 वही, पृष्ठ-27
13 वही, पृष्ठ-253
14 वही, पृष्ठ-215
15 वही, पृष्ठ-82
16 वही, पृष्ठ-234
17 वही, पृष्ठ-38
18 राम विलास शर्मा, भाषा और साहित्य पृष्ठ-56

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
भाग सिंह खालसा कॉलेज
फॉर वुमैन, काला टिब्बा, अबोहर।

वैदिक वाङ्मय में भगवद्रूप मीमांसा और श्री जाम्भोजी

श्रीमती योगिता
शोध छात्रा (हिन्दी)

वैदिक वाङ्मय से हमारा अभिप्राय ऋक्, यजुः, साम और अथर्व वेदों के सपाथ-साथ उन अन्य ग्रन्थों से भी है जिनमें वेदों की विचारधारा को विकसित और पुष्ट किया गया है। चारों वेद, चार उपवेद, ग्यारह उपनिषद्, चार ब्राह्मण पंथ, छः दर्शन शास्त्र, स्मृति ग्रंथ, रामायण और गीता आदि इस श्रेणी में आते हैं। वैदिक साहित्य संसार के किसी भी अन्य साहित्य से प्राचीन और उत्कृष्ट है। ईश्वर, जीव, जगत, पुनर्जन्म, मृत्यु आदि का ज्ञान केवल ऋषियों द्वारा संचित धरोहर वेद ही दे सकता है।

कालपन्तर में गुरु जाम्भोजी ने समाज के बिगड़ते ढांचे को सुधारने के लिए मनुष्य को श्रेष्ठ जीवन पद्धति देने के लिए, धर्म की श्रेष्ठ संस्थापना के लिए स्वमुख से जिन नियमों और सबदों का प्रणयन किया वह कोई साधारण बातें नहीं थी बल्कि वेद, उपनिषद, दर्शन शास्त्रों का सार रूप है। वेद स्वतः प्रमाण है, ईश्वरीय वाणी है। गुरु जाम्भोजी ने भी वेद और नाद को परमेश्वर की निज वाणी कहा है -

गुरु मुख धर्म बखाणी, जिहिं के शब्दे नादे वेदे (स. 1)

अर्थात् परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में अनाहद नाद रूपी अव्यक्त वाणी में वेद ज्ञान पूर्व ऋषियों को दिया, वही वाणी भगवान जम्भेश्वर के श्री मुख से गुरूवाणी के रूप में व्यक्त हुई। उन्होंने अपनी वाणी को वेद कहा -

मोरा उपख्यान वेदूं, कण तत भेदूं।[2]

इसीलिए सबदवाणी को बिश्नोई जन पांचवा वेद कहते हैं। जिसमें जीव जगत और ईश्वर का ज्ञान निहित है। सूत्र रूप में शब्दों का निहितार्थ बहुत गूढ़ और विस्तृत है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में जो ईश्वर की कुशलता दिखाई देती है, वैसी ही कुशलता गुरू जी के सबदों में दिखती है। सबद बीज रूप में मिले हैं उन्हें बोना, सींचना पड़ेगा तब समझ आयेगा। सबद तो वाणी वट वृक्ष है, बस आकर बैठना है उसकी छांव में।

ईश्वर का स्वरूप :

ईश्वर का सच्चा स्वरूप कैसा है? उसका वास्तविक ज्ञान वेदमाता की शरण में जाने पर ही हो सकता है। वेद और वेदाधारित ग्रन्थों के अनुसार हम ईश्वर को निम्न प्रकार जान सकते हैं -

'ईश्वर एक है अनेक नहीं' - ईश्वर एक ही है, अनेक नहीं। एक ही ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा गया है। वेदों में एक ही ईश्वर के अनेक नाम बताये हैं। ये सब नाम उसके गुण, कर्म के आधार पर है, जैसे -

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तद् चन्द्रमा।

तदेव शुक्रं, तद् ब्रह्म स प्रजापति ताऽआपः।[3]

नीचे कुछ नामों की विशेषता बताते हैं –

ब्रह्म – सबसे बड़ा, विस्तृत

ब्रह्मा – सब जगत को बनाने वाला, ज्ञानी

शिव – कल्याण स्वरूप और सबका कल्याण करने वाला

रुद्र – दुष्ट कर्म करने वालों को दण्ड देकर रूलाने वाला

गणेश – सबका स्वामी, गणों का ईश

पिता – सबका पालक और रक्षक

देव – विद्वान, विद्यादि देने वाला

यम – सब प्राणियों के यथायोग्य फल देने वाला

भगवान – ऐश्वर्यवान

चन्द्र – आनन्द स्वरूप और सबको आनन्द देने वाला

विष्णु – वेवेष्टि व्यापनोति चराचरं जगत स विष्णुः

अर्थात् चर और अचर जगत में सर्वत्र व्यापक होने से वह विष्णु है और उसी से यह जगत उत्पन्न होकर विस्तृत हो रहा है।

ओ३म् – यह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। इससे उसके बहुत से गुण और नाम प्रकट होते हैं। यही उसका प्रधान और निज नाम है। अन्य सभी नाम गौण है।

वेद उपनिषद् दर्शनों आदि में प्रभु के ओ३म् नाम की महिमा गाई गई है। जैसे –

ओ खं ब्रह्म।[4]

अर्थ – आकाश के समान व्यापक, सबसे बड़ा, सब जगत का रक्षक ओ३म् है।

ओं कृतो स्मर।[5]

अर्थ – हे कर्मशील मनुष्य तू ओ३म् को याद रख।

ओं इति एतद् अक्षरम् उद्गीयम् उपासीत (छान्दोग्य उप.)

अर्थ – ओं जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है और किसी की नहीं।

तस्य वाचकः प्रणवः।[6]

उस ईश्वर का नाम ओ३म् है।

सर्वे वेदा यत पदमामनन्ति मपांसि सर्वाणि च यद वदन्ति

यदिचछन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते पद संग्रहेण ब्रमीमि ओं इत्येतत् – कठोपनिषद्।[7]

कठोपनिषद में ब्रह्म तत्व को आग्रहपूर्वक जानने की जिज्ञासा लेकर

बालक, नचिकेता यमाचार्य के पास गया, अनेक प्रलोभनों से भी वह विचलित नहीं हुआ, तब यमाचार्य उसे कहते हैं –

जिस शब्द को चारों वेद, परमात्मा की प्राप्त करने का साधन समझने हेतु बार-बार वर्णन करते हैं। जिसको जानने के लिए सब प्रकार के तप साधना योगादि बतलाये हैं तथा जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वह ज्ञान-ध्यान का साधन जानने योग्य पद संक्षिप्त में 'ओ३म्' है। केवल उसी को जानकर अन्य सब कुछ जान लिया जाता है।

हमारे व्यावहारिक जीवन में भी बालक के जन्म के समय जीभ पर 'ओ३म्' लिखा जाता है और मृत्यु के समय भी ओं नाम बोलने की शिक्षा वेद ने दी है – ओं कृतो स्मर। तात्पर्य है कि मनुष्य को अपना जीवन ओं से प्रारम्भ करके ओं स्मरण के साथ ही समाप्त करना चाहिये।

गुरु जी भी कहते हैं –

ओं शब्द सोऽहं आप अन्तर जपै अजप्या जाप।[8]

अब तक प्रचलित सिमिटिक जातियो में इसे 'एमिन' कहते हैं और अरब में यही ओं 'आमीन' हो गया।

ईश्वर का स्वरूप कैसा है ?

वैदिक ग्रंथों में ईश्वर का स्वरूप स्पष्ट किया है कि ईश्वर निराकार है, उसकी कोई शक्ल सूरत नहीं, उसकी कोई मूर्ति नहीं बन सकती, वह इन्द्रियों से परे है – आंख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा उसका अनुभव नहीं कर सकती। न तत्र चक्षु गच्छति न वागच्छति नो मनो (केन 1-3)

वह सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा सर्वत्र व्यापक है। व्यापक होने से उसे महान् से महान् भी कहा जाता है – 'सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना कि जिसमें ये ब्रह्माण्ड समाया है।''

अणोरजीयम महतो महीयान्।

ईशोपनिषद् और यजुर्वेद में बताया है वह शुद्ध ब्रह्म कैसा है –

'स पर्यगात शुक्रं अकायं अव्रणं अस्नाविरम् शुद्ध अपापविद्धम् कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः यातातश्यतः अर्थात् व्यदघात शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।[9]

भावार्थ – वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक, शीघ्रकारी, अशरीरी, छिद्र रहित, नस नाड़ियों के बंधन से रहित है। वह सदा पवित्र है। कभी पाप नहीं करता। वह कवि अर्थात् सर्वज्ञ है स्वयंभू है। वह वेद के द्वारा सब पदार्थों का ज्ञान देता है। इस गतिशील संसार में जो कुछ भी है सबमें ईश्वर समाया हुआ है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यात्विंच जगत्यां जगत।[10]

क्योंकि ईश्वर चर्म चक्षुओं से नहीं दिखता इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि

ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है और है तो कहां है? परन्तु ऐसे लोगों के जीवन में भी ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब उनका भी अन्तःकरण कहत है कि प्रभु है अवश्य। यदि कभी नौका में बैठे ऐसे नास्तिकों की नौका भंवर में पड़कर डगमगाने लगे तो उनके मुख पर एक ही शब्द आता है, प्रभु रक्षा करो। कई बार भूकम्पों में, बाढ़ में, आपदाओं में भी कुछ लोग सुरक्षित बच जाते हैं तो बरबस मुंह से निकल आता है –

''ईश्वर तेरी लीला अपरम्पार''

नास्तिकता का दम भरकर संसार में उत्पात मचाने वाले लोगों को भी प्रभु ने ऐसा कंपा डाला जैसे शेर के भय से सारा जंगल कांपता है। हिरण्यकश्यप, कंस और रांवण के अहंकार भी स्थायी न रह सके। इसलिए प्रभु है, वह पृत्वी के कण-कण में है, सूर्य में है, चांद में है, पेड़-पौधों में है, बादल में है, फूलों में, नदी में, सागर में, जड़ में, चेतन में सर्वत्र है।

यज्ञ के समय आचमन करते हुए उपासक कहता है –

ओं अमृतोपस्तरणमसि – अर्थात् हे ईश्वर तू हमारे नीचे का बिछौना है।

ओं अमृतापिधानमसि – हे ईश्वर तू महारे ऊपर का ओढ़ना है।

अर्थात् ईश्वर चारों ओर है। जैसे बच्चा माता की गोद में बैठकर निर्भय हो जाता है, ऐसे ही उपासक भयशून्य हो जाता है।

ईश्वर के कार्य क्या-क्या हैं?

मुख्य रूप से हम ईश्वर के कार्यों को तीन भागों में बांट सकते हैं –

1. वेद ज्ञान देना, 2. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना, 3. सब जीवों को यथायोग्य कर्मानुसार फल देना।

1. **वेद ज्ञान देना** – सृष्टि के आदि में ईश्वर ने योग्यतम चार पवित्रात्मा ऋषियों के हृदय में चारों वेदों का ज्ञान दिया। शतपथ में प्रमाण है – अग्नेर्वा, ऋग्वेदों जायते, वायुः यजूर्वेदा सूर्यात्सामवेदः' अर्थात् सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा ऋषियों के आत्माओं में एक-एक वेद का प्रकाश किया। पुरुष सूक्त में भी प्रमाण है। जोकि ईश्वर की सृष्टि रचना का प्रथम दस्तावेज है, उसमें लिखा है –

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतःमृचः सामानि जबिरे
छदांसि जज्ञिरे तस्मात् यजु तस्मात्अजायतेः।।[11]

ईश्वर ने मनुष्य मात्र के लिए, बिना कोई भेदभाव किये जीवन जीने का संविधान दिया। ईश्वर स्वयं वेदमंत्र में कहता है कि मेरी कल्याणी वाणी वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि सभी के लिए है।

यथेमा वाच कल्याणीभावदानि जनेभ्यः।[12]

2. **ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना** – यह संसार परमात्मा की ईक्षण (सामर्थ्य)

शक्ति से बना है। उसी ने सत, रज, तम रूपी प्रकृति को प्रेरणा दी और जीवात्मा के हितार्थ सृष्टि बनी। ऋग्वेद का 10वां तथा यजुर्वेद का 31वां अध्याय पुरुष सूक्त सृष्टि सृजन का काव्य है। उसी की सामर्थ्य से अनेक लोक लोकान्तर, पांच महाभूत, पांच सूक्ष्म भूत, मन, बुद्धि, भौतिक शरीर, विभिन्न वनस्पतियां, सूर्य चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, मौसम आदि बने। पुरुष सूक्त में ईश्वर की कल्पना पुरुष रूप में की गई है। 'पुरी शयतिति पुरुषः' जो इस संसार में व्याप्त है वह पुरुष है। पहला ही मंत्र कहता है –

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहसपाद्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्।।[13]

भावार्थ – वह ब्रह्माण्ड पुरुष हजार अर्थात् असंख्य सिरों वाला, हजार आंखों वाला और हजार पैरों वाला है। वह इस सारी सृष्टि को आवृत कर लेने के बाद भी उससे बाहर दूर-दूर है। यह संसार तो उसका एक छोटा भाग (दशांगुल) ही है। आगे और कहा है कि यहां जगत में तो वह केवल एक चौथाई ही है –

एतावानस्य ज्यायांश्च पुरुषः। पादो अस्य विश्वाभूतानि त्रिपादास्यामृतं दिवि।।[14]

अर्थात् यह सारा विश्व चर-अचर उसके एक चौथाई भाग में है। इसका तीन चौथाई भाग अमृत रूप में इस दृश्यमान और अदृश्य जगत से परे है।

3. सब जीवों को कर्मानुसार फल देना – ईश्वर न्यायकारी है, सर्वज्ञ है। वह सब जीवों के कर्मों को देखता और जानता है। वह जीवों के कर्मों के अनुसार यथायोग्य सुख-दुःख के रूप में फल देता है। जीव कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में ईश्वर के अधीन है। जैसे शासन व्यवस्था में सब नागरिकों को समान अधिकार और कुछ कर्त्तव्यों को जानना और मानना जरूरी है, ऐसी ही ईश्वर की व्यवस्था है, बल्कि उससे भी अधिक है, भेदभाव रहित है।

ईश्वर न्यायकारी है, इसे एक उदाहरण से समझें – एक राजा ने नगर बसाया। उसमें पार्क, भवन, सड़कें, बाग-बगीचे आदि बनाये। बनाकर लोगों के लिए छोड़ दिया और स्वयं कहीं चला गया। नागरिकों ने खूब बरता, कुछ दिन बाद राजा आया तो देखा नगर व्यवस्था अस्तव्यस्त थी। पौधे उजड़े-ऊखड़े पड़े थे। झूले और बैंचे टूटी थीं, दीवार भी तोड़ दी गई थी। राजा आया तो किसी ने प्रणाम भी नहीं किया, कोई पहचानता नहीं था। राजा ने कुछ को जेल में डलवा दिया, कुछ पर दण्ड लगाया। प्रश्न उठता है कि राजा न्यायकारी है या अन्यायकारी। उत्तर आता है कि राजा न्यायकारी नहीं। क्यों? उसने अपना परिचय ही नहीं दिया कि वह इस राज्य का राजा है, और न ही कोई नियम बना कर जनता को बताया। इसलिए लोगों को पता ही नहीं था जिसके मन में जो आया सो किया – 'अंधेर नगरी चौपट राजा'। पर ईश्वर जो जगत का सर्वोपरि सम्राट है। क्योंकि वह न्यायकारी है। वह सृष्टि का

संविधान वेद ज्ञान पहले देता है। अपना स्वरूप भी बताता है। आज्ञा का उल्लंघन करने पर दंड कर्मफल के रूप में देता है। इसलिए कहा है –

इक झोली में फूल भरे हैं इक झोली में कांटे रे, कोई कारण होगा।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

वेद कहता है – मूर्ति पूजा ईश्वर पूजा नहीं है – ईश्वर की कोई शक्ल सूरत नहीं है, वह निराकार है। इसलिए उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती – न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद् यदाः।

वेद, शास्त्र, उपनिषद्, मनुस्मृति आदि किसी भी वैदिक ग्रंथ में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। ईश्वर हमारे हृदय में बसा हुआ है, इसलिए उसे बाहर ढूंढना व्यर्थ है। 'हंसा पाये मानसरोवर ताल तलैया क्यों डोलै' गीता में भी कृष्ण कहते हैं –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशे अर्जुनः तिष्ठति।[15]

महर्षि दयानन्द ने आर्यों के पतन का कारण मूर्ति पूजा बताया है। सोमनाथ पर सत्रह बार महमूज गजनबी के हमले इसके उदाहरण हैं। आदि गुरु शंकराचार्य अपनी पुस्तक 'परापूजा' में लिखते हैं –

स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामृच्छन्ति दुर्मतिः
शिलामृत दारू चित्रेषु देवता बुद्धि कंलिता। (परापूजा)

अर्थ – मूर्तिपूजा ऐसे है जैसे अपने घर की खीर छोड़कर मूर्ख मनुष्य भीख मांगता फिरता है। पत्थर, मिट्टी और लकड़ी में देवताओं की कल्पना करता है। महर्षि दयानन्द कहते हैं मूर्ति में ईश्वर की स्थापना ऐसे हैं जैसे चक्रवर्ती सम्राट को झोंपड़ी में बैठाना। भगवान जम्भेश्वर भी कहते हैं –

पाहन पूज फिटाकर प्राणी।[16]
जोगी होय के मुड मुंडावै कान चिरावै
गोरख हटड़ी धौके तेपण रहया इवांणी।[17]

अर्थ – आप जो गोरख विष्णु कण–कण में व्यापक है, उसे एक पत्थर में सीमित करके पूजते हो तो समझो अब तक कुछ प्राप्ति नहीं की।

आप थापी महापापी जाणत भूला महापापी।[18]

स्वयं थाप कर स्वयं ही पूजता है तो फिर वेद पोथा पढ़ने से क्या हुआ। पढ़कर भी खाली ही रहा। तू तो महापापी रहा।

ईश्वर भक्ति कैसे करें ?

ईश्वर भक्ति का अर्थ है – ईश्वर के गुणों को याद करना तथा अपने जीवन में अपनाना। ईश्वर न्यायकारी है, दयालु है, सत्यकर्ता है, पवित्र है – हमें भी न्यायकारी, पक्षपात रहित, दयालु, सत्यव्रती, पवित्र आचरणवान बनना चाहिये।

संध्या प्रार्थना उपासना एवं यज्ञादि शुभ कर्म करें –

प्रातः एवं सायं संध्या में बैठकर चिन्तन मनन करें। मानसिक दोषों को दूर करें। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, अरणी लकड़ी में आग रहती है, वैसे ही जीवात्मा में परमात्मा रहता है, सत्य और तप से उसे जाना जा सकता है। श्वेताश्वर उपनिषद का यह कथन है। गुरू जी भी यही कहते हैं –

तिल में तेल पहुंच में वास, पांच तत्व में लियो प्रकाश।[19]
होम चित्त हित प्रीत सूं वास बैकुण्ठों पावै।

सन्दर्भ सूची

1. सबदवाणी, सबद सं.–1
2. वही, सबद सं.–4
3. यजुर्वेद–32/9
4. वही, 40/17
5. वही, 40/15
6. योगदर्शन–1/27
7. कंठोपनिषद्–2/15
8. सबदवाणी, सबद सं.–95
9. यजुर्वेद–40/8
10. वही, 40/1
11. वही, 31/7
12. वही, 31/7
13. ऋग्वेद–10/90/1, यजुर्वेद–31/1
14. ऋग्वेद–4/31/3
15. गीता–18/16
16. सबदवाणी–सबद सं.–97
17. वही, सबद सं.–50
18. वही, सबद सं.–27
19. वही, सबद सं.–101

पताः 456, सै.–15, हिसार (हरि.)
मो.–9812108255

उपनिषदों में भगवद् स्वरूप

- साक्षी बिश्नोई

सृष्टि के आरम्भ से ही जब से मनुष्य बुद्धि में थोड़े से भी ज्ञान का सृजन हुआ था तभी से ही उसमें परमेश्वर के प्रति जिज्ञासा व भगवद् स्वरूप को लेकर अनन्त प्रश्न उसके मन में उपजने लगे। उपनिषदों में इसी जिज्ञासा का स्वरूप देखने को मिलता है। अधिकतर सभी उपनिषदों में भगवत् स्वरूप की चर्चा व कहीं-कहीं पर विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इनमें भगवान को सर्वव्यापक, निराकार बतलाया गया है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि वे भगवान अचल, एक तथा मन से भी अधिक तीव्र गतियुक्त हैं। सबके आदि ज्ञानस्वरूप हैं। इस परमेश्वर को इन्द्रादी देवता भी नहीं पा सके हैं, वे (परब्रह्म पुरूषोत्तम) दूसरे दौड़ने वालों को (स्वयं) स्थिर रहते हुए भी अतिक्रमण (लांघ) कर जाते हैं।(1) कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को परमात्मा के स्वरूप के विषय में कहते हैं कि जीवात्मा के हृदयरूप गुफा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म और महान से भी महान है।(2) यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से न बुद्धि से, न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है जिसको यह स्वयं स्वीकार करता है, केवल उसी के द्वारा प्राप्त है।(3) द्वितीय वल्ली में वे पुनः कहते हैं कि जो विशुद्ध परमधाम में रहने वाला, स्वयं प्रकाश पुरुषोत्तम है, वही अन्तरिक्ष में निवास करने वाला वसु है। घरों में उपस्थित होने वाला अतिथि है और यज्ञ की वेदी पर स्थापित अग्निस्वरूप तथा उसमें आहुति डालने वाला 'होता' है तथा समस्त मनुष्यों में रहनेवाला देवताओं में रहनेवाला, सत्य में रहने वाला और आकाश में रहने वाला, जल में नाना रूपों में, पृथ्वी में नाना रूपों में, सत्कर्मों में, पर्वतों में नाना रूप में वही (परमात्मा) बड़ा परम सत्य है।(4)

1. अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
   तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठतस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।। इशो. 4
2. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। कठो. 1/2/20
   (यह मन्त्र श्वेता. उ. (320) में भी है।
3. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेध्या न बहुना श्रुतेन।
   यमेवैष वृणुते तेन लक्ष्य-स्तस्तैष आत्मा विवृषुते तनू स्वाम।। कठो. 1/2/23
4. हंस शुचिषद् वसुरन्तरिक्षस होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
   मृषद् वरसद्वतसद् व्योमसदब्ज्जा गोजा ऋतजा अविप्रा ऋतं वृहत्।। वही-2

व यजु. 10/24, 12/14

महाराज कहते हैं जो यह भगवान (जीवों के कर्मानुसार) नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला परमपुरूष परमेश्वर (प्रलयकाल में सबके) सो जाने पर

भी जागता रहता है, वही परम विशुद्ध तत्त्व है, वही ब्रह्म है वही अमृत कहलाता है। उसी में सम्पूर्ण लोक आश्रय पाये हुए हैं। उसे कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता।(1)

वह परब्रह्म परमात्मा निराकार, निर्गुण, रूपरहित है। इस पर मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि वह दिव्य पूर्णपुरूष (भगवान) आकार रहित, समस्त जगत के ब्रह्म बाहर और भीतर भी व्याप्त, जन्मादि विकारों से अतीत प्राणरहित, मन रहित होने के कारण सर्वथा विशुद्ध है तथा इसीलिये अविनाशी जीवात्मा में अत्यन्त श्रेष्ठ है।(2) इस प्रकार परमेश्वर का अविनाशी होने का बतलाकर इस जगत में भगवान का विराट रूप देखने का प्रकार बतलाते हैं।

इस परमेश्वर का अग्नि मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, सब दिशाएं दोनों कान हैं और विस्तृत वेद वाणी है तथा वायु प्राण है।, जगत हृदय है, इसके दोनों पैरों से पृथ्वी है, यही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा है।(3) व जो प्रकाश स्वरूप अत्यन्त समीपस्थ, हृदयरूप गुहा में स्थित और परम प्राप्य है जितने भी चेष्ठा करने वाले, श्वास लेने वाले और आँखों को खोलने मूंदने वाले प्राणी हैं ये सब के सब इसमें समर्पित हैं। वह समस्त प्राणियों की बुद्धि से परे अर्थात् जानने में न आने वाला है।(4)

उन्हीं भगवत् परमेश्वर का तत्त्व समझाने हेतु पुनः उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है, जो दीप्तिमान् है और जो सूक्ष्मों से भी सूक्ष्म है जिसमें समस्त लोक और उन लोकों में रहने वाले प्राणी स्थित है, वही यह अविनाशी ब्रह्म है, वही प्राण है, वाणी है, मन है वही यह सत्य है, वह अमृत है। हे मनुष्य! उस वेधनेयोग्य लक्ष्य को तू वेध। (5) उन परब्रह्म के स्वरूप व महिमा का वर्णन करते हैं।

1. य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मिमाणः।
   तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
   तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एवद् वै तत्।। कठो. 2/2/8
2. दिव्यो ह्यमूर्तः पुरूषः सवाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
   अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।। मुण्डको. 2/1/2
3. अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यो दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
   वायुः प्राणो हृदय विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्योष सर्वभूतान्तरात्मा।। वही
4. आविः संनिहितं गुहाचरं नाम यत्पदमत्तैतत्समर्पितम्।
   एनत्प्राणीन्दमिशञ्च थदेतजानथ सदसद्वरेण्यं पर विज्ञानाधद्वरिष्ठं प्रजावाम्।
मुण्डको. 2/2/11, अथर्व 10/6/17
5. यदर्चिमद्वदणुभ्योऽणु च यस्मिल्लोका निहिता लोकिनश्च।
   तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्रावस्तदु वाङ्मनः।

वदेतस्सत्यं तदमृतं तद्वेहव्य सोम्यविदि। वही 2

हिरण्ये परे कोशे विराजम् ब्रह्म निष्कलम्।

तत् शुभ्रम् ज्योतिषां ज्योति यत् आत्मविदः विदुः।।(1)

अर्थात् वे निर्मल निर्विकार और अवयव रहित अखण्ड परमात्मा प्रकाशमय परमधाम में विराजमान हैं। वे सर्वथा विशुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदाथो के भी प्रकाशक हैं तथा उन्हें आत्मज्ञानी महात्माजन ही जानते हैं। वहीं पुनः कहा गया है कि वह परब्रह्म भगवान महान् दिव्य और अचिन्त्यस्वरूप है तथा वह सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप में प्रकाशित होता है तथा वह दूर से भी अत्यन्त दूर है और इस देह में रहकर अति समीप भी है। वह ह्रदयरूपी गुफा में स्थित है। (2)

वहीं तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि 'आकाश शरीर ब्रह्म। सत्यात्म प्राणारामं मनआनन्दम। शान्तिसमृद्धममृतम्।(3)

अर्थात् वह ब्रह्म आकाश केसदृश शरीरवाला, इन्द्रियादि समस्त प्राणों को विश्राम देने वाला, मन को आनन्द देने वाला, शान्ति से सम्पन्न अविनाशी है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्मविषयक चर्चा करने वाले कुछ जिज्ञासु आपस में कहते हैं – हे वेदज्ञ महर्षियों! इस जगत का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है? हम लोग सृष्टि किससे उत्पन्न हुए हैं, किससे जी रहे हैं और किसमें हमारी सम्यर्क प्रकार से स्थिति है।(4)

इन प्रश्नों की जिज्ञासी की पूर्ति के लिए ऋषियों ने ध्यान किया व ब्रह्म का साक्षात्कार कर कहते हैं कि वेदवर्णित परब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय और अविनाशी है। उसमें तीनों लोक स्थित हैं। इस तत्त्व को जानकर महापुरुष दय में स्थित ब्रह्म को जानकर उसी के परायण हो, उस ब्रह्म में लीन होते हैं।(5)

आगे कहते हैं –

यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।

य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।।(6)

1. वही. 9
2. वृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
   दूरात् सुदूरे वदिहान्तिके च पश्वत्स्विहैव निहितं ग्रह्ययाम्।। वही 3/1/7
3. तैतिरीयो. 1/6/4
4. किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम् केन क च सम्प्रतिष्ठाः।
   अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।। श्वेताश्वरो. 1/1
5. अङ्गीतमेतम् परम तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्षठारं च।
   अत्तान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्माणि तत्परा योनिमुक्ताः।। वही 1/7

6. वही 2/17

अर्थात् जो परमदेव परमात्मा अग्नि में है, जो जल में है, जो समस्त लोकों में प्रविष्ट हो रहा है, जो औषधियों में है, जो वनस्पतियों में है, उन परमात्मा के लिए नमस्कार है।

भगवत् स्वरूप विषय में आगे कहा गया है कि जो प्राणी स्वरूपभूत विविध शासन शक्तियों द्वारा इन सब लोकों पर शासन करता है वह रुद्रः एक ही है। वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थित है, सम्पूर्ण लोकों की रचना करके उसकी रक्षा करने वाला प्रलय में सबको समेट लेता है।(1)

'ततो युदुत्तरतरं तदरूपमनगयम्।' (2)

अर्थात् उस हिरण्यगर्भ से जो अत्यन्त उत्कृष्ट है वह परब्रह्म परमात्मा आकाररहित, सब प्रकार के दोषों से शून्य है।?

उन भगवान के सब और मुख हैं, सभी जगह सिर व गला है व सभी प्राणियों के हृदयरूप गुफा में निवास करता है।(3)

वह भगवान हाथ-पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं का ग्रहण करने वाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है। आंखों के बिना ही वह सब कुछ देखता है और कानों के बिना ही सब कुछ सुनता है। वह सर्वज्ञाता है परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं है। ज्ञानीजन उसे महान् आदि पुरुष कहते हैं(4)

वहीं पर चौथे अध्याय में कहा गया है कि वही (भगवान) अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र आदि है। वह जल है, वह प्रजापति है और वही ब्रह्मा है।(5) इसी प्रकार आगे के मन्त्रों में परमात्मा को सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में विद्यमान बतलाया है।

''येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वज्ञः कालकालो गुणी सर्वविधः।
वेनेशितं कर्म विवर्तते ह, पृथव्यप्तेजोऽनिलखाणि चिन्त्यम्।।''(6)

अर्थात् जिस परमेश्वर से यह सम्पूर्ण जगत सदा व्याप्त है जो ज्ञानस्वरूप परमेश्वर निश्चय ही काल का भी महाकाल सर्वगुणसम्पन्न और सबको जानने वाला है, उससे ही शासित हुआ यह जगतरूप कर्म विभिन्न प्रकार

1. वही. 3/2
2. वही. 3/10
3. सर्वाननशिरोकविः सर्वभूतगुहाशयः।
   सर्वव्यापी ज्ञ भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः।। वही. 3/11
4. अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
   स वेति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रथं पुरुषं महान्तम्।। वही. 3/19

5. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।

तदेवशुक्रं तद्ब्रेह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।। वही. 4/2, यजु. 32/2, अथर्व. 10/8/27

6. वही. 6/2

यथायोग्य चल रहा है और ये पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश भी उसी के द्वारा शासित होते हैं। इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए।

उस परमात्मा के शरीररूप कार्य और अन्तःकरण तथा इन्द्रियरूप करण नहीं है। उससे बड़ा और उसके समान भी दूसरा नहीं दीखता तथा उस परमेश्वर की ज्ञान, बल और क्रियारूप स्वाभाविक दिव्य शक्ति नाना प्रकार की ही सूनी जाती है।(1)

अतः श्रुति कहती है –

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कार्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुवश्च।।(2)

अर्थात् वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है। वही सबके कर्मों का अधिष्ठाता सम्पूर्ण भूतों का निवास स्थान, सबका साक्षी येतनस्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत भी है।

इस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा का न तो कोई आकार है, न ही रूप, न रंग। वह अदेखा, अजन्मा, शाश्वत् है। उसके स्वरूप का वर्णन वाणी के द्वारा नहीं किया जा सकता। वह सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त है। वह अणु से भी सूक्ष्म व ब्रह्माण्ड से भी विशाल है। वह प्रत्येक प्राणी के हृदय में वास करता है। यह उपनिषदों की श्रुतियां प्रमाण है कि उस भगवत् स्वरूप का दर्शन केवल अन्तरात्मा में ही किया जा सकता है।

1. न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्य दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।। वही. 6/8

2. वही. 6/11

वी.वी.बी.आर.आई. एवं आई.एस
साधु आश्रम होशियारपुर
(पंजाब विश्वविद्यालय)

गुरु जम्भेश्वर, सबदवाणी और भगवद् रूप

- शर्मीला (शोधार्थी)

भगवद् रूप अत्यंत व्यापक है। सृष्टि का आरंभ कहाँ से होता है और अंत कहाँ? कोई नहीं जानता। इस सृष्टि के आदि-अंत से हम अनभिज्ञ हैं किंतु यह विश्वास अवश्य करते हैं कि इस समग्र रचना को परिचालित करने में कोई अलौकिक शक्ति क्रियान्वित है। आरंभ में, मनुष्य के चित्त या मानस में ईश्वर की परिकल्पना नहीं आई थी। मनुष्य मात्र प्रकृति के गर्भ में घटित होने वाली अकस्मात् घटनाओं से भयभीत होकर विभिन्न देवों का प्रतिपादन कर पूजा में प्रवृत्त हुआ, यह आधिदैविक पक्ष था। मनुष्य अपने विवेक के आश्रय से प्राकृतिक घटनाक्रम को समझने लगा और उसका भय श्रद्धा में प्रवृत्त हुआ। वह यह विश्वास करने लगा कि इस पंचभूत शरीर एवं प्रकृति के भीतर कोई चेतन शक्ति विद्यमान है, जो समस्त सृष्टि का केन्द्र-बिन्दु है। यह शक्ति, सुप्रीम पॉवर क्या है? इसका रहस्य जानने में मनुष्य असफल रहा। उसकी यह अनभिज्ञता ही उसकी जिज्ञासा का उत्स है। सम्पूर्ण चराचर जगत् में रमण करने वाले को ईश्वर कहा गया। साधारण मनुष्य के लिए जहाँ ईश्वर एक व्यापक सत्ता है जो पत्थर में भी प्रकट हो सकती है, वहीं दार्शनिक क्षेत्र में यह गुत्थी उलझन भरी है। स्वरूप के अनुसार ईश्वर सगुण और निर्गुण में विभाजित हो गया। अवतार की संकल्पना भी मूर्त्त अर्थात् सगुण के अंतर्गत आती है जो ईश्वर के स्वयं अवतरित न होकर उसके एक अंश का अवतरण मानती है।

अवतार भी पूर्ण ब्रह्म नहीं है तो फिर भगवद् रूप है क्या? यह वाकई एक जटिल प्रश्न है। इसका कोई खाँचा नहीं है जिसमें परमतत्त्व पूर्णतः समाहित हो जाए। समुद्र में डूबकी लगाने पर उसकी गहराई कम नहीं हो जाती, उत्तरोत्तर उसका गाम्भीर्य बढ़ता ही जाता है। इसी तरह भगवान की सत्ता है, जहाँ लगेगा हम उसे जान गये, वहाँ धोखा खा गये। जितना हम उस छोर को पकड़ने का प्रयास करते हैं, वह बढ़ता ही जाता है। पक्षी उड़ान भरते हैं परंतु उड़ते-उड़ते कभी आकाश के अंतिम छोर तक नहीं पहुँच पाते। यह अंतिम छोर तक न पहुँचना ही अंतहीन यात्रा है, जिस दिन आखिरी छोर मिल गया, उस दिन सम्पूर्ण जिज्ञासा शांत हो जाएगी, सारी कातरता एक बिन्दु पर आकर ठहर जाएगी यही परमानंद की अवस्था है।

मनुष्य का उस असीम को जानने का प्रयत्न करना और उसे न जान पाना ही उसे अधीर बनाए रखता है। इस भगवद् सत्ता का जाम्भोजी ने अपने शब्दों में

पूर्णत: वर्णन किया है। इस सृष्टि में जब कहीं भी, कुछ भी नहीं था चहुँ ओर शून्य की अवस्था थी, तब वह एकमात्र निरंजन ही विद्यमान था–

तदि हुंता एक निरंजंण सिंभू, कै हुंत धंधूकारूं।'[1]

जो स्वयं उत्पन्न हुआ है उसका सृजन करने वाला भला कौन है–

आपेणि आपूं रूही न रापूं।
आदि अनादि तो हम रचीलौ हमैं सिरजिलो स कंवण?[2]

इस निराकर, निरंजन, निर्गुण, स्वयंभू ईश्वर के विषय में प्रकाण्ड पंडित भी नहीं जान पाते और निराश होकर 'नेति नेति' कहते हैं–

ननां उदक उदासूं, वळि वळि भई निरासूं।[3]

उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे मात्र महसूस किया जा सकता है आत्मा के संस्पर्श द्वारा। नित्य अपने कर्मों का जीवन-यज्ञ में हविश देकर उसके कुछ समीप पहुँचा जा सकता है। अपने समस्त कर्मों को निष्काम-भाव से करना तथा उन्हें प्रभु को समर्पित कर देना ही उसकी आराधना है, तीर्थों में गमन करने की अपेक्षा अपनी आत्मा की काशी में डूबकी लगाना एवं अंतर्ज्योति को प्रज्जवलित रखना ही उसकी अर्चना है। दया का कुंड भरे रखना ही उस ज्योति का उद्‌गम-स्रोत है। परमतत्त्व कर्मकाण्डों का विषय नहीं बल्कि सृष्टि के चर-अचर में ध्वनित हो रहा है। वह सर्वव्यापक है, वह सातों पातालों में, तीनों लोकों में, चौदह भुवनों में, गहन आकाश में, बाहर और भीतर सर्वत्र, सर्वदा वर्तमान है, जहाँ भी देखा जाए, वहाँ वही है–

सपत पायळे त्यौंह तिरलोके, चवदा भुंवणे गिगन गहीरे।[4]

वह विभिन्न रूपों में होते हुए भी एक स्वरूप में सर्वत्र परिव्याप्त है। उसकी सत्ता न मात्र मनुष्य में वरन् पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, समस्त जीव-जगत् में व्याप्त है। सिर्फ धार्मिक बाह्याचरण करने से उसे जाना नहीं जा सकता इसलिए आवश्यक है कि उसके स्वरूप को प्राणी मात्र में भी अनुभव किया जाए। इसी प्रसंग में जाम्भोजी उपदेश देते हैं–

सुंणि रे काजी सुंणि रे मुल्ला, सुंणि रे बकर कसाई।
किण री थरपी छाळी रोसो, किण री गाडर गाई?[5]

अर्थात् हे! काजी हे! मुल्ला हे! कसाई सुनो! तुम किस की सृजित की हुई भेड़-बकरी मार रहे हो, वह भी ईश्वर द्वारा रचित है। परमेश्वर तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि सृष्टि के जल, थल और वायुमण्डल में वास करने वाले सभी प्राणियों एवं वनस्पति तक में उनके स्वरूप की कल्पना की जाएं। समष्टि से एकात्म होने की यह भावना ही उस विराट सत्ता को महसूस करने का मार्ग है। जब

मनुष्य अपनी आत्मा को समस्त संसार में रमण करते देखता है तो उसकी आधिभौतिक सत्ता 'अध्यात्म' के क्षेत्र में प्रवेश करती है। इस संसार को 'स्व' में व्याप्त पाना ही उस कालातीत सत्ता को जानना है। 'स्व' का 'पर' में और 'पर' का 'स्व' में अधिष्ठापन ही वह पराकाष्ठा है जो व्यक्ति को उस ऐश्वर्यशाली के निकट ले जाती है। जो कहता है 'मैं जानता हूँ' वह वास्तव में कुछ भी नहीं जानता–

जां कुछि जां कुछि तां कुछि न जांणी, नां कुछि नां कुछि तां कुछि जांणी।[6]

और जो कहता है 'मैं कुछ नहीं जानता' वह उसे थोड़ा तो जानता ही है। श्रीमद् भगवद् गीता के सप्तम अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अव्यक्तं व्यक्तिमापान्नं नन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाण्ययमनुश्रमम्।।

अर्थात् मैं इंद्रियों को अगोचर हूँ तो भी मूर्ख लोग मुझे व्यक्त समझते हैं और व्यक्त से भी परे के मेरे श्रेष्ठ तथा अव्यक्त रूप को नहीं पहचानते। परमतत्त्व का यह स्वरूप ऐसा है जिसे जाना नहीं जा सकता–

परम तंत कै रूप ने रेखा, लीक न लेहूं खोज के खेहूं, वरण विवरजत।[7]

इस अज्ञेय को जानने का औत्सुक्य मनुष्य में आरंभ से रहा है, यदि यह प्रश्न समाप्त हो जाए तो मनुष्य का समुचित ज्ञानकुण्ड शुष्क हो जाएगा। इस सृष्टि के केन्द्र में होकर भी परमतत्त्व उससे निर्लिप्त है अर्थात् उसमें रमता नहीं। अज्ञानतावश जब जीवधारियों के ज्ञानचक्षु अविद्या से आच्छादित हो जाते हैं तब भी वह निर्लिप्त रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं–

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्माभिर्न स बध्यते।।

भाव मुझे कर्मों का अर्थात् गुणों का भी कभी स्पर्श नहीं होता। प्रकृति के गुणों से मोहित होकर मूर्ख आत्मा ही को कर्त्ता मानते हैं अथवा यह अव्यय और अकर्त्ता परमेश्वर ही प्राणियों के हृदय में जीवरूप में निवास करता है। 'सबदवाणी' में भी इस ओर संकेत किया गया है कि मैं स्वयं पाप-पुण्य से परे हूँ तथा ऐसा करते हुए किसी को रोकता नहीं–

पाप न छिपां पुनि न हारां, करां न करता वारू।[8]

वह परमतत्त्व सदैव विद्यमान रहता है, वह सर्वनियन्ता है। भागवत में भी लिखा है– ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। यही भाव प्रकट करते हुए जाम्भोजी कहते हैं–

पहला अंत न पारूं, म्हे तदि पंणि हुंता।
अब पंणि अछां, वळि वळि हुयस्यां।

कहि कहि कदि का कहूं विचारूं।[9]

ईश्वर निराकार, सर्वव्यापी, सर्वनियन्ता, सर्वरूप तो है ही किन्तु सत्य रूप भी है। सत्य शब्द द्वारा जो भाव प्रकट होता है, ईश्वर भाव उस में व्याप्त है। जैसे जगत् की अन्यान्य वस्तु सत्य है, वैसे ही ईश्वर सत्य है।[10] ईश्वर के इसी स्वरूप का वर्णन स्थान-स्थान पर सबदवाणी में भी दृष्टिगोचर हुआ है। जाम्भोजी के कथनानुसार- हे भाई! जिस न्याय और सत्य की आराधना राजा युधिष्ठिर ने की थी उसकी अर्चना तुम भी करो-

जो आराध्यो राव दहूठळ सो आराध्यो रे भाई।[11]

इस प्रकार भगवान का एक स्वरूप सत्य भी है। परमतत्त्व का असीम रूप तो निर्गुण ही है किंतु एक पक्ष सगुण भी है। जब वह सगुण रहता है तो उसे ईश्वर कहते हैं, जब निर्गुण रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं और उसकी गुणातीत-अवस्था को तो हम मुँह से कहकर समझा ही नहीं सकते।[12]

इस तरह ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों की रूपों में वर्णित है। यदि गंभीरता से चिन्तन किया जाए तो परमतत्त्व की परिकल्पना मनुष्य की अपूर्णता को दूर करती है। उसके यह अपूर्ण से पूर्ण होने का भाव ही एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के निकट लाता है। प्रेमाभिलाषिणी उसकी अतृप्तात्मा जब 'स्व' के बंधन को तोड़कर 'पर' में समाहित होने की चेष्टा करती है तो वह स्वयं को पूर्ण समझने लगता है। जब 'मैं' का विस्तार होकर 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात 'मैं ब्रह्म हूँ' का भाव जागृत होता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है। परमसत्ता को जानने का ध्येय भी यही है, अपने स्वरूप को पहचानना और अखिल ब्रह्माण्ड में विलीन हो जाना अर्थात् उस ईश्वर के ऐश्वर्य में भाग लेना। ईश्वर का कोई भौतिक स्वरूप नहीं है, वह असीम, अगोचर, निराकार और स्वयंभू है। वह सबमें व्याप्त होते हुए भी, इन सबसे निर्लिप्त है। जिस प्रकार कमल कीचड़ में रहकर भी उसमें रमता नहीं, उसी प्रकार परमात्मा भी संसार में लीला करता हुआ इसका स्पर्श नहीं करता। 'सबदवाणी' में भी भगवान के इसी स्वरूप का वर्णन हुआ है। वह निराकर होने के कारण दृष्टव्य नहीं है। असीम और निराकार सूक्ष्म होने के कारण असीम तथा साकार की स्थूलता में व्याप्त रहता है। ईश्वर से अधिक सूक्ष्म कोई भी सत्ता नहीं है।[13]

वह सूक्ष्म कण घट-घट में परिव्याप्त है, जितना उसका अमूर्श्रा स्वरूप सत्य है उतना ही मूर्त्त भी। 'सबदवाणी' में वर्णित विष्णु शब्द त्रिदेवों में से एक का वर्णन नहीं है वरन् अधिकांश स्थलों पर विसन शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। उसका एक नाम नहीं, अनेक नाम हैं परंतु फिर भी वह सर्वव्यापक और एक है। जिस दृष्टि से उसे देखा जाता है वह उसी रूप में नजर आता है। यदि मनुष्य में ईश्वर को देखा जाए

तो वह उसी रूप में दिखाई देता है, यह सब भावना का व्यापार है। इस प्रकार भगवद् रूप सहस्त्र दृष्टियों के साथ सहस्त्र रूपों में विद्यमान है। किसी के लिए वह सगुण रूप में तो किसी के लिए निर्गुण रूप में उपासना का आधार है। वस्तुतः वह है एक ही, सार्वभौमिक।

संदर्भ सूचीः-

1. माहेश्वरी, डॉ॰ हीरालाल : श्री जम्भवाणी : टीका : अबोहर, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (रजि.), द्वितीय सं॰ मई 2011, पृ॰ 21, सबद-3
2. वही, पृ॰ 16, सबद-2
3. वही, पृ॰ 112, सबद-33
4. वही, पृ॰ 124, सबद-43
5. वही, पृ॰ 32, सबद-7
6. वही, पृ॰ 55, सबद-16
7. माहेश्वरी, डॉ॰ हीरालाल : श्री जम्भवाणी : टीका : अबोहर, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (रजि.), द्वितीय सं॰ मई 2011, पृ॰ 85, सबद-26
8. वही, पृ॰ 134, सबद-134
9. वही, पृ॰ 21, सबद-3
10. स्वामी विवेकानन्द : भक्ति-योग : लखनऊ, अशोक प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1955, पृ॰ 27
11. माहेश्वरी, डॉ॰ हीरालाल : श्री जम्भवाणी : टीका : अबोहर, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (रजि.), द्वितीय सं॰ मई 2011, पृ॰ 204, सबद-70
12. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (संपा॰), कल्याण (ईश्वरांक) : गोरखपुर, गीताप्रेस, वर्ष 7, अंक 1-2, पृ॰सं॰ 1999, पृ॰ 205
13. शर्मा, डॉ॰ मुंशीराम : भक्ति का विकास : वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, 1958, पृ॰ 45

हिन्दी-विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़-160014

जाम्भोजी का भगवत स्वरूप एवं अष्ट सिद्धियाँ

उदयराज खिलेरी ''अध्यापक''

विश्व कल्याणार्थ योगी को योगाभ्यास करते-करते इच्छा न होते हुए भी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ अनायास ही उपलब्ध हो जाती हैं। बड़ी सिद्धियों की प्राप्ति के साथ ही साथ छोटी-छोटी सिद्धियाँ तो साधक के चारों ओर बिखरी पड़ी रहती हैं। परन्तु योगी इन सिद्धियों का प्रयोग अपने लिए न करके बहुत ही सावधानी पूर्वक आवश्यक होने पर परोपकारार्थ ही करताहै।

श्लोकः-यथा वा चित्त सामर्थ्य जायते योगिनीध्रुवम्।
दूरभूति दूर दृष्टिः क्षणाद् दूरागतस्तथा।।40।।
वाक् सिद्धिः काम रूपत्वमदृश्यकरणी तथा।
मल मूत्र प्रलेपेन लोहादेः स्वर्णता भवेत्।।41।।

अष्टांग योग सिद्धि

अर्थः-अभ्यास करते रहने में ज्यों-ज्यों योगी के चित्त का सामर्थ्य बढ़ेगा, त्यों-त्यों ही उसे दूर-श्रवण, दूर दर्शन की उपलब्धि होने लगेगी। क्षणभर में दूर चले जाना, वाणी की सिद्धि, इच्छानुसार रूप धारण कर लेना, अदृश्य हो जाना एवं में उड़ सकना आदि सिद्धियाँ भी अभ्यास से ही प्राप्त होती है। योग शास्त्र में अनेक प्रकार की सिद्धियों का वर्णन मिलता है, उनमें अणिमादि आठ सिद्धियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध है, उनके नाम अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता और वशिता है।

शरीर को अणु के समान सूक्ष्म बना लेना अणिमा, बहुत बड़ा बना लेना महिमा, देह को बहुत भारी कर लेना गरिमा, बहुत हल्का कर लेना लघिमा, दूरस्थ पदार्थों को छू लेना या प्राप्त कर लेना प्राप्ति, कामनाओं की इच्छा के अनुसार पूर्णकर लेना प्राकाम्य, शरीर के आंतरिक संस्थानों को वंश में रखते हुए संसार भर के सब पदार्थो को स्वेच्छानुसार प्रयोग का सामर्थ्य होना ईशिता और सभी पदार्थो या परिस्थितियों को अपने वश में रखना वशिता सिद्धि कहलाती है।

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वथार्थवत्व संयमाद् भूतजयः।
ततोकणिमादिप्रायुर्भावः कत्य सम्पत् तद्धर्मानभिघातश्चः।। 5।।

पा.यो. 3।44

अर्थः-स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व इन पाँचों में संयम के प्रयोग से इन पंच तत्त्वों को जीतने पर योगी भूत जय विभूति को प्राप्त होता है तब उनमें अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य का प्रादुर्भाव होता है काय सम्पत् प्राप्त होती है और उसके धर्म का अनभिघात होता है। अर्थात् उन पाँचों के धर्मो से रूकावट नहीं होती है।

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चा टसिद्धयः।।

अमरकोश, रामाश्रमी व्याख्या।

।1। 34 (17-18)

अर्थः-(1) अणिमा (2) महिमा (3) गरिमा (4) लघिमा (5) प्राप्ति (6) प्राकाम्य (7) ईशित्व और (8) वशित्व ये आठ प्रकारों में संख्यात यौगिक सिद्धियां है।

(1) अणिमाः-अत्यन्त सूक्ष्मत्व, अणु शब्द का अर्थ है सूक्ष्मत्व, आकाशीय भाव। साधारणतः परमाणु को क्षुद्रतम अंश समझा जाता है। किन्तु दर्शन शास्त्र में अणु शब्द अधिकांश स्थल में सूक्ष्म अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इस सूक्ष्म तत्व की जो पराकाष्ठा है उसका नाम है अणिमा, जिससे परे कोई सूक्ष्म वस्तु नहीं हो सकती है। स्थूल देह की अपेक्षा इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं। इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है और बुद्धि से भी आत्मा सूक्ष्म है। आत्मा ही सूक्ष्म की पराकाष्ठा है। अत एव अणिमा कहने से केवल परमात्मा ही लक्षित होता है। 'मैं' ही अणिमा हूँ , परम सूक्ष्म मुझमें ही विद्यमान है, अभिन्न सत्तामात्र स्वरूप में मैं ही परम सूक्ष्म वस्तु हूँ, इस तरह की जो प्रत्यक्ष अनुभूति है, उसी का नाम अणिमा-विभूति का प्रादुर्भाव है।

(2) महिमाः-महत्व की जो पराकाष्ठा है, जिससे और महत् कुछ हो ही नहीं सकता है, उसे महिमा कहते हैं। देश और काल महत् वस्तु है, वह भी बुद्धि या महत्व के दृश्य-ग्राहयरूप से अवस्थित है। अतएव महत्व देशकाल की अपेक्षा महत्व है। फिर यह महत्वत्व स्वप्रकाश स्वरूप आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित है, आत्मा की सता ही सतावान् है अतएव बुद्धि या महत्वत्व से भी आत्मा महत्तम है। महिमा परमात्मा का ही अन्य नाम है। अभिन्न सत्ता स्वरूप आत्मा का महत्व सर्व मेहातीतरूप से नित्य विद्यमान है। यह परम महत्व ही महिमा है, मैं ही वह महिमा हूँ, परम महत्त्व मुझमें ही नित्य विराजता है इस प्रकार जो प्रत्यक्ष आत्मानुभव है उसी को 'महिमा' विभूति का आविर्भाव कहा जाता है। जिसमें योगी अपने शरीर विराट बना सकता है।

(3) गरिमाः-गुर शब्द का अर्थ भारी होता है, पहाड़ आदि वस्तु को इसके दृष्टान्त स्वरूप में दिखाया जा सकता है। यह गुरूत्व एक प्रकार बोध मात्र है। यह जब पराकाष्ठा को प्राप्त होता है अर्थात् जिससे अधिक और कोई भारी विषय नहीं हो सकता है। उसका नाम गरिमा है। यह गरिमा सत्ता मात्र स्वरूप में आत्मा में ही विद्यमान है। मैं ही गरिमा हूँ, परम गुरूत्व मुझमें ही नित्य विराजमान है, ऐसा जो प्रत्यक्ष अनुभव है उसी का नाम गरिमा विभूति है। जिसमें योगी अपने शरीर को भारी-भरकम बना लेता है।

(4) लाघिमाः-लघु शब्द का अर्थ है हल्का। पक्षी के रौएँ या रूई आदि वस्तु को इसके दृष्टान्त स्वरूप में दिखाया जा सकता है। यह लघुत्व एक प्रकार की बोध मात्र है। यह जब पराकाष्ठा को प्राप्त होता है अर्थात् जिससे अधिक और कोई लघु विषय हो नहीं सकता, उसका नाम है लघिमा। लघिमा सत्तामात्र स्वरूप में

आत्मा में ही विद्यमान है। मैं ही लघिमा हूँ, परम लघुत्व मुझमें ही नित्य विराजित है, ऐसा जो प्रत्यक्ष अनुभव है उसी का नाम लघिमा विभूति है। जिसमें योगी अपने शरीर को हल्का बना लेता है।

(5) प्राप्तिः–सर्वदा सब पदार्थों की प्राप्ति ही प्राप्ति नाम की विभूति है। मैं सता स्वरूप वस्तु हूँ, अतएव जहाँ जो कुछ है रूप से प्रतीत होता है वह सभी आत्मा द्वारा सर्वथा प्राप्त है, उस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव का नाम प्राप्ति है। मैं जब तक सता स्फूर्ति प्रदान न करूँ, तब तक कोई वस्तु ही सत्ता प्राप्त नहीं कर सकती, इस सत्य ज्ञान से वंचित रहने के कारण ही साधारण मनुष्य सदा अनेक प्रकार के अभाव–अभियोगों को प्रत्यक्ष करते रहते हैं। किन्तु भूतजयी योगी सर्वात्मदर्शन के फल से इस प्राप्ति नामक विभूति को पाकर धन्य होते और सब अभाव–अभियोगों से ऊपर चले जाते हैं।

'प्राप्ति' सिद्धि के प्रतिष्ठित होने पर साधक योगी को वांछित पदार्थ बिना इच्छा किये ही उपलब्ध हो जाते हैं।

(6) प्राकाम्य–प्राकाम्य शब्द का अर्थ है–इच्छा का अनभिघात।

भूतजयी योगी देखता है कि इच्छा मात्र परमेश्वर की है जो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का अधीश्वर है, जो आत्मा है, जो मैं रूप से प्रकाशित है, वही इच्छा–रूपिणी महती शक्ति है। इस अवस्था में योगी के चित में जो भी इच्छा उदय होती है, वह अपूर्ण नहीं रहती। इसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं।

(7) ईशित्वः–स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ग्राहय वस्तु मात्र की ये तीन तरह की अवस्थाएँ दीख पड़ती हैं। इन अवस्थाओं को ठीक–ठीक रूप सुनिश्चित करने की जो सामर्थ्य है उसे ईशित्व कहते हैं। मैं इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्थूल, सूक्ष्मादि सब वस्तुओं को भली भाँति नियमित रखता हूँ। ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव का नाम ईशित्व प्राप्ति है।

(8) वशित्वः–भूत–भौतिक वश्यता ही इसका स्वरूप है। भूत और भौतिक रूप से जो कुछ प्रकाश से प्रकाशित है। मैं आश्रय या आधार हूँ और वह सब आश्रित या आधेय है, ऐसी प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त होना ही वशित्व नामक विभूति है।

यत्रकामावसायित्वः–उपरोक्त समस्त सिद्धियाँ प्राप्त योगी सम्पूर्ण कामनाओं रहित और परे हो जाता है। जिसे यत्रकामावसायित्व सिद्धि कहते हैं। कामनाओं का बिल्कुल अन्त हो जाने का नाम 'यत्रकामावसायित्व' है। इसको पूर्ण कामत्व भी कहा जाता है। 'पूर्णकामोकस्मि संवृतः' मैं पूर्ण काम हुआ हूँ, अब मेरे देखने और पाने को कुछ बाकी नहीं हैं। मैंने अपने स्वरूप का पता पाया है। इसके बाद और ज्ञातव्य या प्राप्तव्य कुछ नहीं रह जाता है इस अनुभूति के उदय होने से समझा जा सकता हैं। कि योगी 'यत्रकामावसायित्व' विभूति पाकर धन्य हुआ है। केवल आत्म ज्ञान से ही सब कामनाओं का अन्त हो जाता है। भूतजयी योगी सत्तामात्र स्वरूप आत्मा का पत्ता पाने से इन आठों सिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवत स्वरूप गुरु जांभोजी ने अनेकों बाल लीला तथा लीलाऐं की घटनायें घटी जिसमें गुरु जांभोजी में अवतरित सिद्धियाँ प्रकट होती है। जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

1. अणिमा:-एक समय माता हंसा देवी शिशु जांभोजी को पलंग पर लिटाकर, घर के छोटे-मोटे कार्य में व्यस्त हो गई। परन्तु जिस प्रकार गाय का ध्यान हमेशा बछड़े में रहता है, वह चरती-फिरती हुई एक नजर को निहारती रहती है। उसी प्रकार हंसा माता भी घर आंगन में कार्य करती हुई भी ध्यान हमेशा शिशु जांभोजी की ओर ही रखती थी परन्तु इस बीच एक ऐसी घटना घटी की हंसा मां के पैरो तले से जमीन खिसक गई। इस बार हंसा मां ने पलंग की ओर देखा कि शिशु जांभोजी पलंग पर नहीं थे। हंसा मैया ने इधर देखा-उधर देखा, इधर-ढूँढ़ा उधर खोजा परन्तु शिशु का कहीं कोई खोज नहीं मिला। हंसा माता घबरा गई, थक-हारकर ठाकुर लोहट जी को सूचना दी कि बाल गोपाल पलंग पर से गायब हो गया है, मैंने अभी-अभी स्तन पान कराकर, नहलाकर, झुगलिया -टोपलिया पहनाकर (नये वस्त्र पहनाकर) सुलाया था। मेरा लला कहाँ गायब हो गया ऐसा कहते हुए ठाकुर लोहटजी से कहने लगी कि जल्दी से जल्दी लला की खोज करवाओ, खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो। ठाकुर लोहटजी ने कहा तू पागल तो नहीं हो गई, तुमने अभी-अभी लला को पलंग पर लिटाय है तो पलंग पर ही लेटता होगा। मैं अभी देखता हूँ ऐसा कहकर जब ठाकुर लोहट जी ने शिशु के शयन-कक्ष में जाकर देखा तो क्या देखते है? लला हमने हाथ-पैरों को हिला-हिला कर पलंग पर मौज-मस्ती करता हुआ सो रहा है। ठाकुर लोहट जी ने ठकुरानी हंसा देवी को उलाहना देते हुए कहा कि अरी बावरी! तू पगला गई है क्या ? लला तो पलंग पर सो रहा है , हे ठकुरानी तू तो अंधी हो गई पलंग पर सो रहा बालक तेरे को दिखलाई नहीं पड़ता। माता हंसा ने जाकर देखा लला तो वाकई पलंग पर सो रहा है। माता हंसा ने झेंपकर शिशु को अपनी गोद में उठा लिया। तथा विचार करने लगी कि जब मैंने देखा तब तो लला पलंग पर नहीं था। और जब ठाकुर साहब ने देखा तब लला पलंग पर अठखेलियां कर रहा था। माता हंसा असमझ में फंस गई कि यह कैसे माने कि बालक पलंग पर ही था या ठाकुर लोहट जी को कैसे समझावे कि लला पलंग पर नहीं था। ऐसे अलौकिक लीला को देखकर माता ने मन में विचार किया कि हमारा लला कोई साधारण बालक नहीं है। इस घटना में बालक का अदृश्य हो जाना गुरु जांभोजी की अणिमा सिद्धि को प्रकट करता है।

2. महिमा:-एक समय की बात है कि माता हंसा गायों को गौहर (गोशाला) में से निकाल जंगल में चरने के लिए छोड़ने गई, परन्तु गौहर का फलसा (द्वार) बन्द करना भूल गई, गायों के चले जाने के बाद बछड़े भी उछल-कूद करते हुए बाड़े से बाहर आ गये तथा इधर-उधर बिखरने लगे। बालक जम्भेश्वर पास में ही खेल रहे थे,

बालक ने देखा कि माताजी गैया मैया को जंगल में चरने छोड़ कर वापस आयेगी, उतने समय में बछड़े बिखर जायेंगे, गुम हो जायेंगे, मैया को बड़ा कष्ट होगा। अत: बालगोपाल जंभेश्वर जी ने बछड़ों को बुलाकर हांककर वापिस बाड़े में डालकर उसका दरवाजा बन्द कर दिया। जब मैया को चेत आया कि बछड़ों के बाड़े का दरवाजा खुला रह गया। मैं जंगल में थोड़ी दूर आ गई हूँ। यदि बछड़ों ने बाहर निकलना एवं बिखरना शुरू कर दिया तो उन्हें संभालना बड़ा कठिन हो जायेगा। ऐसा विचार कर हंसा माता जल्दी डग भरती हुई गौहर पहुंची तो क्या देखती है? कि गौहर के बाड़े का दरवाजा बन्द है। जब मैया ने खोज देखा तो क्या देखती है? कि बालक जम्भेश्वर के पांव के निशान पड़े हैं। माता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरा नन्हा बाल गोपाल ने इन नाजुक हाथों से इतना बड़ा फलसा कैसे बन्द कर दिया। इस प्रकार अपनी शारीरिक क्षमता से बड़ा कार्य कर डाला, जिसमें महिमा सिद्धि प्रकट होती है।

3-4. लघिमा एवं गरिमा:-एक समय ठाकुर लोहटजी की बहिन तांतु अपने भतीजे बालक जम्भेश्वर को देखने के लिये अपने ससुराल से पीपासर आई। माता हंसा ने अपने पुत्र बाल जंभेश्वर को स्नान कराकर, नवीन वस्त्र पहनाकर, काजल टीका लगाकर पालने में सुला दिया था। बुआ तांतु ने आते ही शिशु को खिलाने के उद्देश्य से उठाना चाहा, परन्तु यह क्या बालक तो इतना भारी हो गया कि बुआ तांतु उठाने में असमर्थ हो गई। तथा लोहट से कहने लगी कि भैया आप तो कहते हैं कि मेरा पुत्र तो कुछ खाता-पीता भी नहीं है तो फिर पर इतना भारी कैसे हो गया। तब लोहट जी आगे बढ़े और पुत्र को गोद में उठाना चाहा, परन्तु बालक इतना भारी हो गया कि लोहट जी भी उठा नहीं सके। तब माता हंसा ने कहा कि मैं अभी इसको उठा लेती हूँ। परन्तु माताजी भी उठाने में समर्थ नहीं हो सकी, जब सब लोग बारी-बारी से उठाने का प्रयास कर रहे थे, इससे परेशान होकर शिशु रोने लगा शिशु को रोता सुनकर दासी आई और सहज भाव से ही बालक उठाकर गोद में ले लिया तथा बालक को चुप करने लगी। ऐसा देखकर सब लोग दंग रह गये। क्योंकि बुआ, माता एवं पिता सब अधिकार भाव से उठाने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु दासी तो दास्य भाव से उठा रही थी। अत: बालक हल्का हो गया। इसमें गरिमा और लघिमा सिद्धियाँ परिलक्षित हो रही है।

5-6. प्राप्ति एवं प्राकाम्य:-बात उस समय कि है जब जांभोजी की सिद्धियों की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी थी। गौचारण काल में जब गोपाल जांभोजी समराथल धोरे पर विराजमान थे। तब खिंचियासर गांव के लोग आये आर्तभाव से प्रार्थना करने कि हे देव! हमारे गांव में जल का अभाव है, धरती के गर्भ में जल कहाँ पर है इसका हमें कोई ज्ञान नहीं है। ग्रामीणों के अनुरोध पर जांभोजी ने एक कुश का सरकंडा तीर बना कर फेंका और कहा कि जहाँ तीर जाकर गिरे वहाँ पर कुंआ खोदो मीठा एवं अपार-अथाह जल मिलेगा। जहाँ पर तीर गिरा वहाँ पर कुँआ खोदा गया वहाँ पर अपार मीठा जल मिला। वह कुँआ खींचियासर गाँव में आज भी मौजूद है। अभी

तक उस कुँऐ से मीठा जल प्राप्त होता है। इस प्रकार इस घटना से प्राप्ति एवं प्राकाम्य सिद्धियाँ प्रकट होती हैं।

7-8. ईशित्व एवं वशित्व:-एक बार ठाकुर लोहटजी ने जांभोजी से कहा कि हे पुत्र! तुम बड़े हो गये हो, अब तक तो तुम गायें चराते रहो हो। सो तो अच्छी बात है परन्तु यदि तुम अब हल चलाकर खेती का कार्य करो तो मुझे प्रसन्नता होगी। तब जांभोजी ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए, अपने गौवंश में से ही अप्रशिक्षित बछड़ों को लाकर हल में जोत दिया तथा स्वयं दूर जाकर बैठ गये। बैल चलते रहे, हल चलता रहा, बीज गिरते रहे तथा जुताई पूरी हो गई। उस वर्ष खूब अनाज हुआ जो अखूट हो गया था। यही अनाज जो जांभोजी ने अपने हाथ से खेती की थी। यही अनाज विक्रम संवत 1542 के अकाल में गुरु जांभोजी ने अकाल पीड़ितों को बांटा था जो अखूट था। इस प्रकरण में ईशित्व एवं वशित्य सिद्धियां प्रकट होती है। इस प्रकार इन अष्ट सिद्धियाँ से गुरु जांभोजी का भगवद् स्वरूप प्रकट होता है। हालांकि साधक के लिये सिद्धियाँ समाधि एवं मोक्ष में बाधक है, परन्तु पूर्ण पुरुष, स्वयं परमात्मा के लिए यह एक खेल मात्र है, ईश्वर की माया एवं लीला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. कल्याण, योगांक गीताप्रेस गोरखपुर
2. पातंजलयोगप्रदीप, गीताप्रेस गोरखपुर
3. कल्याण हनुमानांक, गीताप्रेस गोरखपुर
4. कल्याण ईश्वरांक, गीताप्रेस गोरखपुर
5. योग वाशिष्ट, गीताप्रेस गोरखपुर
6. जांभा पुराण, जांभाणी साहित्य अकादमी बीकानेर ले. कृष्णानंद आचार्य
7. अष्टांग योग सिद्धि, संस्कृति संस्थान, बेदनगर बरेली ले.डॉ. चमनलाल गौतम

गांव -मेघावा, डाकघर-वीरावा
वाया-सांचोर, जिला-जालोर (राज.)
343041
मो. 09828751199
ईमेल :- urkhileri@gmail.com

पर्यावरण रक्षक व चिन्तक भगवद् रूप गुरु जाम्भोजी

– डा. ओमराज सिंह बिश्नोई

प्राचीन भारत में मानव का सर्वप्रथम ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता रखना था। मनुस्मृति व उपनिषदों के नियम इस तारतम्यता की इच्छा को प्रदर्शित करते हैं। टैगोर ने लिखा है – वन व प्राकृतिक जीवन मानव जीवन को एक निश्चित दिशा देते हैं। मानव प्राकृतिक जीवन की वृद्धि के साथ निरन्तर सम्पर्क में था। वह अपनी चेतना का विकास आस–पास की भूमि से करता था। उसने विश्व की आत्मा व मानव की आत्मा के बीच के सम्बन्ध को महसूस किया। मानव व प्रकृति के बीच की इस तारतम्यता में पर्यावरण को आत्मार्पित करने के शान्तिपूर्ण व अपेक्षाकृत अच्छे तरीकों को जन्म दिया। मनोसामाजिक आत्मीकरण की अधिक उपयोगिता थी, न कि जैविका आत्मीकरण की। विवेकानन्द जी भी मनो–सामाजिक आत्मीकरण का सन्दर्भ अध्यात्म से जोड़ते हैं। वे कहते हैं 'सभी राष्ट्रों की निम्न सोच को मानवता स्त्रोतों में पाते हैं, जबकि सुसंस्कृत व शिक्षित व्यक्ति इसे विचारों में, दर्शन में, कला व विज्ञान में आध्यात्मिकता अभी भी उच्च योजना मानी जाती है।

प्राचीन भारत में मनुष्य अस्तित्व की संपूर्णता से जुड़ा हुआ था। स्वतंत्रता व सुख के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जीवन–अन्तरात्मा से जुड़ा होता था। इस विश्व के मानव सुखों की कामना करते रहे हैं। नये संदर्भ में व्यवस्थित नयी व्यवस्था की स्वयं की इच्छा के आधार पर आवश्यकता जिसमें व्यापक स्तर पर यह सहमति हो कि सभी मनुष्य एक मानव समाज के सदस्य हैं और उनके लिए अच्छे पर्यावरण को प्रदान करना सामूहिक उत्तरदायित्व है। तत्कालीन सभ्यता के लोगों के जीवन की एकता को समझना विश्व पर्यावरण सनीति का प्रमुख सार प्रतीत होता है।

प्राचीन काल से प्रकृति हमारे लिए पूजनीय रही है। लेकिन हम पेड़ों को निर्दयता से काट रहे हैं तथा प्रकृति का निजी स्वार्थ के लिए विध्वंस कर रहे हैं जबकि हमारे देश के पौराणिक ग्रंथों में प्रकृति को देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् इस तथ्य के ज्वलंत प्रमाण हैं कि हमने सदैव प्रकृति देवी की पूजा की है। पीपल, नीम, तुलसी, बड़, खेजड़ी की पूजा आज भी कतिपय अनेक जन समुदायों द्वारा की जाती है जिसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक ही नहीं अपितु वैज्ञानिक महत्व भी है। आयुर्वेद के अधिष्ठाता धनवन्तरी ने तो प्रकृति से प्राप्त जड़ी बूटियों को समस्त असाध्य रोगों के निदान के लिए रामबाण दवा

समझा था फिर भला हम प्रकृति के प्रति इतने क्रूर क्यों हैं? प्रकृति को तो हमें पुत्रवत लालित-पालित एवं भविष्य के लिए परिरक्षित रखना चाहिए। आंग्ल कवि वर्डसवर्थ ने तो प्रकृति की गोद में ही जीवन का परम सुख समझा था। रूसो ने भी 'बैक टू दी नेचर' का शंखनाद किया था। वस्तुत: प्रकृति के समस्त उपादान हमारे लिए श्रद्धेय नहीं, अपितु पूजनीय हैं। पेड़, पौधे, पर्वतमालाएं, नदी, नाले एवं जीवमात्र सभी हमारे लिए पूजनीय हैं।

भारतीय ग्रंथ इस तथ्य का प्रमाण है कि कृष्ण ने गोकुलवासियों को इंद्र की पूजा की अपेक्षा गोवर्धन पर्वत की पूजा करने हेतु उद्‌बोधित किया था। आज भी गंगा जमुना सरस्वती हमारे लिए पूजनीय नदिया हैं। दक्षिण व उत्तर भारत में आज भी प्रात:काल इनका नाम लेकर स्वयं को कृत्य समझा जाता है। वे राष्ट्रीय एकता की भी प्रतीक हैं। इसी प्रकार सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, वायु, पेड़ व जल की भी उपनिषदों में देववत् उपासना की गई है। किन्तु हम जो पेड़ों को काट रहे हैं, जल को प्रदूषित कर रहे हैं तथा कल-कारखानों के धुएं से वायु को प्रदूषित कर रहे हैं, जो हमारे लिए घातक है। औद्योगिक क्रान्ति के नाम पर हम पर्यावरण को दूषित करने पर तुले हुए हैं, जिसका दुष्परिणाम कालांतर में यह होगा कि हमारा जीवित रहना तथा शुद्ध श्वास लेना भी दुष्कर हो जाएगा तथा भविष्य की आकांक्षाओं को ध्वस्त कर देगा। इसके अनेकानेक कारण हैं, जिसमें जनसंख्या की निर्बाध अभिवृद्धि भी प्रमुख है क्योंकि असीमित जनसंख्या वृद्धि से अनाज, वनस्पति, मकान, ईंधन, कल-कारखाने, वाहन, फर्नीचर, शवदाह गृह की आवश्यकता हमें अधिकाधिक रूप में होगी। परिणामत: प्रकृति के दोहन से पर्यावरण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रदूषित होगा ही।

बिश्नो समाज भारतीय संस्कृति एवं परम्परा का जीवन्त संवाहक है, जिसमें पेड़ न काटना, जानवरों व पक्षियों को न मारना, हृदय में प्राणिमात्र के प्रति दयावान रहते हुए प्राणिमात्र की रक्षा करना आदि व्रत उनके धर्म नियमों की श्रेणी में आते हैं। यही कारण है कि पर्यावरण को बनाए रखना और जीव-जन्तुओं की रक्षा करने के लिए ये निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। इस समाज के प्रवर्तक संत श्री जम्भेश्वर जी ने अनुभव किया कि लोगों को पर्यावरण के महत्व को समझना ही होगा। स्वयं के अस्तित्व के लिए जीवन शैली को प्रकृति के अनुसार ढालने हेतु आपने उत्प्रेरित किया। इससे प्रतीत होता है कि वे सुलझे हुए पर्यावरणीय वैज्ञानिक भी थे। बिश्नोई धर्म के उन्नतीस नियमों वाले आधर संहिता में प्रमुख है - किसी भी जीवित (हरे) वृक्ष को न काटा जाए। रूख लीलो नहिं घावै। उन्होंने वृक्षों में जीव होने की बात विश्व में सर्वप्रथम कही और कहा कि दूसरों की हत्या कर अपना

पोषण करने वाले कर्म से चांडाल हैं। उनके विचारों में जो गाय, भेड़, बकरी दिन भर जंगल में घास चरने के बाद घर आकर हमें दूध पिलाती हैं उन्हें मारकर खाना इससे बड़ा अपराध क्या हो सकता है?

चर फिर आवै सहज दुहावै, जिसका क्षीर हलाली।
तिसके गले करद क्यों सारो, थे पढ़ हुआ रहिया खाली - सबद

जहां बिश्नोईयों की बस्ती है, वहां अधिकतर वन्य जीवन मस्ती से स्वतंत्र विचरण करते हैं और पेड़ हरे भरे खड़े रहते हैं। इससे पता चलता है कि ये लोग वन तथा वन्य प्राणियों से कितना प्रेम करते हैं। राजस्थान में एक लाख काले हिरण व चिंकारा हिरण उपलब्ध हैं। पशुधन हमारे प्रान्त का ही नहीं, देश की आर्थिक व्यवस्था का आधार है। जीव व वृक्षों की रक्षा करना आपकी प्रेरणा का ही प्रतिफल है, जिसके फलस्वरूप कालांतर में वृक्षों को न काटने देने पर बिश्नोई समाज की अमृता देवी के नेतृत्व में 363 लोगों ने पेड़ की रक्षा हेतु प्राण तक दे दिये जो विश्व में मिसाल है।

सिर साटे रूंख रहे तो भी सस्तो जाण

शीश कटाकर यदि वृक्ष की रक्षा हो सके तो यह सस्ता सौदा है। आज हिमालय की घाटी में 'चिपको आन्दोलन' संभवत: श्री जाम्भो जी की प्रेरणा का प्रतिफल कह सकते हैं जो देश के पर्यावरण को बनाने हेतु प्रभावशाली ढंग से बनाया जा रहा है। इसी बिश्नोई समाज को हमारी फिल्मों के सितारों ने हिरणों का वध करके ठेस पहुंचायी तथा अहिंसा के पथ पर आचरण करने वालों को हिंसा करके दिखायी। बिश्नोई समाज के प्रति यह अन्याय है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि बिश्नोई समाज हमारी सांस्कृतिक धरोहर, सामाजिक मूल्यों व परम्पराओं का संवाहक है। पर्यावरण के प्रति इस समाज का योगदान व चेतना अनुकरणीय है। जो निश्चित ही भगवान श्री जम्भेश्वर जी के उपदेशों, निर्देशों व उनके दिव्य दर्शन का ही प्रभाव उनके अनुयायी बिश्नोई समाज पर है। प्रकृति के साथ इस नीति का मुख्य सम्बन्ध सुखद होना चाहिए क्योंकि हम प्राकृतिक संसाधनों का और अधिक शोषण नहीं कर सकते जिन पर कि हमारा सारा जीवन चक्र निर्भर करता है। इकोसिस्टम के अर्थशास्त्र को समझना आवश्यक है। इसी संदर्भ में बिश्नोई समाज के विचार सामयिक हैं। अत: इस प्रकार सभी के लिए यह एक पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि हम प्रकृति के पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखें व मानवता की धरोही को सुरक्षित रखें। यदि हम समाज व मानवता की प्रगति वर्तमान एवं भविष्य में प्रकृति के सहयोग से करना चाहते हैं।

बिश्नोई समाज ने पर्यावरण रक्षा का इतिहास बनाया है। इतिहास की यह

रचना कुर्बानी के पन्नों पर की गई है। पुरुष, स्त्री, बालक, बालिका सभी उत्सर्ग की इस पंक्ति में खड़े हैं। शताब्दियों ने इस बात की गवाही दी है कि बिश्नोई समाज ने पेड़ को प्राणों की तरह मानकर उसकी रक्षा की और वनों को बचाने के लिए प्राणों को होम किया। उत्सर्ग के ऐसे उदाहरण विश्व में विरले ही होते हैं। इतिहास न करमा को भूल सकता है और न गौरों को। उनका दोष तो सिर्फ यही था कि वे प्रकृति के पुत्रों (पेड़ों) को बचाना चाहती थीं पर जब वृक्ष शत्रु नहीं माने तो उन्होंने समर्पण करने से कहीं ज्यादा अच्छा मरने को पसन्द किया। बिश्नोईयों का इतिहास तो ऐसे अनेक दृष्टान्तों से भरा पड़ा है। जोधपुर राज्य का तिलासणी गांव आज भी गवाही देने को तैयार है कि वहां प्रकृति की रक्षा में प्राणों की आहुति दी गई थी। श्रीमती खीवणी खोखर और श्रीमती नेतू वेणा का बलिदान अकारण नहीं जा सकता। यह प्रेरणा-पुंज बना रहेगा। शताब्दियां नमन करती रहेंगी ऐसे बलिदानों को। नि:संदेह प्रकृति प्रेम और पर्यावरण रक्षा का इस समाज का यह अनुपम इतिहास जाम्भो जी की शिक्षाओं का ही प्रतीक है।

आज वातावरण में प्रदूषण किस सीमा तक फैल चुका है, यह एक गंभीर विषय है।

1. एक सर्वेक्षण से पता चला है कि पिछले 100 वर्षों में वायुमण्डल में कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा में 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अर्थात् प्राणीजगत के लिए अनिवार्य आक्सीजन की मात्रा इतनी ही कम हो गई है। जिसके कारण श्वास का रोग, नेत्र का रक्तिमता, कैंसर आदि बढ़ रहे हैं। पृथ्वी का तापक्रम भी बढ़ रहा है। पृथ्वी उसी मात्रा में सिकुड़ती चली जा रही है।

2. एक अन्य सर्वेक्षण से पता चला है कि जल प्रदूषण के कारण विश्व में प्रतिवर्ष लगभग दो लाख लोगों की जानें जा रही हैं।

3. कल-कारखानों और स्वचालित वाहनों के उपयोग में लाने से अवशिष्ट होकर अनेक टन पारा समुद्रों में पहुंचता है जो समुद्री मछलियों के माध्यम से मानव शरीर में भी पहुंचता है तथा समुद्री जीवों के लिए भी घातक सिद्ध हो रहा है।

4. भारी भरकम मशीनों और वाहनों की घरघराहट ने ध्वनि को भी बड़ी मात्रा में प्रदूषित किया है। हमारे सुनने की औसत क्षमता 80-85 डेसीबल होती है। विशेषज्ञों का मानना है कि 140 डेसीबल से अधिक ध्वनि होने पर मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।

5. उपज बढ़ाने के लिए मनुष्य एक प्रकार की रसायनिक खादों का प्रयोग कर रहा है। फसलों पर कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव किया जाता है। इन सबके भोजन में डी.डी.टी. की मात्रा बढ़ती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एवं

खतरनाक है।

6. कृषि मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश की आधी से अधिक भूमि पर्यावरण समस्याओं से प्रभावित है।

कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई और दिल्ली जैसे महानगर कूड़ा-करकट, जल-मल, कारखानों की चिमनियों, मोटर गाड़ियों एवं अन्य साधनों से निकलने वाले धुएं से नित्य प्रति प्रदूषण में वृद्धि कर रहे हैं। देश की गंगा, गोदावरी एवं यमुना जैसी पवित्र नदियां दूषित हो चुकी हैं और देश के मौसमों में परिवर्तन आने लगा है।

आखिर क्यों बढ़ता जा रहा है यह पर्यावरण संकट? यदि इन कारणों पर गंभीरता से विचार करें जिससे प्रदूषण में नित्यप्रति वृद्धि हो रही है तो दो मूल कारण इसके पीछे नजर आते हैं :-

1. जनसंख्या का निरंतर बढ़ना।
2. पर्यावरण के प्रति लापरवाही।

जनसंख्या की वृद्धि जिस गति से हो रही है, उस गति से उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पा रही है जिसके कारण पेट भरने के लिए मनुष्य ऐसे धन्धों एवं कार्यों में प्रवृत्त होता है, जिनमें उसे नहीं होना चाहिए। जंगलों एव वनों को जिस गति से काटकर साफ किया जा रहा है उसके पीछे उत्पादन के साधनों का अभाव भी कार्य कर रहा है। मनुष्य को रहने के लिए और मकान बनाने के लिए भी जमीन चाहिए। उसके लिए वह वनों को काट रहा है। लकड़ी बेच कर मिलने वाले पैसे से वह अपनी रोजी-रोटी चलाता है। भारत में ऐसे लोगों की संख्या भी काफी है, जो रोजाना वन में लकड़ी काटकर और उसे बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। वनों के कटान में धनी ठेकेदार भी बड़ी मात्रा में संलग्न हैं। आज के युग में मनुष्य की आवश्यकताएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इनकी पूर्ति के लिए उसे अकरणीय कर्मों में भी प्रवृत्त होना पड़ता है। जीव-जन्तुओं का अनियंत्रित शिकार ऐसा ही कर्म है। निरंतर होने वाले वैज्ञानिक अनुसंधानों से अनेक ऐसे आविष्कार संभव हुए हैं जिनका दुरूपयोग प्रदूषण को बढ़ावा दे रहा है। परमाणु बम के विखंडन से रेडियोधर्मी कणों का विशाल बादल वायुमंडल में उठता है। यह रेडियो एक्टिवकण वायु के साथ-साथ दूर-दूर तक फैल जाते हैं और फिर धीरे-धीरे पृथ्वी की सतह पर लौटकर पृथ्वी के वायु, जल आदि को प्रदूषित करते हैं। अनियंत्रित औद्योगिक विकास पर्यावरण के प्रति हमारी लापरवाही का उदाहरण है। उद्योग बस्तियों से दूर स्थापित होने चाहिए। उनसे निकलने वाले कचरे और धुएं पर सम्यक ध्यान दिया जाना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता। नए-नए उद्योग बस्तियों के आस-पास

दिन-प्रतिदिन लगते चले जा रहे हैं, जिसके कारण मानव जाति को जीवन का खतरा बढ़ता ही चला जा रहा है। भोपाल गैस कांड इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस विकट समस्या पर विश्व का सर्वप्रथम ध्यान तब गया जब 1972 में स्टाक होम में एक विश्व पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया और पर्यावरणीय संकट अर्थात् पर्यावरण प्रदूषण के खतरों पर विस्तार से चर्चा की गई। इस सम्मेलन को भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी सम्बोधित किया था और भारत लौटकर उन्होंने विज्ञान और टेक्नोलॉजी मंत्रालय में स्वतंत्र पर्यावरण विभाग का गठन किया और विनाश के बिना विकास का नारा दिया। कोई भी महत्वपूर्ण उद्योग स्थापित करने से पूर्व पर्यावरण विभाग से स्वीकृति लेना आवश्यक होगा। ऐसा महत्वपूर्ण फैसला किया।

वस्तुत: पर्यावरणीय संकट प्रदूषण से बचने के लिए सर्वप्रथम प्रदूषण के खतरों से जन-जन को अवगत कराना होगा और उनको जागरूक बनाना होगा ताकि प्रदूषण रोकने के लिए सचेष्ट हो जाए।

- सर्वप्रथम वृक्षारोपण पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। वनों से न केवल इतारती लकड़ी, गोंद, कत्था तथा अन्य औषधियां प्राप्त होंगी, बल्कि वायु को सुरक्षित रखने और ऑक्सीजन उत्पादन में पेड़-पौधों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- ध्वनि प्रदूषण को रोकने में पेड़-पौधे सहायक होते हैं।
- भारत में अभी वन क्षेत्र लगभग 746 लाख हेक्टेयर है जो देश की कुल भूमि का 23 प्रतिशत है। यह माना जाता है कि प्रदूषण से बचने के लिए कम से कम देश की भूमि का 33 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए, जो 23 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है वह भी सभी राज्यों में एक समान नहीं है। अरुणाचल में 79 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है जबकि पंजाब और हरियाणा में केवल दो प्रतिशत भूमि पर वन है।
- चिपको आंदोलन के जनक चंडीप्रसाद भट्ट ने वन संरक्षण को जन आंदोलन का रूप दिया।?
- सुन्दरलाल बहुगुणा ने भी वन आंदोलन को जन-आंदोलन बनाकर मानवता की सेवा में योगदान दिया है। ऐसे जन-आंदोलनों का प्रसार सारे भारत में होना चाहिए।
- शहरों में जल-मल को नदियों में न मिलाकर उसे किसी निचले स्थान में एकत्रित कर खाद उत्पादन के लिए उसका उपयोग किया जाना चाहिए।
- कल-कारखानों और खादानों के अवशिष्ट को नदियों अथवा समुद्र में

बहाने की बजाय जमीन में गाड़कर रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

- परमाणु विस्फोटों पर रोक लगानी चाहिए। उनका भूमिगत विस्फोट किया जा सकता है।
- चिमनियों में जाली लगाना अनिवार्य कर देना चाहिए।
- ध्वनि विस्तार को भोंपुओं की यथाशक्ति से नियंत्रित किया जाना चाहिए।

पर्यावरण की समस्याओं, उनके कारण एवं समाधान आदि के बारे में अधिकांश लोगों का ज्ञान अत्यंत सीमित है। यही कारण है कि हम अब तक पर्यावरण संबंधी विश्व दृष्टिकोण का विकास नहीं कर पाये हैं। यहां तक कि वर्तमान पीढ़ी को अपने ही भविष्य के बारे में सचेत एवं संवेदनशील बनाने में भी हम असफल रहे हैं। समय सीमित है और मानवता के लिए संभवत यह अंतिम अवसर है जब उसे पर्यावरण विनाश से होने वाले संकट के बारे में सावधान हो जाना चाहिए।

सेवानिवृत्त, भारत सरकार
मौहल्ला-पट्टीवाला, पो.-कांट
मुरादाबाद, उ.प्र.
मो.-9953180248

सबदवाणी के प्रसंगों में जाम्भोजी का रामरूप

– मांगीलाल सियाग

प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक भारतीय और विदेशी वाङ्मय में रामकाव्य के विकास की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है। उसके मूल स्रोत वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण और उपनिषद तक में उपलब्ध होते हैं। 'राम' शब्द भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आया है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत दो भाषाएं थीं। चारों वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ आदि इस काल की प्रसिद्ध रचना है। वैदिक साहित्य ग्रंथों के बाद लौकिक संस्कृत में रामायण महाभारत आदि लिखे गए। जिनमें राम की केन्द्रीय भूमिका है। इसके अतिरिक्त पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी और हिन्दीत्तर प्रान्तीय भाषाओं में रामाख्यान पर आधारित अनेक काव्यों की सर्जना हुई है जो वैविध्य एवं परिणाम की दृष्टि से ही नहीं, राम रूप की विकासमान स्थिति को बनाये रखने के कारण भी स्तुत्य है।

भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन और साहित्य में सामान्य तौर पर असंख्य अवतारों की परिकल्पना की गई है कि जिसमें विष्णु के दस अवतार प्रमुख हैं –

मछ कछ बांवन परस बुध, नारिसिंह वाराह।
लक्ष्मण राघौ कंन्य कल्प, दस दांणौ गज ग्राह।।

इनमें राम और कृष्ण अवतार प्रमुख हैं, इनकी कल्पना अति प्राचीन एवं व्यापक है। इन दोनों को आधार बनाकर सर्वाधिक काव्य ग्रंथों का सृजन हुआ है। हिन्दी पूर्व संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्तीत्तर प्रान्तीय भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य का यदि वैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए तो निश्चित रूप से स्पष्ट है कि राम के विभिन्न स्वरूपों की महिमा एवं गरिमा सर्वोपरि है।

उनका चरित्र और कार्य दोनों महान, आदर्श एवं अनुकरणीय है। इसमें संदेह, नहीं कि प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील शक्ति और सौन्दर्य से मण्डित उनके विभिन्न रूपों–आकारों ने जनमानस को भली भांति आकृष्ट किया है। रामकाव्य की देश–देशान्तर तक की विस्तारमयता में राम का घीरोदात एवं मर्यादा पुरुषोत्तम कुशल नीति नियामक रूप जनमानस के सामने आया है। राम का रूप (व्यक्तित्व) इतना महान, व्यापक, आकर्षक और मधुर है कि उसको आधार बनाकर जितनी काव्य सर्जना हुई है, उतनी किसी अन्य मनुष्य अथवा अवतार के सम्बन्ध में नहीं। इस प्रकार रामकथा भारतीय संस्कृति में इतने व्यापक रूप से फैल गई है कि राम के उस समय के तीन प्रचलित धर्मों में एक

निश्चित स्थान प्राप्त हुआ – ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बौधिसत्व तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में।(2) इससे रामकथा एवं राम की व्यापकता एवं लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान को परम गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। युद्ध भूमि राजस्थान में वीरता, प्रेम और श्रृंगार के काव्य प्रचुर मात्रा में निर्मित हुए। ऐसे काव्यों में राम और कृष्ण जैसे देवतापरक व्यक्ति में वीरत्व भावना, शील, और मर्यादा का संचार कराया गया और उनकी इन विशेषताओं (इनके इन रूपों) को आदर्शतम रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन भीतिचित्र, शिलालेख और मन्दिरों में राम रूप सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनमें रामरूप की विकास परम्परा का मूल रूप परिलक्षित होता है।

जाम्भाणी संतकवि अल्लूजी ने रामनाम को सर्वोत्तम रसायन मानते हुए सांसारिक भय-बाधाओं के निवारणार्थ इसी राम बाण औषधि का महत्व इस प्रकार सिद्ध किया है –

लाख जिग राजसू, लाख असमेघ करीने।
लाख भार सोव्रन, लाख कन्यावल लीजे।
लाख गउ सोवच्छ, लाख महडी इजती।
लाख सरोवर बंध, लाख वाणी कीजती।
एतला लाख एकठ करो, अवर धरम कीजे सही।
आछले आछ आछे अल्लू, रमा नाम पूगसि नहीं। (3)

राजस्थान की मरूभूमि आदिकाल से ही संत सूरमा और सतियों की त्रिवेणी का संगम रही है। यहां के जीवन में तेजस्विता की चमक, ईश्वरीय अनुराग और प्रेम पुष्प का पराग समान रूप से परिलक्षित होता है। (4) इसी तपोभूमि पर अवतरित विष्णु अवतार (रूप) गुरू जाम्भोजी एवं जाम्भाणी साहित्य अपनी नानाविध विशेषताओं के कारण विश्वभाषा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। गुरु जाम्भोजी की वाणी सबदवाणी (जम्भवाणी) एवं उनकी पंथ परम्परा के संत कवियों द्वारा विरचित साहित्य समग्र रूप से जाम्भाणी साहित्य कहलाता है। जो हिन्दी साहित्य एवं राजस्थानी भाषा साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। गुरु जाम्भोजी मरू प्रदेश के पहले धार्मिक आचार्य और लोकभाषा में दर्शन सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को बताने वाले दार्शनिक थे। (5)

हिन्दू धर्म (वैष्णव धर्म) के क्रम विकास का इतिहास स्थूल रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

1. कर्म प्रधान वैदिक युग

2. ज्ञान प्रधान उपनिषद युग और

3. भक्ति प्रधान पौराणिक युग।

जाम्भाणी साहित्य में वैसे तो समग्र रूप से ये तीनों ही रूप परीलक्षित होते हैं किन्तु 14वीं शताब्दी में लोक में भक्ति को मूल प्रेरणस्त्रोत माना गया था। इनका उद्देश्य व्यावहारिक जीवन को उन्नत बनाना तथा उसके माध्यम से तत्त्व प्राप्ति का प्रयास करना था। अध्यात्म, साधना, धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोत्थान विषयक रचनाएं इस साहित्य में नीरस प्रसंगों में अवतरित नहीं हुई है। इस साहित्य में काव्य धारा इतिहास और वीरता दोनों कगारों के मध्य प्रवाहित हुई है। इतिहास और वीरता के ग्रंथ प्रबद्य ग्रंथ राम और कृष्ण सम्बन्धी आख्यप काव्य परम्परा का श्रीगणेश ही जाम्भाणी साहित्य से होता है। जाम्भाणी साहित्य पुनः आरम्भिक ग्रंथ जम्भवाणी/सबदवाणी में इन सभी स्वरूपों को एक साथ मुखरित किया गया है जो विषय एवं साहिल (इतिहास) दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सबदवाणी विभिन्न विषयों और कथा आख्यिकाओं का विशद् भण्डार होने के कारण भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कही जा सकती है। यद्यपि इसमें मुख्य रूप से विष्णु नाम स्मरण, यज्ञ तथा ज्ञान से सम्बन्धी वृतान्त है, किन्तु विष्णु अवतार राम के प्रायः सभी प्रमुख रूप इसमें विद्यमान हैं।

यद्यपि मध्यकालीन समाज एवं साहित्य में विष्णु के प्रमुख अवतार राम व कृष्ण लोक में इतने प्रसिद्ध और प्रभावी हो चुके थे कि लोग अन्य के मन को स्वीकार क्या मानने तक को राजी नहीं थे। गुरु जाम्भोजी ने विक्रम की 16वीं सदी में अवतार लेकर अपनी वाणी से साधारण जनता को इस प्रकार समझाया कि –

फेरी सीत तई जद लंका, तद म्हे ऊथे थायो।
दह सिर का दश मस्तक होद्या, बाण गला निरतायो। (6)

त्रेतायुग में जब सीता का हरण हुआ एवं अवनि पर पापीत्वाचारी रावण का साम्राज्य स्थापित हुआ, उस समय मैंने ही धनुष धारण करके रावण के मस्तकों को छेदा था। मैंने ही भीषण संग्राम करके रावण को मारा, लंका को विजय कर वहां से सीता को छुड़ाया था –

सीत बटोड़ी, लंका तोड़ी, ऐसो कियो संग्रामो,
जहां बाणै म्हे रावण मार्‌यो। (7)

इस प्रकार इन दृष्टांतों में गुरू जाम्भोजी के कुशल यौद्धा एवं नीति निर्देशक राम रूप का उल्लेख मिलता है जो लोक में नीति एवं मर्यादा के पालन हेतु प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ-साथ गुरु जाम्भोजी की वाणी एवं जाम्भाणी साहित्य में भ्रातृत्व प्रेम का जो सजीव उदाहरण मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

लक्ष्मण के बाण लगने पर गुरू जाम्भोजी कहते हैं –

कहा हूवो जो लंका लारयौ। कहा हूवो जे रावण हर्‌यौ।
कहा हूवो जो सीता अर्‌यौ, कहा करूं गुणवंता भर्‌यौ।
खलि के साटै हीरा कर्‌यौ। (8)

अन्य सबद में गुरु जाम्भोजी कहते हैं कि मैंने रामरूप में लक्ष्मण जैसा भाई तथा शीलवन्ती और मर्यादा पालन करने वाली स्त्री सीता अन्यत्र नहीं देखी।

हमने युद्ध (राम–रावण युद्ध) में जो बना मैंने बनाये ऐसे और नहीं बनेंगे तथा सीता कारण लक्ष्मण ने जो रेखा खींची वह सभी लोकों (कालों) में प्रसिद्ध एवं प्रभावी रहेगी। मेरा और हनुमान का जो स्वामी–सेवक का सम्बन्ध था उसे आज जीवन–चरित्र में उतारने की आवश्यकता है – हनवंह सो कोई पायक न देख्यो। (9)

सबदवाणी के प्रसंगों में जाम्भोजी रामरूप में ब्रह्म, परब्रह्म, नारायण (नव अवतार नमो नारायण, तेपण रूप हमारा बिशु), ईश्वर (अंपा तो एक निरालम्भ शिम्भु, जिंही के माईन पीऊ) विष्णु, महापुरुष और सामान्य मनुष्य की हैसियत से जनता के समक्ष उपस्थित होते हैं। वे सत्य, शील और सुन्दर के गुणों से सम्पन्न है। महान समाज सुधारक, योगी, धर्म–प्रवर्त्तक, साधक एवं आध्यात्मिक शक्ति के प्रणेता होने के साथ–साथ स्वयं विष्णु निराहारी, कैवल्य ज्ञानी, अयोगी, अडाल, अलील, अपरम्पार भी बताया है। वे योगेश्वर, अविनाशी, दिव्य पुरुष तथा अनन्त शक्ति युक्त और आराध्य देव भी हैं। भक्तों के रक्षक होने के कारण लोक रक्षक और भक्तों के उपास्य होने के कारण भक्त वत्सल भी हैं। उन्होंने अपनी वाणी में राम के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों के माध्यम से जो समन्वय स्थापित किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अपनी वाणी में कभी तो राम (विष्णु) को सगुण रूप में स्वीकार किया है तो कभी निर्गुण निराकार के सन्दर्भ में उनकी उपासना पर बल दिया है। गुरु जाम्भोजी का सगुणोन्मुखी निर्गुण ईश्वरीय रूप (राम रूप) इस प्रकार व्यक्त हुआ है – 'रूप–अरूप रमू प्यंड ब्रह्मण्डे, घाटि–घाटि अघट रहयौ। (7)

गुरु जाम्भोजी की वाणी में जिस राम रूप का उल्लेख मिलता है, वह न केवल वहां तक ही सीमित है अपितु उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि भी हुई है। मेहोजी रामायण, सुरजनदास पूनिया कृत रामरासौ में इनके प्रमाण हैं। इन कवियों की रचनाओं की व्यापकता और लोकप्रियता का श्रेय जम्भवाणी को ही जाता है। इस प्रकार गुरु जाम्भोजी एवं सम्पूर्ण जाम्भाणी साहित्य में गुरु जाम्भोजी के विष्णु अवतार राम रूप के विविध रूप (प्रसंग) है जो राम अवतार के कारण एवं उनके सच्चे स्वरूप को दर्शाते हैं।

''ध्यारयौ खैण उपाय करि, सिरज्यौ सोह संसार।
असर सिंघारण कमणै राम लखण लीयौ अवतार।
बंछा हुडावंण देवता, वाचा साच विचारि।
लंक लिवी किम रामचन्द्र, रांणौ रावण मारि।।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सुरजनदास पूनिया – दस अवतार दुहा (प्रथम दोहा)
2. रेवरेंड फादर कामिल वुल्डे – रामकथा उत्पत्ति और विकास, पृ. सं. 722
   हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, द्वितीय सं. नवम्बर 1960
3. डॉ. शक्तिदास कविया – राजस्थानी साहित्य का अनुशीलन, प्रथम संस्करण 1984 पृ. सं. 131
   थलवट प्रकाशन, बिराई (जोधपुर)
4. डॉ. महीपाल सिंह राठौड़, डिंगल काव्य परम्परा एवं अनुशीलन (रामस्वरूप का शोध आलेख, पृ. सं. 128)
   प्रकाशक, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर 2014
5. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी विष्णेई सम्प्रदाय और साहित्य, दूसरा भाग पृ. 981
6. गुरु जाम्भोजी सबदवाणी सबद संख्या 29
7. गुरु जाम्भोजी सबदवाणी सबद संख्या 116
8. गुरु जाम्भोजी सबदवाणी सबद संख्या 60
9. गुरु जाम्भोजी सबदवाणी सबद संख्या 85
10. जम्भगीता – पृ. सं. 92
11. मेहोजी गोदारा – रामायण (सम्पा. हीरालाल माहेश्वरी, दोहा सं. 3–4)

व. अ. संस्कृत (विशेष शिक्षा)
राज. आदर्श उ.मा.वि. बाप, जोधपुर
मो. 9982534009

सबदवाणी में उल्लेखित गुरु की आवश्यकता एवं महत्व

–मास्टर मोतीराम कालीराणा

मनुष्य मात्र को जीवन–कला सीखने हेतु सर्वप्रथम गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु का सान्निध्य प्राप्त किये बिना आज तक कोई भी कुछ भी नहीं सीख सका है। जैसा गुरु शिष्य को तैयार करेगा अर्थात् संस्कार डालेगा वैसा ही वह व्यक्ति तैयार होगा। गुरु अपने शिष्य के कुसंस्कारों को मिटाने हेतु हर पल प्रयत्नशील रहते हैं। प्रत्येक गुरु का मुख्य उद्देश्य अपने शिष्य में मानवीय गुणों का विकास करना होता है।

संसार में कोई भी कार्य गुरु के बिना नहीं सीखा जा सकता सभी कार्यों में प्रवीणता हेतु गुरु की महती आवश्यकता होता है। कार्य चाये लौकिक हो या पारलौकिक सभी में गुरु ही सहायक होता है। इस प्रकार से गुरु शिष्य की पवित्र परम्परा निरन्तर युगों–युगों से चली आ रही है। गुरु महान और श्रद्धा का केन्द्र होता है। शिष्य जितनी श्रद्धा से गुरु के समीप जायेगा। उतना ही गुरु से ज्ञान ग्रहण कर पायेगा।

''गु'' तथा ''रु'' इन दो अक्षरों के योग से बना हुआ यह गुरु शब्द अतिमहत्त्वपूर्ण विज्ञान को दर्शाता है। ''गु'' का अर्थ विद्वान लोग अंधकार करते हैं। तथा ''रु'' का अर्थ प्रकाश करते हैं। अर्थात् जो व्यक्ति अज्ञानान्धकार से निकलकर ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करके ज्ञानी बना दे वही तो गुरु होता है। ऐसे महिमा मंडिप गुरु के बारे में हम विस्तार से जानें तो हम अति सौभाग्यशाली होंगे। हमारा जीवन धन्य हो जायेगा। गुरु के ज्ञान की ज्योति को हम आत्मसात् तभी कर सकेगे जब हमारी श्रद्धा और विश्वास गुरु के प्रति अटूट होंगे।

भगवान श्री जाम्भोजी का इस धरा धाम पर अवतार हुआ वे सात वर्ष मौन रहे। मुख से कोई भी अक्षर या शब्द तक नहीं बोलते थे उनके लौकिक पिता लोहट जी पंवार इनको ठीक कराने हेतु नागौर के तांत्रिक पंडित (पुरोहित) को लाये। पुरोहित (पंडित) को अपनी तांत्रिक क्रिया–कलाप निमित्त दीपक जलाने में असफल होता देख भगवान श्री जाम्भोजी ने कच्चे सूत के धागे को कच्चे मिट्टी के बर्तन के गले में बांध करके कुएं से पानी निकाला और दीपकों को खाली करके पानी से भरकर चुटकी बजाकर जला दिये तो पंडित (पुरोहित) श्री देवजी से माफी मांगने लगा। भगवान श्री जाम्भोजी ने बोलने हेतु मुख खोला तो सर्वप्रथम गुरु शब्द आ उच्चारण करते हुए खोला और कहने लगे–''गुरु चिन्हों गुरु चिन्ह पुरोहित''। 'सबद–1'

हे उपस्थित सज्जनों! इस समाज का धार्मिक नेतृत्व करने वाला पुरोहित यानि पंडित ही होता है। वह जन्म, विवाह, मृत्यु आदि संस्कारों को यज्ञ (हवन) पाहल के द्वारा सम्पन्न करवाता है। वह यदि नशा, व्यभिचार, तंत्र–मंत्र, जादू,

टोने-टोटके, डोरे, राखड़ी, भोपागिरी के क्षरा भूत-प्रेत भोमियों की पूजा करने लग जाये और लोगों को इनकी पूजा के लिये प्रेरित करने लग जाये और आध्यात्मिक गुरु से गुरु दीक्षा मंत्र लेकर के दीक्षित (सुगरा) हुए बिना ही नुगरा रह करके धार्मिक अनुष्ठान करने लग जाये तो समझो उस समाज का बेड़ा गर्त में चला जायेगा। यदि समाज का अग्रगण्य व्यक्ति ही भटक जायेगा। तो फिर समाज की क्या दशा होगी? यह सहज में ही कल्पना की जा सकती है। इसलिये सज्जनों गुरु को पहचानो। आप लोगों ने ऐसे बेरूपियों को पण्डित (पुरोहित) का कार्य सौंप करके धार्मिक अनुष्ठान करवाते हो और इन्हें गुरु मानते हो यह बहुत बड़ी नरक में जाने वाली भूल कर रहे हो। वास्तव में ये गुरु नहीं हैं। ये स्वयं अपने कर्तव्य कर्मों से भटके हुए हैं। भला ये आपको सद्मार्ग का पथिक कैसे बना पायेंगे? इसलिये इनको गुरु मानने की ओछी प्रक्रिया को छोड़ करके शास्त्रों का सहारा लेकर के गुरु की पहचान करो अन्यथा सतपंथ से भटक जाओगे।

अरे पुरोहित! तू भी गुरु को पहचान। उसके बिना तेरा यह अज्ञानाभिमान नहीं मिटेगा। गुरु दीक्षा के बिना तेरा यह जन्म सफल नहीं हो पायेगा। नुगरा रहने से नरक में जायेगा और अधोगति को प्राप्त होगा। गुरु किये बिना ये तेरे धार्मिक अनुष्ठान हवन-पाहल करना फलदायी नहीं होते हैं। तेरे जैसे अपवित्र, नशैड़ी व नुगरों से जो लोग हवन-पाहल व संस्कार आदि धार्मिक कार्यों को अपने घरों में करवाते हैं। वे बड़े भारी पाप के भागी बन जाते हैं। उनके घरों में सब तरह के अभाव ही अभाव का आभास रहता है। उनके परिवार के लोग धर्म में रुचि कम लेते हैं और भोपों-मुल्लों के चक्कर में ज्यादा रहने लगते हैं। उन्हें संतों की बातें अच्छी नहीं लगती है। इसलिये हे पण्डित पुरोहित! तुझे गुरु की पहचान करके गुरु दीक्षा मंत्र लेकर के सुगरा होना अति आवश्यक है। तभी तेरा व समाज का भला हो पायेगा।

सबदवाणी में यथा स्थान पर गुरु के सम्बंध में कुछ तथ्यों को उजागर किया है। उन पर विचार करके देखते हैं कि भगवान श्री जाम्भोजी के अनुसार गुरु का मनुष्य जीवन में कितना महत्व है-

गुरु न चीन्हों पंथ न पायो, अहल गई जमवारूं।।सबद 13।।

हे प्राणी! तुमने गुरु को नहीं पहचाना यानि गुरु धारण नहीं किया। गुरु के बिना सद्पंथ का भी अनुगामी नहीं बन सका। इसलिये तुमने मानव शरीर व्यर्थ में ही गंवा दिया।

गुरु गेवर गरवा शीतल नीरु, मेवा ही अति मेऊ।
हिरदै मुक्ता कमल सन्तोषी, टेवा ही अति टेऊ।।
चढ़कर बोहिता भवजल पार लंघावै, सो गुरु खेवट खेहूं।।सबद-15।।

भगवान श्री जाम्भोजी यहां पर गुरु की महानता प्रकट करते हुए कह रहे हैं कि यदि गुरु की ऊंचाइयों को देखा जाये तो सद्गुरु हिमालय पर्वत से भी ऊंचे हैं। शीतलता देखी जाये तो जल से भी शीतल तथा पवित्र है। मीठापन देखा जाये तो

इनका स्वभाव मेवों से भी मीठा होता है। अर्थात् मेवों के भी मेवा हैं। हृदय-मुक्त कमल की भांति निर्लेप, सदा ही सन्तुष्ट रहते हुए स्वयं निभाने वाले वचन देते हैं।

ऐसे सद्गुरु धर्मरूपी नाव को चला रहे हैं जो कोई भी धर्मारूढ़ होकर के इस नाव पर सवार होगा उन्हें सद्गुरु संसार सागर से पार उतार देंगे यानि मोक्ष प्राप्ति करा देंगे।

गुरु प्रसादे केवल ज्ञाने।।सबद-23।।

शिष्य को गुरु की प्रसन्नता कृपा ही उसे अतिशीघ्र लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ होती है। गुरु की प्रसन्नता ही साधक के लिये बहुत बड़ा बल है। ये बल, कृपा और प्रसन्नता गुरु की सेवा से ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

गुरु के शब्द असंख्य प्रबोधी, खार समंद परीलो।।सबद-29।।

सद्गुरु के मुख्सा से उच्चरित दिव्य शब्द असंख्य लोगों को प्रबुद्ध बनाने वाले होते हैं। जिन्हें सुन करके असंख्य मानव जागृत हुए हैं। यहां तक कि खार समुद्र तक तथा उससे भी आगे अनन्त लोकों तक सबद की ध्वनि पहुंची है।

अनन्त कोड़ गुरु की दावण बिलम्बि, करणी साच तरीलो।।सबद-29।।

सृष्टि प्रारम्भ से अद्यपर्यन्त अनन्त करोड़ जिज्ञासु लोग गुरु की शरण में आए और गुरु के बताये हुए नियम-धर्म को अपना करके सत्य पंथ के अनुगामी होकर के संसार सागर से पार उतर गये। ऐसी महानता गुरु की है।

गुरुमुख पवन उड़ाइये, पवणा डोलै तुस उड़ेला।।सबद-30।।

गुरु मुख से उच्चरित वचनों द्वारा विवेक प्राप्त कीजिये और सत्य-असत्य का निर्णय करके सत्य को धारण करें व मिथ्या (झूठ) का परित्याग कीजिये।

निश्चय कांयो बांयो होयसी, जे गुरु बिन खेल पसारी।।सबद-42।।

यदि तुम लोग अपने जीवन में गुरु दीक्षा से हीन (नुगरे) रह करके गुरु आज्ञा के बिना मनमुखी होकर के पाखण्ड पूर्ण अपने स्वार्थ सिद्धी हेतु समाज के लोगों को दिग्भ्रमित करते हुए धामिक कार्यों को करने की मौज उड़ाते रहोगे तो आप निश्चय ही छिन्न-भिन्न हो जाओगे आपका सर्वनाश हो जायेगा।

गुरु गति छुटी टोट पड़ेला।।सबद-84।।

यदि गुरु के बताये हुए धर्म-नियम के मार्ग को तुमने छोड़ दिया तो तुम्हारा बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा। सब और घाटा (हानि) का ही आभास होने लगेगा। गुरु के बताये नियमों को छोड़ना ही सबसे बड़ा टोटा यानि घाटा है।

जे थे गुरु का सबद मानीलो, लंघिबा भवजल पारूं।।सबद-96।।

यदि आप संसार के लोग गुरु के वचनों को मानकर के तद्वत जीवन यापन करने लग जाओगे तो निश्चित ही संसार सागर से पार उतर जाओगे। यानि मरने के बाद आपको मोक्ष की प्राप्ति अवश्य होगी।

गुरु बिन मुक्त न जाई।।सबद-97।।

जो व्यक्ति जीवनभर गुरु-दीक्षा से हीन (नुगरा) रहकर के जीवन जीता

है। और धार्मिक अनुष्ठान के भी कार्य करता है। तो गुरु के बिना उनकी मुक्ति नहीं होती है। नुगरे व्यक्ति द्वारा किये गये शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। उन्हें मोक्ष प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है।

सारांश

सबदवाणी में जहां पर भी गुरु शब्द आया है वहीं से एक श्रृंखला में संग्रह करने का प्रयास किया गया है। यहां तक हमने यह जाना कि संसार में पद-पद पर ज्ञान दाता गुरु की आवश्यकता होती है। बिना गुरु के किया हुआ कोई भी कार्य मनमुखी होता है। जिसमें सफलता मिलने में संदेह बना रहता है। गुरु को धर्मशास्त्रों में ईश्वर का रूप माना है-

गुरुर्ब्रह्मा: गुरुर्विष्णु:, गुरुर्देवो महेश्वर:।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नम:।।

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर सभी कुछ हैं तथा गुरु ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है। इसलिये ऐसे गुरु को बार-बार प्रणाम करता हूँ।

सबदवाणी में भी अनेक प्रसंगों में गुरु को ईश्वर ही कहा गया है। यानि ईश्वर ही गुरु है या गुरु ही ईश्वर है दोनों एक ही सत्ता है, उन्हें भिन्न नहीं कहा जा सकता।

भेटेलो गुरु का दरशणा।।सबद-49।।

हे योगी अवधूतों! तुम लोग दिन-रात निरन्तर साधना में लगे रहो और अपना अंतिम लक्ष्य गुरु-दर्शन ही मानो और वहीं पर जाकर के ठहरना तभी तुम पूर्ण योगी हो सकोगे। योगी का अंतिम लक्ष्य गुरु परमात्मा से साक्षात्कार करना ही होता है।

गुरु ध्याइये रे ज्ञानी तोड़त मोहा।।सबद-1।।
कोई गुरु कर ज्ञानी तोड़त मोहा तेरो मन रखवालो रे भाई।।सबद-70।।

अरे मनमुखी ज्ञानी लोगों! गुरु का ध्यान करो, गुरु को ही जीवन नैया खेने वाला केवट जानो और उसकी शरण ग्रहण करो। उनसे गुरु-मंत्र दीक्षा लेओ। वह गुरु अपने ज्ञान के द्वारा कृपा-दृष्टि करके तुम्हारे सांसारिक मोह-बंधनों को तोड़ देगा। जिससे तुम लोग सांसारिक विघ्न बाधाओं से बच जाओगे। तुम्हारी जीवन रूपी खेती को चरने वाला चंचल मन भी इसी खेती का गुरु ज्ञान के प्रभाव से रक्षक बन जायेगा।

संदर्भ

1. सबदवाणी दर्शन-स्वामी कृष्णानन्द आचार्य।
2. सबदवाणी सरलार्थ-स्वामी भागीरथदास शास्त्री।
3. जम्भसागर-स्वामी कृष्णानन्द आचार्य।

विष्णुपुरा-लक्ष्मणनगर, पो.-चाडी
तह.-फलोदी, जि.-जोधपुर (राज.)
मो.-9783338265

सबदवाणी में उल्लेखित गुरु मंत्र से दीक्षित (सुगरा) होने का महत्त्व

-बुधाराम जाणी

प्रत्येक समाज का मूलाधार संस्कार है, संस्कारों का मूलाधार गुरु-दीक्षा (सुगरा) संस्कार है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय में धार्मिक अनुष्ठान साधना व आध्यात्मिक कार्यों को सम्पन्न कराने का वही अधिकारी है। जो गुरु दीक्षा मंत्र लेकर के दीक्षित (सुगरा) है। गुरु किये बिना वह कोई शुभ कर्म यज्ञ, दान-पुण्य आदि करता है तो उसके बदले में उसे कोई शुभ फल की प्राप्ति नहीं होती है। श्री गुरु जम्भेश्वर भगवान ने सबद सं. 42 में कहा है-

निश्चय कायूं बांयू होयसी जे गुरु बिन खेल पसारी।।

हे मनुष्यों! यदि तुम अपने इस जीवन में गुरु दीक्षा से हीन होकर के गुरु आज्ञा के बिना मनमुखी होकर के पाखण्ड पूर्ण अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु लोगों को दिग्भ्रमित करने के कार्य करते रहोगे तो आप निश्चय ही छिन्न भिन्न हो जावोगे। आपका सर्वनाश हो जायेगा। श्री जाम्भोजी ने मनमुखी व गुरुमुखी के सम्बन्ध में सबद संख्या 30 में कहा है-

मनमुख दान ज्यूं दीन्हों करणे, आवागवण ज्यूं आइये।
गुरुमुख दान ज्यूं दीन्हों विदरे सुर की सभा समाइये।।

हे शिष्य लोगों! इस संसार में करण जैसा दानी नहीं हुआ, फिर भी मरने के बाद जन्म-मरण रूपी आवागमन के चक्र में पड़ गया था, क्योंकि उसने गुरु धारण किये बिना अपने जीवन काल में मनमुखी होकर के दान दिया था। इसलिये वह बैकुण्ठ धाम से वंचित रह गया। जबकि विदुर ने गुरु धारण करके गुरु की आज्ञा अनुसार दान दिया तो मरने के बाद सीधा बैकुण्ठ धाम में देवताओं की सभा में सुशोभित हुआ। जन्म-मरण रूपी आवागमन के चक्र से मुक्त हो गया था। सुगरा होने से क्या लाभ है और नुगरा रहने से क्या हानि है? इसके सम्बन्ध में श्री जाम्भोजी ने सबद संख्या 73 में कहा है-

सुगरा होयसी सुरगे जायसी, नुगरा रह्या निरासूं।
गुरु बिन मुक्ति न जाई।।

हे भक्त जनों! जो व्यक्ति गुरु दीक्षा मंत्र लेकर के सुगरा हो गया और गुरु आज्ञा अनुसार सदाचरण करते हुए अपना जीवन जीता है, वह मृत्यु होने के बाद सीधे स्वर्ग में जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति गुरु दीक्षा मंत्र से हीन नुगरा रह करके

जीवन जीता है। चाहे उसने कितने भी धार्मिक-आध्यात्मिक कार्य किये हो उसे स्वर्ग प्राप्ति से वंचित रहते हुए निराशा ही हाथ लगेगा। गुरु के बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकेगी। नुगरे व्यक्ति का जीवन कैसा होता है। इसके सम्बन्ध में श्री जाम्भोजी ने सबद संख्या 27 में कहा है-

आके डोडा खींपे फलियो, ते अहल गयो जमवारो।।

उस नुगरे व्यक्ति का जीवन आक रूपी पेड़ के अकडोडियों व खींप रूपी झाड़ी की फलियों के समान होता है। जो कभी भी किसी प्राणी के उपभोग के काम नहीं आते हैं। उन्हीं की भांति उसका पूरा जीवन निरर्थक ही चला जाता है। इस मनुष्य जगत में किसका जीवन अंधकार में हैं और किसका जीवन प्रकाशमय है। इसके सम्बन्ध में श्री जाम्भोजी ने सबद संख्या 95 में कहा है-

नुगरा के मन भयो अंधेरो, सुगरा सूर उगाणों।।

हे मनुष्यों! जगत में जो व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु प्रयास न करके कुतर्को और वाद-विवाद में पड़ा जीवन जीता है और गुरु की शरण में जाकर के गुरु दीक्षा मंत्र नहीं लेता है। उस नुगरे व्यक्ति का जीवन अज्ञानान्धकार में ही बीतता है। जबकि जो व्यक्ति सद्गुरु की शरण में जा करके गुरु दीक्षा मंत्र लेता है और गुरु आज्ञा अनुसार चलता है उसका जीवन ज्ञानरूपी दीप के द्वारा इस जगत में प्रकाशमान हो जाता है। भगवान जाम्भोजी ने बिश्नोई पंथ की स्थापना वि.सं. 1542 में की थी। इस पंथ के सही संचालन हेतु अपने अनुयायियों का जीवन युक्ति पूर्वक व्यतीत होकर के मोक्ष की प्राप्ति कर सके इस बाबत् बिश्नोई पंथ के लोगों को सदाचारी साधु से सुगरा मंत्र लेकर के दीक्षित होने की आज्ञा दी थी। प्रत्येक बिश्नोई को सुगरा संस्कार जब उसकी संतान 10 वर्ष पूर्ण कर ले तब योग्य साधु को अपने घर बुलवा करके हवन-पाहल करवा करके सुगरा करवाना चाहिये। श्री जाम्भोजी ने सुगरा संस्कार हेतु निम्नलिखित गुरु दीक्षा मंत्र बताया-

ओ३म् शब्द गुरु सुरत चेला। पांच तत्व में रहे अकेला।।
सहजे जोगी शून्य में वास। पांच तत्व में लियो प्रकाश।।
ना मेरे माई ना मेरे बाप। अलख निरंजन आपेही आप।।
गंगा यमुना बहै सरस्वती। कोई कोई नहावे बिरला यती।।
तारक मन्त्र पार गिराय। गुरु बतायो निश्चय नाम।।
जो कोई सुमिरै उतरै पार। बहुरि न आवै मैली धार।।

यह तारने वाला मंत्र श्री जाम्भोजी ने हमें दिया था। गुरु आज्ञा अनुसार इस मंत्र का जप करने से भवसागर से पार हो जाते हैं। यह मोक्षदायी मंत्र है। यह मंत्र

सुगरे व्यक्ति का रक्षक है। इस मंत्र का जप करके कोई व्यक्ति अपने घर से किसी कार्य हेतु निकलता है तो उसको सफलता मिलती है। स्कूल या कॉलेज परीक्षा में बैठने के लिये प्रवेश-पत्र की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार शुभ कार्यों को करने व बैकुण्ठ धाम में जाने हेतु सुगरा मंत्र जरूरी है।

मंत्र दीक्षा लेना यानि सुगरा होने का मतलब है पावर हाउसों का पावर हाउस जो आत्मा-परमात्मा है उससे जुड़ जाना। शिष्य कहलाने हेतु मंत्र लेना अलग बात है। जिस दिन से हम गुरु मंत्र लेते हैं उस दिन से मंत्र के द्वारा, दृष्टि के द्वारा आत्म देव में जगे हुए गुरुदेव की हाजरी हमारे हृदय में हो जाती है। गुरु दीक्षा को आदमी का दुबारा जन्म माना जाता है। पहले माता-पिता के शरीर से स्थूल शरीर का जन्म हुआ फिर गुरुओं की कृपा से हम लोगों का मंत्र दीक्षा से जो जन्म हुआ है यह आध्यात्मिक जन्म है। इसलिये गुरु को भी माता-पिता कहा जाता है। जैसे एक प्रार्थना में कहा है-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम् देव देव।।

ऐसे गुरुओं से मंत्र दीक्षा मिल जाये और साधक उस शिष्य उनके बताये नियम मार्ग के अनुसार चल दे तो इसी जन्म में उसे परमात्मा से साक्षात्कार हो जायेगा। कोई गृहस्थ यदि मंत्र दीक्षा ले करके गुरु के बताये उपदेशों पर चलता है परन्तु पूरा नहीं चल पाया तो भी उसे नरक में नहीं जाना पड़ता है। नरक उसके लिये गुरु मंत्र लेने से खत्म हो गया। थोड़ी बहुत उसने गुरु मंत्र की साधना की है तो वह स्वर्ग में जायेगा। यदि उसे गुरु मंत्र की बढ़िया समझ और साधना है तो ऊंचे लोकों में जायेगा। किसी शिष्य ने गुरु से ब्रह्मज्ञान का श्रवण-मनन किया है तो मरने के बाद ब्रह्मलोक में जायेगा। ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी उसे उपदेश देंगे तो वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेगा। मरने के बाद आदमी की तीन चीजें पीछा नहीं छोड़ती- 1. पुण्य आपको स्वर्ग में ले जाता है। 2. पाप आपको नरक में ले जाता है। 3. भगवान का नाम जप गुरु मंत्र के प्रभाव से मोक्ष प्राप्त करा देता है। यह गुरु मंत्र का महत्व है। अत: गुरु मंत्र को साधारण न समझें। यह आपको परमात्मदेव में परमात्म-सुख में प्रतिष्ठित कर देगा। श्री जाम्भोजी ने सबद संख्या 70 में कहा है-

कोई गुरु कर ज्ञानी तोड़त मोहा तेरो मन रखवाला रे भाई।।

अरे नुगरे लोगों! यदि तुम इन सांसारिक विघ्न बाधाओं से बचना चाहते हो तो किसी साधु (गुरु) की शरण में जा करके गुरु दीक्षा मंत्र ग्रहण करोगे तो वह गुरु

अपने ज्ञान के द्वारा कृपा करके तुम्हारे मोह के बंधनों को तोड़ देगा। तब तुम्हारी जीवन रूपी खेती को चरने वाला चंचल मन भी इसी खेती का रक्षक हो जायेगा।

सारांश–प्राचीनकाल में जितने भी महापुरुष हुए हैं। उनके जीवन में गुरु का स्थान अवश्य था। उन्होंने पहले गुरु दीक्षा मंत्र लेकर के गुरु धारण किये थे उसके बाद उनकी आज्ञानुसार अपना लक्ष्य प्राप्त करने में वे सफल हुए थे। यथा–भगवान श्री राम के गुरु वषिष्ठ मुनि थे, भगवान श्री कृष्ण के गुरु सांदीपनी ऋषि थे। संत ज्ञानेश्वर के गुरु निवृत्तिनाथ, स्वामी विवेकानन्द के गुरु रामकृष्ण परमहंस, राजा जनक के गुरु अष्टावक्र थे। गुरु के बिना सच्ची समझ, परमात्म–अनुभूति, आनंद, माधुर्य, शांति एवं समता का अनुभव नहीं होता है। संत सहजोबाई ने कहा है–

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि जो गुरु बिन क्यों मिले, समझ देख मन मांहि।।

सत्संग व जागरणों में गायक ये दोहे बोलते हैं–

जिसने सत्गुरु किया नहीं, ताका हिरदा है मलीन।
जन्म–मरण के बीच में, रहे दीन को दीन।।
नुगरा माणस एक मत मिलो, पापी मिलो हजार।
एक नुगरे रे शीश पर, लख पापियन को भार।।

दिव्य शक्तिमान सुगरा मंत्र से कोई भी वंचित नहीं रहे, यही श्री जाम्भोजी की आज्ञा है। यह वैदिक सनातन परम्परा भी है। इस परम्परा का निर्वहन करना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्त्तव्य है।

संदर्भ

1. सबदवाणी दर्शन–स्वामी कृष्णानन्द आचार्य
2. सबदवाणी सरलार्थ–स्वामी भागीरथदास शास्त्री
3. अमर ज्योति मासिक पत्रिका अंक सात जुलाई, 2013
4. जम्भ ज्योति मासिक पत्रिका अंक आठ अगस्त, 2013
5. ऋषि प्रसाद मासिक पत्रिका अंक नौ सितम्बर, 2012

खारा, त.–फलोदी,
जोधपुर (राज.)

जांभाणी साहित्य में गुरू जांभोजी का भगवद् रूप

-मास्टर रामनारायण गोदारा

जां जां शैतान करे उफारौ।
तां तां महतज फलियो।सबद

जब-जब दुष्ट व अत्याचारी लोग अंहकार के वश में होकर अन्याय करते हैं, तब तब भगवान की महिमा इस संसार में प्रकट होती है। भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते है-

यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवाति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।4/7।।

जब धर्म की हानि होती है तो मैं अवतार लेकर धर्म की स्थापना करके दुष्टों का नाश करता हूँ। इस मरुभूमि पर जब अन्याय अत्याचार तथा धार्मिक पतन होने लगा तब पन्द्रहवीं शताब्दी में श्री विष्णु भगवान श्री गुरू जम्भेश्वर के रूप में लोहट हांसा के घर पीपासर में प्रकट हुए।

गुरू जम्भेश्वर जी अपने भगवद् रूप के बारे में स्वयं ने ही सबदवाणी में जो कुछ बताया हैं वही हमारे लिए प्रमाण है। तथा पीछे आने वाले संत कवियों ने उन्ही बात का समर्थन साखी छन्दो कवित्त आदि में किया है।

सबदवाणी में अनेक स्थलों पर अल्लाह, अलेख, अयोनी, स्वंयभू, विष्णु, राम, कृष्ण, परशुराम,बुद्ध, मत्स्यावतार, वाराहवतार,नृसिंहावतार, वामनावतार आदि अवतारों को भी स्वयं का ही स्वरूप बतलाया हैं। विष्णु निराकार व साकार दोनों रूपो में है। उसी विष्णु को प्रलयावस्था में अल्लाह अलेख शब्दों द्वारा कहा है तथा सृष्टि सृजन के पश्चात् वही विष्णु साकार रूप में पालन पोषण कर्त्ता हो जाते हैं। गुरु जम्भेश्वर जी जप उपासना ध्यान भी विष्णु का ही सिखलाते हैं। हजूरी कवि उदोजी गुरुदेवजी के अलौकिक भग्वद स्वरूप का वर्णन आरती में करते हैं।

चौथी आरती चहुं दिश परसे, पेट पूठ नही सन्मुख दरसे।

गुरु देवजी जब बैठते थे तो लोग उपदेश सुनने के लिऐ चारों तरफ बैठते थे एवं चारों तरफ ही ज्योति स्वरूपी मुख ही दिखाई देता पीठ नहीं दिखती थी। गुरु देवजी निराहारी थे उदोजी ने आरती में लिखा है त्रिशुल ढापे क्षुधा त्रिष्णा निन्द्रा नहीं व्यापे। इसी बात को स्वंय गुरुजी ने सबदवाणी में कहा कि-

जीमत पीवत भोगत बिलसत दिसां नांही म्हापण को आधारूं।।3।।

अर्थात् हमें भूख प्यास आदि नहीं लगती। इसलिए खाना-पीना भोग विलास आदि कभी नहीं करते। आगे कहा-

पूरक पूर पूरले पौण, भूख नहीं अन्न जीमत कौण।।5।।

गुरुदेव कहते हैं कि मैं प्राणवायु को प्राणायाम द्वारा पूर्ण कर लेता हूँ, मुझे भुख नहीं लगती हैं तो अन्न क्यों खाऊं। इस प्रकार गुरुदेव आजीवन निराहारी थे, चारों तरफ मुख दिखलाई देता था। वे विष्णु ही थे।

एक समय समराथल पर जोधपुर नरेश के भ्राता कान्हा जी के पुत्र उधरण (उदाजी) ने गुरुदेव से पूछा कि मैं आपके सामने अपलक निहार रहा हूँ। किन्तु आपकी पीठ नहीं दिखाती, चारों और मुखारविन्द ज्योति ही दृष्टिगोचर हो रही हैं। तब गुरु देवजी ने उदोजी को शब्द उच्चारण किया।

''मोरे छाया न माया लोही न मांसू रक्तू न धातू मोरे माई न बापूं।
आपण आपूं रोही न रापूं कोपूं न कलापूं दुख न सरापूं।।2।।''

मैं अपने आप ही उत्पन्न हुआ स्वयं भू हूँ। इसलिए पंच भौतिक शरीर में जो विकार काम क्रोध, विषय आदि एवं मांस, रक्त, धातु होते हैं वो नही हैं। इस निर्गुण निराकार सच्चिदानंद आत्मा के कोई माता पिता भी नहीं है, न मुझे कभी शोक दु:ख होता एवं न ही मैं किसी को शाप देता। इस बात को भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अध्याय नौ के श्लोक 19 में इस प्रकार कहा–

''पिताहस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोक्ड़ार ऋक्साम यजुरेव च।।9/17।।''

मैं इस संपूर्ण जगत का माता पिता, पितामाह (दादा), धाता अर्थात् धारण करने वाला एवं कर्मो के फल देने वाला, पवित्र ओंकार तथा ऋगवेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। परन्तु मेरे पिता–माता या सृजन कर्ता कोई नही हैं।

''आद अनाद तो हम रचीलो, हमें सिरजीलो सै कौण।।2।।

अर्थात् ये वर्तमान तथा इससे पूर्व की रचना तो परमात्म स्वरूप मैंने ही की है। परमात्मा की रचना करने वाला कोई नहीं हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–

''सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।।10/32।

हे अर्जुन! सृष्टियों का आदि व अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ। फिर गुरुदेव से उदाजी (उधरण) ने आयु व उत्पति के संबंध में प्रश्न किया तो भगवान ने सबद में उच्चरित किया।

''जद पवन न होता पाणी न होता न होता धर गैणारू।।4।।

जब पवन,पानी,धरती,आकाशदि पंचभूत और इनका कार्यजगत, मायाजाल कुछ भी नहीं था अर्थात् प्रलयावस्था ही थी। तब भी में निरंजन स्वयंभू था या धंधूकार ही था। तू मेरी आयु कब की पुछ रहे हो। मेरी ये दिव्य ईश्वरीय काया आदि,अनादि युगों से चली आ रहीं हैं, और भविष्य में भी बनी रहेगी।

राव मालदेव की श्री जम्भेश्वर जी से लोहावट के जंगल भेंट हुए तब मालदेव को आदि उत्पति के बारे में बताया।

आद शब्द अनाहद वाणी,चवदै भवन रहयो छल पाणी।
जिंहि पाणी इण्ड उपन्ना,उपन्ना ब्रह्मा, इन्द्र, मुरारी।।93।।

आदि में ब्रह्म एक शब्द रूप से रहता है तथा फिर चवदा भवनों में जलाकार हो जाता हैं। उसी जल की बूंद से अण्डा बनाया जाता है उसी अण्डे से ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि उत्पन्न होते हैं। उसी शब्द ब्रह्मा का ही यह विस्तार जगत हैं। कवि गोकुलजी ने एक छंद में कहा हैं-

गुरु आदि अनादि अरूपी, आसन जोति रूपी जाप कीयो।
सोई भंगवे भेख अलेख अजूनी, समराथल म्हे साण लीयो।।

एक समय जब मोती मेघवाल को द्रोणपुर के राठोड़ राव वीदा ने बंदी बना लिया तब वीदा व गुरु महाराज के बीच संवाद हुआ तो बीदा ने कोई परचा देने को कहा, गुरु देवजी ने वहाँ पर खड़े नीम के नारियल तथा पानी से दूध बनाकर वीदा को परचा दीया। जिसे साहबराम जी राहड़ ने जंभसार-1 में लिखा हैं-

आयो साध सेवग के तांई। निंबड़िया नारेल कराई।
दूत मेल नारेल मंगाया। आण सभा में तुरंत दिखाया।
भानाहि, जीमाहि, लागाहि मीठा। इस अचंभा सुण्य न दीठा।
हुओ दूध सभा सब पैख्यों। आप पियों औरों भी देख्यों।
उजल दूध सभा में दीठो। सोई स्वाद जैसाई मीठो।

फिर वीदा ने पूछा आपके शरीर से दिव्य सुगंध किसकी आ रही है, तो गुरु देवजी ने फरमाया-

मोरे अंग न अलसी तेल न मलियो, ना परमल पिसायों।।3।।

मेरे शरीर पर कोई सुगंधित तेल या लेप नहीं लगाया हैं। यह सुगंध स्वाभाविक हैं, क्योंकि मेरा शरीर अन्न-जल से निर्मित नहीं हैं, में दिव्य पदार्थो का उपभोग करता हूँ। कवि गोकुलजी ने इंदव छन्द में लिखा हैं।

गुरु दरसण परसे करै तन, अनंत कला करतार तंणी।
कसतुरी के न कुसमन ही कलिया, घट परमल महकार घणी।

सबद वाणी में अनेक स्थानों पर अपने भगवद् रूप को बताया।

''रूप अरूप रमूं पिडें ब्रह्मण्डे, घट घट अघट रहायो।
अनंत जुगां में अमर भणीजूं ना मेरे पिता न मायो।
ना मेरे माया न छाया, रूप न रेखा, बाहर भीतर अगम अलेखा।।19।।

मैं रूपवान व अरूपवान यानि दृश्य अदृश्य संपूर्ण चराचर सृष्टि में रमण करता हूँ। जैसे एक शरीर में जीवात्मा रूप में रहता हूँ उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी एक शरीर है तथा इसी में भगवद् रूप से सर्वत्र विद्यमान रहता हूँ। भगवद् की विद्यमानता का क्रम सतत् रहता है। ऐसा कोई पल नहीं आयेगा जब परमात्मा न रहें। अनंत युगों में ही अमर हूँ। इसलिए मेरे शरीर के कोई माता पिता बंधु बांधव अपने पराये, नहीं हैं। तीन गुणों का विस्तार कर सुखी दु:खी करने वाली माया भी मेरे शरीर में नही हैं। मैं बाहर भीतर एक रस हूँ।

''परम तन्त कै रूप न रेखा, लीक न लेहूँ खोज न खेहूं''। 28।।

उस परमात्मा, परमतत्व के कोई रूप नहीं है, जो आँखो से देखा जा सके, न ही कोई आकृति विशेष है, जो पहचाना जा सके, न ही उनको खोजने का कोई रास्ता, पगडंडी, या पद चिह्न भी हैं। जिससे उस परमात्मा तक पहुँचा जा सके। केवल अनुभव किया जा सकता हैं।

''सप्त पताले तिहूं तृलोके, चवदा भवने गगन गहीरे।
बाहर भीतर सर्व निरन्तर जहां चिन्हों तंहा पायो।।40।।

अर्थात् मैं सप्त पाताल-अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, महातल तथा भू:, स्व:, मह, जन, तप, सत्यम् इन ऊपर के सात लोकों और स्वर्ग, मृत्यु, ब्रह्मलोक इनमें निरन्तर ही विद्यमान रहता हूँ और निराकार आकाश, जल परिपूर्ण समुद्र में भी मेरा निवास हैं। बाहर, भीतर, दृश्य-अदृश्य, सभी जगह पर रहता हूँ। जहाँ पर भी याद करागे, खोजोगे वहीं पर सदा प्राप्त हूँ।

जब वीदा ने मोती मेघवाल को मुक्त कर दिया एवं गुरु महाराज के साथ समराथल पर आया एवं गुरु देवजी से कहा कि आप सत्य परिपूर्ण, परमात्मा, परमेश्वर हैं तो श्री कृष्ण की भांति हमें भी विराट रूप दिखाइये। श्री गुरु जम्भेश्वर ने वीदा की बात ने स्वीकार करते हुए अनेक व्यक्तियों को अलग-अलग स्थानों पर भेजा और उन्हें एक साथ अनेक स्थानों पर उसी प्रकार हवन करते दिखाई दिए तथा बीदा का संशय दूर करके स्वयं ने भगवद् रूप होने का विस्तृत बखान सबद-67 में सुनाया।

श्री गढ़ आल मोत पुर पाटण भुय नागौरी, म्हें ऊंडे नीरे अवतार लीयो।67।

संसार में संपूर्ण गढ़ों में विष्णु भगवान का धाम, बैकुण्ठ धाम, सर्वश्रेष्ठ गढ़ हैं, उसी गढ़ से चलकर में इस मृत्यु लोक के गहरे जल वाली अति उत्तम भूमि पीपासर में मैंने अवतार लिया है। कवि गोकुलजी का छन्द है:- (पोथो ग्रथ ग्यान)

''पीपासर वास परगास भयों दालद मेरण आप दई।
पति प्राण अधार पंवार तणे कुल, आयो आप अलेख सही।''

''अठगी ठंगण अदकी दागण, अंगजा गंजण, ऊनथ, नाथन,अनू नवावण'' 67

जो पाखण्ड करके दूसरों को ठगते हैं। उनकी पाखंड विद्या का हरण करने, जिससे अब तक धर्म का चिन्ह विशेष धारण नहीं किया, उन्हें चिन्हित करके सद्मार्ग में लाने के लिए, जो सच्चे धर्म का भी बुद्धिचातुर्य से खण्डन कर देते हैं, तथा अपने झुठे पाखंड मार्ग को भी अपने स्वार्थवश सत्य बतलाते हैं ऐसे लोगों के विश्वास का नाश करने के लिए, उदण्डता से अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले लोगों के मर्यादा रूपी नाथ डाले के लिए अभिमानी जो सिर नहीं झुकाते उन्हें नम्रशील बनाने के लिए, में यहाँ मरुभूमि में आया हूँ।

काहिं को मैं खैंकाल कीयो, काहिं सुरग मुरादे देसां, काहिं दौरे दीयूं।।67।।

यहाँ आकर मैंने राम, कृष्ण, नृसिंह आदि रूपों में दुष्टों को नष्ट किया। किसी सज्जन, ज्ञानी, ध्यानि,भक्त पुरुषों को उनकी इच्छा कर्मानुसार स्वर्ग या मोक्ष प्राप्ति भी दी। इस समय भी कर्मानुसार स्वर्ग या मोक्ष प्राप्ति भी दी। इस समय भी तथा पूर्व अवतारों में भी पापियों के कर्मानुसार घोर नरक भी दिया । पोथो ग्रथ ग्यान में कवि गोकुल जी रचित इन्दव छन्द में यही बात कही–

प्रतपाल गुवाल भगत को भीरी, वारा रूप विरोध कीयौं।
दांणो दल मलियो जग भालवियों, रिण धीर रवै ज्यूं राखि लीयौ।
मुरदांणों मारी संघारि सजुदल कर पोहकर परकाश कीयौ।
पहलाद उधार मुकारि मया करि, संभराथल सांम सुथान थीये।
दहशिर ने जद वाचा दीन्हीं, तद म्हें मेली अनंत छलूं।
दहशिर का दशमस्तक छेद्या, ताणु-बाणु लडू कलूं।।7।।

गुरु जंभदेव जी कहते हैं कि लंका पति रावण ने तपस्या करके जो वरदान प्राप्त किया वो वरदान देने वाला मैं ही था और मैंने ही रावण को छलने (ठगने) के लिए सीता को भेजा था, वो तो मैंने ही रावण को मारने का निमित्त बनाकर रावण को दस सिरों का छेदन किया। मैं ठग लिए महाठग हूँ तथा महापुरुषों के लिए उद्धारकर्त्ता हूँ। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं कि–

द्यूत छलयतामास्मि तेजास्विनामहम्।।10/36।।

मैं छल करने वालों में जुआं और प्रभावशाली पुरूषों का प्रभाव हूँ।

नान्हीं मोटी जीया जुणी एति सास फूरंतै सारूं।
कृष्णी माया घन बरषंता, म्हे अगिणि गिणूं फुहारूं।।67।।

इस सृष्टी में अनेको छोटी-मोटी जाति प्रजाति के जीव है जिसमें जीवन की एक एक सांस की सार संभाल करता हूँ तथा इन जीवों का सृजन व पालन करता हूँ। इसी प्रकार परमात्मा (मेरे ही) द्वारा वर्षा से गिरने वाली अनगिनत बूंदों

को भी मैं गिनकर कहीं कम कहीं ज्यादा बरसाता हूँ। अर्थात् परमात्मा की दृष्टि से बाहर कुछ भी नहीं हैं।

नव दांणू निखंश गुमाया, कैरव किया फती-फती।।67।।

मैंने समय-समय पर अनेकों अवतार धारण करके नौ अति बलशाली राक्षस कुंभकरण, रावण, कंस, केशी, चण्डरू, मधु, कीचक, हिरणाक्ष तथा हिरण्यकश्यपू का वध किया एवं कौखों के समूह को भी छिन्न-भिन्न करके मौत के मुँह में पहुँचाया। पोथो ग्रन्थ ग्यान में भी अल्लूजी कविया द्वारा रचना में लिखा हैं-

जैण कंसासुर मारियौ, मध, कीचक समंदर मथे।
मुर हिरणा कुस, हिरणाख, अगंज अंजे उनथ नथे।
छले बलि जिण छले, भूज सहंस भंजिवा।
करि रावण निखंस, लंक भभीखण दिवा।
एतला प्रवाड़ा तोरा अछै काज भगता कारणै।
वीनती बल-बल विश्ण, त्रिकंम बाहरा तारणै।
सोलै संहस्र नवरंग गोपी, भोलम-भालम, टोलम-टालम।
छोलम-छालम सहजै राखीलो, म्हे कन्हड़ बालो आप जती।।67।।

दुष्ट भौमासुर ने सोलह हजार कन्याओं को कैद कर रखा था तथा बीस हजार होने पर विवाह करने का प्रण ले रखा था। मैंने भोमासुर को मारकर उन्हें सहज में ही मुक्त करवा दिया तथा उन्हें शरण दी, वो भोली-भाली गोपियाँ मुझे पति परमेश्वर के रूप में स्वीकार कर चुकी थी। फिर भी मैं कृष्ण रूप में यति बाल ब्रह्मचारी ही था।

छोलबिया म्हे तपी तपेश्वर, छोलब किया फती-फती।
राखण मतां तो पड़दे राखां, ज्यूं दाहै पान वणासपती।।67।।

इन गोपियों के साथ रमण करने वाला मैं स्वयं तपस्वी का ही तपस्वी हूँ। किन्तु वृन्दावन छोड़कर चला गया तो पुनः उस लीला को छिन्न-भिन्न कर दिया। मैं जब रक्षा करनी चाहता हूँ तो भयंकर अग्नि में भी एक सूखे पत्ते की भी रक्षा कर सकता हूँ।

एक पलक में सर्व संतोषां, जीया जूण सवाई।
जुगां जुगां को जोगी आयो, बैठो आसन धारी।।85।।

स्वर्ग, पाताल , मृत्युलोक के सभी जीव धरियों में मैं चैतन्य सत्ता रूप से समाहित होकर पल-पल में उनका पालन-पोषण करके उनको संतुष्ट करता हूँ। मैं आजकल का योगी नहीं होकर युगों युगों का योगी यहाँ पर आसन लगाकर बैठा हूँ।

त्रेता युग में हीरा बिणज्या, द्वापर गऊ चराई।

वृन्दावन में बंसी बजाई, कलयुग चारी छाली।।85।।

मैंने त्रेता युग में रामावतार लेकर मर्यादा रूपी हीरों का व्यापार किया। द्वापर युग में गौ सेवा करते हुए वकासुर, अघासुर, आदि दैत्यों का विनाश किया, तथा बंशी बजाकर गोप-ग्वालों को मोहित करके प्रसन्नचित्त किया। कलियुग में बुद्धि से गिरे हुए लोगों को ज्ञानवान बनाकार सद्मार्ग पर ला रहा हूँ।

जे म्हां सूता रैण बिहावै, तो बरतै बिम्बा बारूं।
चन्द भी लाजै सूर भी लाजै, लाजै धर गैणारूं।
पवणा, पाणी ये पण लाजै, लाजै बणी अठारा भारूं।।80।।

मेरा शयन करना या जागृत रहने का अभिप्राय यह है प्रलय तथा सृष्टि का सृजन होना। इसलिए मेरे शयने पर संपूर्ण सृष्टि अपने-अपने कारण रूप में लय हो जाएगी। उस समय प्रतिबिम्ब रूप जगत की स्थिति नहीं रहेगी, किन्तु बिम्ब रूप से एक परमात्मा की ज्योति रहेगी। सूर्य, चन्द्रमा, धरती, आकाश, पवन, जल, तथा अठारह भार वनस्पति ये सभी लज्जित होंगे। इनके अन्दर ज्योति तथा ऊर्जा शक्ति परमात्मा की दी है, वो शक्ति परमात्मा समेट लेगा तो ये अपना अस्तित्व मिटाकर अपने कारण में लय हो जायेंगे। गुरुदेवजी ने इस मरुभूमि पर भगवद् रूप में आने का प्रयोजन भी सबदवाणी में बताया हैं।

मैं बाचा दई प्रहलादा सूं सुचेलो गुरु लाजै।
कोड़ तेतीसूं बाड़े दीन्ही, तिनकी जात पिदाणो।।111 ।।
प्रहलादा सूं बाचा कीवी, आयो बारां काजै।
बारां में सूं एक घटै तो सू चेलो गुरु लाजै।।118।।

मैंने सतयुग में भक्त प्रह्लाद को नृसिंह रूप धारण करके वचन दिया था कि मैं तुम्हारे बिछुड़े हुए तेतीस करोड़ जीवों का उद्धार करूँगा। इनमें से बचे हुए बारह करोड़ जीवों को पहचान करके उद्धार कर रहा हूँ। अगर कर्त्तव्य पूर्ण नहीं हुआ तो गुरु और शिष्य दोनों लज्जित होंगे। गोकुल जी ने इन्दव छन्द में लिखा है-

बीछड़िया बाड़े विगत विसंभंर कौड़या कारण कौल कीयौं।
हरि हंसा मात सुपात सुं परसण, लोहट घरि अवतार लीयो।।

इस प्रकार गुरु जंभेश्वरजी ने बारह करोड़ जीवों का उद्धार किया। इसी कारण बिश्नोई 'प्रहलाद पंथी' कहलाते हैं।

अजीतनगर, खारा
त.-फलोदी, जोधपुर (राज.)
मो.-9667906521

जाम्भाणी साहित्य में भगवद्रूप का वैशिष्ट्य

- छोगाराम सारण

गुरु जाम्भोजी महाराज ने सतयुग में अपने भक्त प्रहलाद को दिये वचन के पालनार्थ क्रमशः सत, त्रेता, द्वापर व कलि काल में पांच, सात, नौ व बारह करोड़ जीवों के उद्धारार्थ अपने भगवदावतार का अपने आप्त उपदेश सबदवाणी में भिन्न-भिन्न पदों में उल्लेखित है। यही नहीं विष्णु की दशावतार शृंखला में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंग, वामन, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध व कलिक अवतार को उन्होंने अपना ही रूप दिग्दर्शित किया है। जाम्भाणी साहित्य में भी विभिन्न हुजूरी भक्त-कवियों ने सबदवाणी के मूल उपदेशों के अनुरूप ही भगवद्रूप का निरूपण किया है। इस साहित्य में विशिटरूपेण बिश्नोई सन्तों की रचनाएं हैं।

गोकुलजी अवतार के छन्द में भगवद्रूप के वैशिष्ट्य को पूर्वोक्त दोनों ही प्रकारों को सहज दो छन्दों में क्या ही सुन्दर रूप में वर्णित करते हुए कहते हैं -

सुमहि बतावण सुख द्विवण, सांई सिरजणहार।
अलख निरंजण सा अरि गंजण, चार चक्र अवतार।।
सही सुरपति सिरजणहार, तको तन आत्म को आधार।
मिले भगवत गये भव भाजि, आयो थल कोड़िद्वादस काजि।।

अर्थात् प्राणी मात्र को सन्मार्ग दिखाने, भक्तों को सुख प्रदान करने हेतु भगवतावतार सृष्टि नियन्ता विष्णु अवतरित हुए, जो निर्गुण परमात्मा है, उन्होंने ही दुष्टों के विनाशार्थ चारों युगों में अवतार लिया है। देवों के देव सृजनकर्ता जो आत्मा के मूलाधार हैं, उनके मिलते ही सांसारिक भय रोग कट जाते हैं - उन्हीं विष्णु ने बारह करोड़ जीवों के उद्धारार्थ श्री जम्भेश्वर के रूप में मरूभूमि में पीपासर ग्राम में अवतार लिया है।

कवि तेजोजी ग्रन्थ विशन विलास में वर्णित करते हैं -

पाँच, सात, नव, बारा कोड़ि तैंतीस कहाय।
शील सत संग्रहै, असत टुकड़ नै आव।।

अर्थात् पाँच, सात, नौ और बारह- इस क्रम में तैंतीस करोड़ जीवों के उद्धारार्थ भगवान विष्णु चारों युगों में अवतरित होकर शील और सत्य की रक्षा व असत्य के विनाशार्थ अवतरित होते हैं।

तेजोजी बारहठ 'ग्रन्थ विशन विलास' की समापना इस छन्द से करते हैं -

तैम्हे तारीया जके जन तरीया, निजनामी ताहरो ले नाम।

कह तेजो कर जोड़े करता, सनमुखी न्हालो मोहे सांम्य।।

अर्थात् हे परमपिता गुरु जम्भेश्वर भगवान आपका ओम विष्णु नाम से जिन्होंने भी स्मरण किया, उन्हें आपने भवसागर से तार दिया अर्थात् वे जन्म-मरण के चक्र से छूटकर मोक्षगामी हुए। कवि तेजोजी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! मुझ पर भी कृपा दृष्टि कीजिए। कवि उदोजी ने छपइया छन्द रचना में विष्णुवतार जाम्भोजी के भगवद् रूप का सोंगोपांग निरूपण किया है। उनमें से एक छपइया का उदाहरण सम्प्रस्तुत है -

ज्यौ विशन की नांव, जगत् गुरु जीवां तारणां।
साथ विशन को नांव, इथकथ कीरीया कारण।।
अठसठि तीरथ न्हाव, एक मन विशन धीयावौ।
तो तूठो दे पार? अचीत ऊमर पद पावौ।।
मेल्ही मेर सह्या दुःख संकट, गुरन वचने अजर हद्या।
प्रहलाद, हरचन्द राय दहठुल विशन जपो ले कोड़ि तार्या।।

अर्थात् जगद् गुरू जाम्भोजी के आदेशानुसार विष्णु के जप से जीव भवसागर से तर जाता है। कारण क्रिया को सत्योपदेश के अनुरूप धारण करो-एक विष्णु का नाम ही सत्य है। अहर्निश दत्तचित होकर विष्णु के जप से अड़सठ तीर्थ नहाने का फल मिलता है। तब विष्णु की प्रसन्नता प्राप्त होने पर जीवात्मा अमरपद प्राप्ति की अधिकारी बनती है। जाम्भोजी (विष्णु) की कृपा से भक्त प्रहलाद, राजा हरिश्चन्द्र व युधिष्ठिर ने मैं पन का त्याग कर अनेक दुःख व संकट सहन किए। काम, क्रोध, लोभ, मोह-अजर की जरा अर्थात् सहन और विष्णु जन के उपदेश से करोड़ों को भव सागर से तारा।

उदोजी इससे अगले छपइये में जम्भेश्वर भगवान को एक मन दत्तचित होकर ध्यान करने हेतु उपदिष्ट करते हुए कहते हैं कि जाम्भोजी के तुष्ट होने पर हमारी यह जीवात्मा जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति की अधिकारिणी होगी। कवि विल्होजी 'कथा अवतार पात में भगवद् रूप अवतरण विषयक जाम्भोजी के लौकिक पिता लोहट जी को अवतार विषयक आकाशवाणी होने को दर्शाते हुए यूं फरमाते हैं -

समझायो लोहट ने, आग्यम हुई आवाज।
देवजी आवे जगत में, बारह मेलण काज।।

अर्थात् वैदिक ऋषियों को जिस प्रकार समाधि अवस्था में वैदिक ऋचाएं प्रकट हुई थी, उसी तरह आकाशवाणी की अगम वाणी ने लोहट जी को समझाते हुए कहा-तुम्हारे यहाँ बारह कोटि जीवों का उद्धार करने हेतु साक्षात् विष्णु संसार में

प्रकट रूप में आ रहे हैं। भगवत् रूप का वैशिष्ट्य वील्होजी की कथा अवतार पात में कुछ यूं झलकता नजर आता है-जब वे जन्म घुट्टी नहीं लेते।

रोग माद दीसे नहीं, दीस सकल सपोस।
गड़ सूदी पीवे नहीं, कहो कुणां को दोस।।

जाम्भोजी के बाल रूप में प्राकट्य पर अनहोनी घटना हुई शरीर पूर्णरूपेण हष्ट-पुष्ट और किसी बीमारी के भी लक्षण नहीं दिख रहे हैं, परन्तु जन्म घुट्टी नहीं ले रहे हैं। तब लौकिक विचारणा के अनुसार विचार करते हैं कि किसका दोष है। भगवत् रूप का वैशिष्ट्य जाम्भाणी साहित्य की परम्परा में बड़ा अद्भुत निरूपित होता है। वील्होजी द्वारा रचित 'कथा झोरड़ा की' में यह वैशिष्ट्य कुछ यूं झलकता नजर आता है।

करूं जन्म गुरू वंदना मिटे अध अपराध।
मधम ता उत्तम किया, चोरां हुंता साध।।

अर्थात् मैं विष्णु (जम्भगुरु) की वंदना करता हूं जिससे अनेकों पाप व अपराध नष्ट होते हैं। विष्णु जाप व जम्भेश्वर ध्यान से अधम जीवात्मा उत्तम हो जाती है। जाम्भोजी के सम्पर्क में आने से झोरणा निवासी रावण व गोयद विष्णु का जप करने लगे व चोरी छोड़कर साधु हो गये।

कवि केसोजी विरचित 'कथा जती तालाब की' में जाम्भोजी के भगवद् रूप वैशिष्ट्य को इस प्रकार आख्यापित करते हैं -

सोई राम सोई कृष्ण है सोई जम्भ गुरु देव।
शुद्ध सरूपी भज है, जोगी अलख अभेद।

जो राम है वे ही कृष्ण है और वही जाम्भोजी है। उन्हीं सत्य स्वरूपी को योगी पुरूष अलख व अभेद कहते हैं। उन्हीं को भजो। केसोजी रचित एक हरजस में जाम्भोजी को आदि अनादि का योगी बतलाते हुए यूं कहा गया है -

आदि अनादि जुगादि को जोगी, लोहट घर अवतार लियो है।
धन ही धन भाग बड़ो, जिन हांसल कूं हर मात कहयो है।।

आदि अनादि युगीन योगी (जाम्भोजी) ने लोहट पंवार के घर अवतार लिया है। धन्य है माता हंसा जिन्हें लोकाचार वश साक्षात् हरि (विष्णु) ने मां कहकर पुकारा है।

सन्त शिरोमणी विल्होजी के उत्तराधिकारी कवि सुरजनजी पुनिया अपने हरिजस में भगवद् अवतार जाम्भोजी के ऐसे चरित्र का गुणगान करते हैं- जिसमें वे अपने चाचा पुल्होजी को स्वर्ग दिखाते हैं -

पुल्हजी को दिया परचा, देव लोक दिखाय।

सुरजन गुरु की सरण्य आयो, चरण सूँद् चितलाय।।

अर्थात् विक्रम संवत् 1542 में बिश्नोई पंथ स्थापना के समय सर्वप्रथम किसे पाहल दे कर बिश्नोई बनाया जाये। तब श्रद्धा विश्वास जागरणार्थ जाम्भोजी के चाचा पूल्होजी ने सशरीर स्वर्ग देखने की कामना की। तब मनास रूपी विमान में बैठाकर उन्हें स्वर्ग दिखाने का परचा दिया गया। तब उन्हें प्रतीति हुई। तब सुरजन जी कहते हैं कि पूल्होजी शरण में आए व भगवद् चरणों में चित्त लगाया।

से.नि. अध्यापक
जोधपुर (राज.)
मो.-9461595991

भगवद् रूप मीमांसा और गुरु जांभोजी विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित

उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले के बिश्नोई बाहुल्य क्षेत्र कांठ में जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर और ट्रस्ट श्री जम्भेश्वर महाराज, कांठ के संयुक्त तत्वावधान में 21-22 मार्च, 2015 को 'भगवद् रूप मीमांसा और गुरु जाम्भोजी' विषय पर आधारित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन 21 मार्च को प्रातः 10 बजे हुआ। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि श्री जसवंत सिंह बिश्नोई, अध्यक्ष केन्द्रीय ऊन विकास बोर्ड, भारत सरकार थे। इस सत्र की अध्यक्षता महामहोपाध्याय डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री, पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने की। डॉ. जयपाल 'व्यस्त' सदस्य विधान परिषद उत्तर प्रदेश इस सत्र के विशिष्ट अतिथि थे तथा पूर्व प्राचार्य डॉ. गणेश दत्त शास्त्री ने बीज वक्तव्य दिया।

सत्र के प्रारम्भ में स्वामी राजेन्द्रानन्द जी, अध्यक्ष, ट्रस्ट श्री जम्भेश्वर महाराज, कांठ ने संगोष्ठी में पधारे सभी अतिथियों, विद्वानों व श्रोताओं का स्वागत करते हुए कहा कि यह संगोष्ठी एक महत्वपूर्ण विषय को लेकर हो रही है। स्वामी जी ने कहा कि भगवान जम्भेश्वर विष्णु के अवतार थे तथा लोक कल्याण हेतु धराधाम पर अवतरित हुए थे। बीज वक्तव्य में डॉ. गणेश दत्त जी ने कहा कि वेदों से लेकर अब तक सभी धर्म ग्रंथों में भगवद् रूप की चर्चा मिलती है। गुरु जाम्भोजी की वाणी में भी भगवद् रूप की विस्तृत चर्चा हुई। आपने कहा कि विष्णु की चर्चा सर्वप्रथम वेदों में मिलती है और सबदवाणी में विष्णु नाम का ही विस्तार है। गुरु जाम्भोजी के अलौकिक कार्य एवं व्यक्तित्व से यह सिद्ध होता है कि वे कोई सामान्य संत नहीं थे, अपितु भगवान् विष्णु के पूर्ण कलावतार थे।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में महामहोपाध्याय डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री ने भगवद् स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला। आपने कहा कि सृष्टि उत्पत्ति, पालन-पोषण ही भगवान का कार्य है और यही कार्य अपने विभिन्न अवतारों में भगवान विष्णु ने किया। कलयुग में यह कार्य भगवान जम्भेश्वर ने अवतार धारण कर किया। विशिष्ट अतिथि डॉ. जयपाल सिंह व्यस्त ने कहा कि यह हमारा परम सौभाग्य है कि हम विद्वानों के सान्निध्य में बैठकर

भगवान जम्भेश्वर की महिमा का श्रवण कर रहे हैं। आपने कहा कि गुरु जम्भेश्वर ने उत्तम तरीके से जीवन जीने की राह दिखाई थी। यदि आज विश्व उनके दिखाए मार्ग पर चले तो धरती ही स्वर्ग बन सकती है। मुख्य अतिथि श्री जसवंत सिंह बिश्नोई ने अपने उद्‌बोधन में भगवान श्री जम्भेश्वर की शिक्षाओं और बिश्नोई समाज के योगदान पर विस्तार से प्रकाश डाला। आपने कहा कि इस प्रकार की संगोष्ठियों से जम्भेश्वर भगवान की शिक्षाओं का विश्व स्तर पर प्रचार-प्रसार होगा और इससे पूरा विश्व लाभान्वित होगा। अपने धन्यवाद ज्ञापन में जाम्भाणी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष स्वामी कृष्णानन्द आचार्य ने उद्‌घाटन सत्र के सभी अतिथियों व विद्वानों का धन्यवाद किया। इस सत्र का संयोजन डा. मनमोहन लटियाल व डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई ने किया।

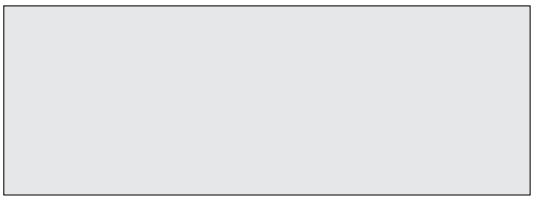

अपराह्न 1 बजे प्रथम बौद्धिक सत्र प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. अशोक सभ्रवाल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ ने की तथा पूर्व एडीसी श्री अशोक बिश्नोई इस सत्र के मुख्य अतिथि थे। इस सत्र में डॉ. ब्रजेन्द्र सिंघल, जयपुर; डॉ. रमेश चन्द्र यादव, मुरादाबाद; डॉ. वीणा बिश्नोई, हरिद्वार; कुमारी शर्मिला, चण्डीगढ़; रामनारायण गोदारा, फलौदी व पंजाब विश्वविद्यालय के शोधार्थियों ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। इस सत्र का संयोजन पंजाब विश्वविद्यालय के शोधार्थी विनोद भादु व कुमारी सुनीता ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन इंस्पेक्टर दिलावर सिंह ने दिया। जलपान के पश्चात 3.30 बजे दूसरा बौद्धिक सत्र आयोजित हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. रामानन्द शर्मा, मुरादाबाद ने की तथा इस सत्र के मुख्य अतिथि श्री हनुमान सिंह बिश्नोई, अध्यक्ष गुरु जम्भेश्वर संस्थान भवन, दिल्ली थे। इस सत्र में डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, बीकानेर; डॉ. हुसैन खान शेख, सांचौर; डॉ. छाया बिश्नोई, मुरादाबाद; डॉ. मनमोहन लटियाल, दिल्ली; मांगीलाल सिहाग, मोतीराम कालीराणा, मास्टर बुद्धराम जाणी, फलौदी आदि ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। इस सत्र का संयोजन विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर की शोध छात्राओं कुमारी साक्षी व कुमारी शालिनी

ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन पूर्व पुलिस उपाधीक्षक श्री महेन्द्र सिंह बिश्नोई ने दिया। रात्रि 8 से 10 बजे तक काव्य गोष्ठी व सामाजिक परिचर्चा आयोजित की गई। इस सत्र में कर्नल गंगाराम धारणियां ने अध्यक्षता की तथा लगभग 25 प्रतिभागियों ने अपनी कविताएं व विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त किए। इस सत्र का संयोजन का. रामेश्वर डेलू व मास्टर राजवीर सिंह ने किया। धन्यवाद ज्ञापन श्री योगेन्द्रपाल सिंह बिश्नोई ने किया।

संगोष्ठी के दूसरे दिन 22 मार्च को प्रात: 9 बजे तीसरा बौद्धिक सत्र प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. ब्रह्मानन्द, पूर्व प्रोफेसर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने की तथा डॉ. रोहताश कुमार, डी.लिट्. इस सत्र के मुख्य अतिथि थे। इस सत्र में डॉ. बनवारी लाल सहू, हनुमानगढ़; श्री मनोहर लाल गोदारा सचिव, बिश्नोई सभा, हिसार; श्री आर.के. बिश्नोई, दिल्ली; श्री रामकुमार डेलू, अबोहर; श्री उदाराम खिलेरी, सांचौर; श्री राजकुमार सेवक; रसूलपुर गुज्जर; श्री छोगाराम सहारण, जोधपुर ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। इस सत्र का संयोजन श्री मोहनलाल बिश्नोई व अनिल धारणियां, फतेहाबाद ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री प्रदीप कुमार बिश्नोई ने दिया। पूर्वाह्न 11.15 बजे संगोष्ठी का चौथा बौद्धिक सत्र प्रारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता डॉ. ब्रजेन्द्र सिंघल ने की तथा डॉ. सरस्वती बिश्नोई बीकानेर इस सत्र की मुख्य अतिथि थी। इस सत्र में डॉ. आयदान सिंह भाटी; श्री छगन लाल बिश्नोई, कोटा; श्री ओपी बिश्नोई सुधाकर, दिल्ली; श्री पृथ्वीसिंह बैनीवाल, पंचकूला; श्री पृथ्वी सिंह बिश्नोई, आदमपुर ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। इस सत्र का संयोजन श्री ऋषिराज सिंह बिश्नोई ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन मास्टर सीपी सिंह ने दिया।

अपराह्न 1.30 बजे इस दो दिवसीय संगोष्ठी का समापन सत्र

प्रारम्भ हुआ। इस सत्र के मुख्य अतिथि सांचौर के विधायक श्री सुखराम बिश्नोई थे तथा अध्यक्षता स्वामी कृष्णानन्द आचार्य ने की। फलौदी के विधायक मास्टर पब्बाराम बिश्नोई विशिष्ट अतिथि थे तथा डॉ. बाबूराम अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने सारस्वत वक्तव्य दिया। डॉ. बाबूराम ने कहा कि इस संगोष्ठी में लगभग 40 शोधपत्र प्रस्तुत किए गए तथा अनेक अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विद्वानों ने भाग लिया। हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली और मध्यप्रदेश के श्रोताओं व विद्वानों ने भाग लेकर इस संगोष्ठी को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है तथा भविष्य में यह संगोष्ठी एक नये पथ का दिग्दर्शन करवाएगी। श्रोताओं के प्रतिनिधि के रूप में बोलते हुए श्री बीरबल जी धारणियां, बीकानेर ने कहा कि विद्वानों के शोधपत्रों से श्रोता लाभान्वित हुए हैं और आयोजकों की ओर से की गई व्यवस्था अत्यन्त ही सराहनीय है। विशिष्ट अतिथि श्री पब्बाराम बिश्नोई ने कहा कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और इस संगोष्ठी के माध्यम से अनेक नए पहलू सामने आए हैं। मुख्य अतिथि श्री सुखराम बिश्नोई ने कहा कि गुरु जम्भेश्वर भगवान की वाणी ज्ञान का अथाह भण्डार है। हमें केवल हवन के समय इसका पाठ ही नहीं करना चाहिए अपितु इसके अर्थ को भी समझना चाहिए। बिना अर्थ को समझे हमें पूरा लाभ नहीं मिल सकता। अपने समापन भाषण में डॉ. सोनाराम बिश्नोई, पूर्व अध्यक्ष, राजस्थानी भाषा साहित्य व संस्कृति अकादमी ने संगोष्ठी के आयोजन को एक बहुत बड़ी उपलब्धि बताया। आपने कहा कि यह संगोष्ठी अनेक मायनों में अपनी विशिष्टता रखती है तथा इसके माध्यम से भगवान श्री जम्भेश्वर के अलौकिक कार्यों व विश्व के प्रति उनकी देन पर प्रकाश डाला गया है। यह संगोष्ठी आने वाली संगोष्ठियों का पथ प्रदर्शन करेगी। कुंवर भूपेन्द्र सिंह ने कांठ रियासत का परिचय दिया। कुंवर सुरेन्द्र सिंह के धन्यवाद ज्ञापन के साथ संगोष्ठी सम्पन्न हुई। संगोष्ठी में स्वामी प्रणवानन्द जी व स्वामी नवल माधुरी जी ने अपना आशीर्वचन भी दिया। समापन सत्र का संयोजन डा. छाया बिश्नोई व डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई ने किया।